मार्च 2007 15 रुपये

आजकल

साहित्य और संस्कृति का मासिक

महादेवी वर्मा जन्मशती अंक







अतुल्य! भारतवर्ष

धर्मनिरपेक्ष गतिशील

वंदनीय





सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

davp 2006/1095

पृष्ठ 1-120

महादेवी वर्मा जन्मशती अंक

लेख

9. **मैं नीर भरी दुख की बदली** — रामदरश मिश्र
12. **महादेवी वर्मा के सृजन-कर्म का अर्थ संदर्भ** — कृष्णदत्त पालीवाल
17. **साहित्य और उसमें स्त्रियों का स्थान** — महादेवी वर्मा
23. **महादेवी वर्मा के प्रगीतों की संरचना** — हरदयाल
26. **महादेवी के काव्य में क्रांति चेतना** — राजेन्द्र गौतम
40. **तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है** — रामजी पांडेय
43. **महादेवी जी ने कन्यादान की रस्म निभाई** — यश मालवीय
45. **स्त्री के सामाजिक इतिहास लेखन के कुछ स्रोत** — देवेंद्र चौबे
48. **एक शाम महादेवी के नाम** — माजदा असद
50. **ज्वाला पर्व भी मनाती थीं महादेवी** — शेरजंग गर्ग
52. **महादेवी की काव्य चेतना** — भारतेन्दु मिश्र
57. **महादेवी वर्मा से मिलने का सुख** — श्याम सुशील
66. **महादेवी वर्मा का उजला और निखरा गद्य** — राजेन्द्र उपाध्याय
68. **महादेवी का नारी विषयक चिंतन** — जगत सिंह बिष्ट
77. **तिमिर में स्वर्ण वेला की तलाश** — सुरेन्द्र वर्मा
79. **महादेवी वर्मा की बाल कविताएं** — प्रकाश मनु
81. **हमारा साहित्यिक घर-परिवार और महादेवी वर्मा** — सुषमा प्रियदर्शिनी
88. **महादेवी जी के काव्य की अनुभूति** — ज्योति चौधरी
92. **महादेवी वर्मा का रचना संसार** — रघुनाथ उपाध्याय 'शलभ'
94. **इलाहाबाद की याद और महादेवी जी** — शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी
96. **महादेवी के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि** — के. मुहम्मद
97. **महादेवी के काव्य में आस्था तत्त्व** — ब्रज भूषण शर्मा

साक्षात्कार

30. स्त्री अस्तित्व की सशक्त पहचान **महादेवी वर्मा** से **अनिता गोपेश** की बातचीत
54. करुणा, मेरे व्यक्तित्व का मूलभाव **महादेवी वर्मा** से **मजीद अहमद** की बातचीत

कहानी

33. **काशी में महादेवी** (उपन्यास अंश) — *श्याम बिहारी श्यामल*
64. **वह यात्रा अनंत** — *बल्लभ डोभाल*
73. **जन-सेवा** (पंजाबी से अनुवाद) — *दर्शन सिंह*
84. **डायरी के पन्नों पर** — *मृदुला सिन्हा*

कविताएं

60. **कविता** — *महादेवी वर्मा*
कविता — *रमेश नीलकमल*
61. **तीन कविताएं** — *गंगाप्रसाद विमल*
62. **दो कविताएं** — *देवव्रत जोशी*
63. **दो कविताएं** — *सत्यनारायण*
कविता — *निर्मला पुतुल*

स्तंभ

2. **प्रसंगवश**
4. **पत्र**
102. **पुस्तक समीक्षा**

ISSN-0971-8478
स्थापित 1945

आजकल

वर्ष : 62; अंक :11; पूर्णांक : 749
मार्च 2007, फाल्गुन-चैत्र 1928-29

संपादक
प्रवीण उपाध्याय
सहायक संपादक
सीमा ओझा
आवरण : *अलका नय्यर*

संपादकीय पत्र व्यवहार :
संपादक
आजकल : प्रकाशन विभाग
कमरा नं. 120, सूचना भवन
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003
फोन : 2436 2915
website www.publicationsdivision.nic.in

युक्त निदेशक (उत्पादन) :
एन.सी. मजूमदार

चंदे की दरें :
वार्षिक : 70 रुपये; दो वर्ष: 135 रुपये;
तीन वर्ष : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक से)
एक वर्ष : पड़ोसी देश : 500 रुपये
शेष विश्व : 700 रुपये

चंदे संबंधी पूछताछ :
जगदीश प्रसाद
वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066 फोन : 26105590

हमारे विक्रय केंद्र
नई दिल्ली: सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 24367260
लखनऊ: दूसरी मंजिल, हाल नं. 1, केंद्रीय भवन, अलीगंज, लखनऊ-226024;
कोलकाता: 8, एस्प्लेनेड ईस्ट; दूरभाष : 22488030
पटना : बिहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 2200296
मुम्बई : 701 बी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवी मुंबई-400614;
बंगलौर : एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरमंगला दूरभाष : 25537344
हैदराबाद : ब्लाक-4, पहला तल, गृहकल्प कॉम्प्लेक्स, एम.जी. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष : 2236393
चेन्नई : राजाजी भवन, बेसेंट नगर, दूरभाष : 24917673
तिरुअनंतपुरम : सचिवालय पास के निकट; दूरभाष : 2330650

टाइपसेट : ज्योति लेजर टाइपसेटिंग

प्रसंगवश...

देश को आजाद हुए साठ साल हो गए हैं। कुछ ही दिनों में हम आजादी की 60वीं सालगिरह मनाने जा रहे हैं। लेकिन इस आजाद मुल्क की औरतें आज भी अपने आपको सामाजिक और पारिवारिक दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ महसूस करती हैं। ऐसे अनेक समाज हैं जहां कन्या का जन्म लेना अभिशाप समझा जाता है। कन्याओं की भ्रूण-हत्या कर दी जाती है और ताज्जुब तब होता है जब अपने को शिक्षित तथा संस्कारित कहने वाला वर्ग भी कन्याओं को हेय दृष्टि से देखता है। ऐसी धारणा है कि स्त्रियों को शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाकर इस बुराई को मिटाया जा सकता है, परंतु ऐसा कहां हुआ? ज्यों-ज्यों लड़कियों में शिक्षा का प्रसार बढ़ा, अधिक से अधिक लड़कियां नौकरी में आने लगीं, तलाक और संयुक्त परिवारों के बिखरने की घटनाओं में तेजी आ गई। कारण, शिक्षा ने नारी को आत्मनिर्भर और समर्थ तो बनाया, लेकिन पुरुष की मानसिकता में बदलाव कहां आ पाया?

आजादी के पहले, आजादी के समय और आजादी के बाद के वर्षों तक नारी की पीड़ा और यातना को महीयसी महादेवी वर्मा ने बड़े करीब से देखा है, झेला है और महसूस किया है। वह अलौकिक प्रेम और रहस्यमयी छायावाद की कवयित्री मात्र नहीं हैं, नारी स्वतंत्रता की प्रतीक हैं।

उन्होंने अपनी लेखनी के जरिए नारी-मुक्ति के संघर्ष को एक विचारोत्तेजक धार दी है। जीवन की अंतिम वेला में वह शारीरिक रूप से बीमार थीं लेकिन मानसिक रूप से पूरी तरह चैतन्य। देहावसान से कुछ महीने पूर्व अनिता गोपेश के साथ स्त्री-विमर्श और नारी-मुक्ति आंदोलन पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा–

''आज आजादी मांगने से मिलती कहां है। आजादी तो हम औरतों को छीनकर लेनी होगी, परंतु समता के नाम पर पश्चिम से उधार ली हुई समता की बात से मैं सहमत नहीं हूं। समता की बात करके औरत मर्द बन जाना चाहती है, जबकि उसे मर्द नहीं, विवेकशील, विचारवान औरत बनना है और यह नए और पुराने के संतुलित समन्वय से संभव होगा।'' ...

महादेवी जी नारी शिक्षा और स्त्री जाति के सर्वांगीण विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहीं। उनकी कविताएं भारतीय नारी की मानसिकता की उपज हैं। उन्होंने अपने रेखाचित्र और संस्मरण साहित्य में समाज के उस वर्ग की सुध ली है जो सताए हुए हैं, दुखों से बुरी तरह घायल हैं, अभिशप्त हैं, दलित और बेसहारा हैं। ऐसे लोग जब महादेवी के संपर्क में आते हैं तब महादेवी जी का हृदय मौन रूप से चीत्कार कर उठता है। उनके काव्य में व्याप्त क्रांति चेतना का मूल्यांकन करते हुए डा. राजेन्द्र गौतम लिखते हैं–

''महादेवी को समझने में कई गलतियां हुई हैं। उन्हें पलायनवादी घोषित करते हुए उनके गद्य को नज़रअंदाज कर दिया गया। 'शृंखला की कड़ियां' में उन्होंने स्त्री-अस्मिता को अत्यंत क्रांतिकारी ढंग से रेखांकित किया है तो घिस्सू, भक्तिन और गुंगिया जैसे संस्मरण और रेखाचित्र एक और क्रांतिकथा लिखते हैं। निराला ने यों ही महादेवी को 'स्फूर्ति, चेतना, रचना की प्रतिमा कल्याणी' नहीं कहा था। उनकी दृढ़ता और क्रांति-भावना से परिचित होना है तो जरा इन पंक्तियों को देखिए–

शृंखलाएं ताप के डर से गलेंगी,
भित्तियां यह लौह की रज में मिलेंगी।

लौह-भित्तियां कैसा भयानक परिदृश्य हमारे सामने लाती हैं! देश और विश्व–दोनों संदर्भों में हम लौह-भित्तियों से घिरे थे। उन्हें गलाने के लिए अपेक्षित अनुपातिक ताप की कल्पना करके ही हम महादेवी के व्यक्तित्व को समझ सकते हैं। ध्यान रखना होगा, यह ताप अन्याय और शोषण के विरुद्ध है पर अंततः यह स्नेह-निर्झर ही बहाता है।''

साहित्य, समाज और संस्कृति के प्रति समर्पित उनका व्यक्तित्व चिंतन की प्रखरता से आलोकित है। महादेवी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन एक अंक में नहीं किया जा सकता। उसके लिए तो हजार पृष्ठ भी कम हैं। फिर भी हमने इस जन्मशती वर्ष में उन्हें श्रद्धांजलि स्वरूप एक छोटा-सा प्रयास किया है, जो पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने महादेवी जी के बारे में बहुत सही लिखा है कि जब साधक साधना करते-करते साध्यमय हो जाता है तो वह संस्कृति बन जाता है। सचमुच में महादेवी वर्मा हमारे भावलोक के संरक्षक के रूप में चलती-फिरती संस्कृति बन गई है। सांस्कृतिक स्वरूपा महादेवी जी को हमारा शत्-शत् नमन।

कमलेश्वर नहीं रहे

आजकल का यह अंक अभी प्रेस में था तभी खबर आई कि कमलेश्वर जी नहीं रहे। उनके निधन से हिंदी कथा साहित्य ही नहीं, हिंदी पत्रकारिता और फिल्म तथा टेलीविजन जगत में भी एक शून्य पैदा हो गया है जिसकी क्षतिपूर्ति निकट भविष्य में संभव नहीं दिखाई देती है। इस महान कथाकार को श्रद्धांजलि स्वरूप आगामी अंक में हम विशेष सामग्री दे रहे हैं।

—संपादक



चित्र : सर्वेश

जन्म : 6 जनवरी, 1932 मैनपुरी (उ.प्र.) **निधन :** 27 जनवरी, 2007

पद्म भूषण और साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित हिंदी के मशहूर कथाकार कमलेश्वर अब हमारे बीच नहीं रहे। गत 27 जनवरी, 2007 की रात करीब साढ़े आठ बजे दिल्ली से अपने निवास इरोज गार्डन लौटते हुए बदरपुर बार्डर के पास उन्हें अचानक दिल का दौरा पड़ा और उनका निधन हो गया। उनकी पत्नी गायत्री कमलेश्वर उस वक्त उनके साथ थीं।

अभी कुछ दिन पहले ही इस महान कथाकार ने अपने जीवन के 75 वर्ष पूरे किए थे। इस उम्र में भी वे इतने सक्रिय थे कि पत्र-पत्रिकाओं में भाषा, धर्म, समाज, साहित्य आदि की ज्वलंत समस्याओं पर लेखन के साथ-साथ हिंदी-उर्दू साहित्य का एक हजार वर्षों का साझा इतिहास लिखने का एक बड़ा काम कर रहे थे। अचानक उनके निधन से समूचा साहित्य और मीडिया जगत स्तब्ध रह गया।

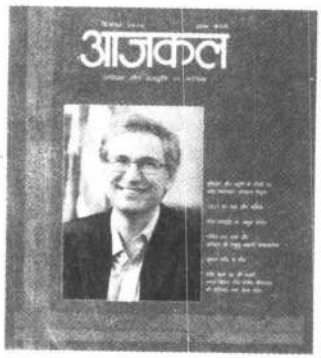
हिंदी कथा के पुरोधा और नई कहानी के एक स्तंभ माने जाने वाले कमलेश्वर का जन्म 6 जनवरी, 1932 को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1954 में उन्होंने हिंदी साहित्य में एम.ए. किया। उनकी पहली कहानी 'फरार' 1946 और दूसरी कहानी 'कामरेड' 1948 में प्रकाशित हुई थी। साहित्य जगत में उनकी पहचान 'राजा निरबंसिया' कहानी से बनी। नई कहानी आंदोलन को आगे बढ़ाने में मोहन राकेश और राजेंद्र यादव के साथ कमलेश्वर की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने तीन सौ से अधिक कहानियां लिखी हैं, जिनमें 'जार्ज पंचम की नाक', 'मांस का दरिया', 'कस्बे का आदमी', 'खोई हुई दिशाएं', 'बयान', 'तलाश', 'मुर्दों की दुनिया' और 'नीली झील' आदि काफी चर्चित रही हैं। वर्ष 2003 में उन्हें उनके चर्चित उपन्यास *कितने पाकिस्तान* के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। इसके अलावा *वही बात, आगामी अतीत, एक सड़क सत्तावन गलियां, समुद्र में खोया हुआ आदमी, लौटे हुए मुसाफिर, काली आंधी* उनके कुछ अन्य प्रमुख उपन्यास हैं।

आलोचना के क्षेत्र में उनकी *नई कहानी की भूमिका* तथा *मेरा पन्ना* महत्वपूर्ण किताबें समझी जाती हैं। उनके यात्रावृत्त 'कश्मीर : रात के बाद', 'देश-देशांतर' तथा संस्मरण 'जो मैंने जिया', 'यादों के चिराग', 'जलती हुई नदी', 'अपनी निगाह में' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावा नाटक, साक्षात्कार, लेख, मीडिया आदि से संबंधित कुल मिलाकर 70 से अधिक पुस्तकों से उन्होंने हिंदी-संसार को संवृद्ध किया है।

विहान जैसी पत्रिका का 1954 में संपादन आरंभ कर कमलेश्वर ने कई पत्रिकाओं का सफल संपादन किया। इनमें *नई कहानियां, सारिका, कथायात्रा, गंगा* आदि प्रमुख हैं। वे *दैनिक जागरण* तथा *दैनिक भास्कर* समाचारपत्रों के संपादक रहे। फिल्म और टेलीविजन के लिए लेखन के क्षेत्र में कमलेश्वर का काफी योगदान रहा। उन्होंने 'सारा आकाश', 'आंधी', 'अमानुष' और 'मौसम' जैसी फिल्मों के अलावा अनेक धारावाहिकों की पटकथाएं लिखीं। दूरदर्शन के लिए 'परिक्रमा' नाम से कार्यक्रम बनाया जिसमें 'बंद फाइलें' उनकी सजग पत्रकार दृष्टि का नमूना कहा जा सकता है। दूरदर्शन में अतिरिक्त महानिदेशक (1980-1982) के पद पर रहते हुए उन्होंने उस पर प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमों के स्वरूप को एक नई दिशा दी।

कमलेश्वर का मानना था कि साहित्य संवेदनशील समाज की रचना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यही कारण है कि उन्होंने हर उस माध्यम के लिए लिखा जिसके जरिए सामाजिक सरोकारों को रेखांकित किया जा सकता है। आम आदमी की पीड़ा को स्वर देने तथा उसके हक की लड़ाई के लिए निरंतर सक्रिय रहने वाले कथाकार कमलेश्वर को उनकी कृतियों के माध्यम से हमेशा याद किया जाएगा।

प्रस्तुति : **श्याम सुशील**



संस्मरणों के लिए यादगार रहेगा

• दिसंबर अंक बेहतरीन संस्मरणों के लिए यादगार रहेगा। रामदरश मिश्र और चंद्रकांता जी के संस्मरण काफी अच्छे लगे। नोबेल विजेता ओरहान पामुक के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशेषण भी सराहनीय थे। ''अगर कृतियों को दबाने की कोशिश की जाएगी तो कुछ न कुछ हमेशा लौटकर आएगा।'' इस कथन से में पूर्णतया सहमत हूं। कृष्ण कुमार यादव का कथन 'कि साहित्य के नोबेल पुरस्कार का पैमाना साहित्यकार हो गया है।' पूर्णतया उचित है।

प्रेमचंद के साहित्य की दुर्दशा पर प्रदीप जैन की टिप्पणी हमें काफी कुछ सोचने पर विवश करती है। महान साहित्य की उपेक्षा करके हम साहित्य को शर्मिंदा नहीं कर रहे तो और क्या कर रहे हैं?

कहानियां दोनों बेशक अच्छी थीं, मगर योगेन्द्र दत्त शर्मा की कहानी 'अस्ति नास्ति' कहानी के बजाय संस्मरण ही प्रतीत हुई। जलंधरा की 'आकाशगंगा' ने काफी प्रभावित किया। मंदाकिनी का चरित्र एक ऐसी औरत का चरित्र है जिसने अपनी आशाओं और गमों को चेहरे की मुसकराहट एवं चमक-दमक में दबाकर रखा है। इस अंक की कविताओं और ग़ज़लों ने कुछ खास प्रभावित नहीं किया।

–हेमंत कुमार 'कीर्ण', चंदौसी (उ.प्र.)

पठनीय अंक

• दिसंबर अंक संग्रहणीय है। नोबेल पुरस्कार विजेता ओरहान पामुक का साहित्य जगत प्रशंसनीय एवं उदाहरणीय है। ओरहान पामुक एक प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं। साहित्य समाज का दर्पण है और साहित्यकार उस दर्पण का निर्माता। यह साहित्यकार पर निर्भर है कि वह किस रंग के शीशे से दर्पण का निर्माण करता है। दर्पण के रंग की तरह ही समाज का चित्र पाठक के सामने उपस्थित होता है। ओरहान पामुक की रचनाओं में समाज के प्रति एक लेखक की महत्वाकांक्षा और दर्द छिपा है।

रामदरश मिश्र के यादगार क्षण भी अभिभूत कर देते हैं। योगेन्द्र दत्त शर्मा की कहानी 'अस्ति नास्ति' बाप-बेटे के भावनात्मक रिश्ते का सजीव चित्रण करती है। मां को धरती और पिता को आकाश की संज्ञा देना बहुत स्पष्ट नहीं हो पाता है। माना, मां धरती की तरह है लेकिन पिता क्या सचमुच आकाश की तरह होते हैं, अनंत, अगम? खैर, कहानी मर्म स्थलों का स्पर्श करती है।

– आलोक मिश्र, आरा (बिहार)

अच्छी सामग्री

• ओरहान पामुक के बारे में विशिष्ट सामग्री देकर आपने साहित्य के पाठकों पर बड़ा उपकार किया है। प्रसंगवश के सारे तथ्य उपयोगी लगे। संघर्षशील लेखक पामुक और नोबेल पुरस्कार समिति के विवादों पर जो विचार प्रस्तुत किया गया है, सराहनीय है। वास्तव में पामुक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति वचनबद्ध हैं तथा राजनीतिक असहमति जताते हुए अपनी रचनाओं के जरिए मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। सचमुच यह उस संकल्प का सम्मान है।

'1857 का गदर और ग़ालिब' शीर्षक आलेख अच्छा लगा। ग़ालिब ने अपनी शायरी और खतों के माध्यम से उस दौर का जो चित्रण किया है वह ऐतिहासिक जानकारी देने वाला तथ्य है। योगेन्द्र दत्त शर्मा की कहानी 'अस्ति नास्ति' बेहद अच्छी लगी। कुमार रवीन्द्र के गीत बहुत पसंद आए। देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' की ग़ज़लों का भी जवाब नहीं। एकाध ग़ज़ल तो बहुत मर्मस्पर्शी लगी।

–विजय बर्तनिया, मुंगेर (बिहार)

कमलेश्वर हमेशा हमारे दिलों में रहेंगे

• विगत 27.01.2007 को कमलेश्वर जी के निधन से हिंदी जगत ने एक महान विभूति व रत्न खो दिया है। उनकी मृत्यु से अपार राष्ट्रीय क्षति हुई है। उनकी क्षति की पूर्ति कभी नहीं हो सकती और कमी हमेशा खलती रहेगी। उन्होंने साहित्य द्वारा हमारे देश की जो सेवा की, उसके लिए हम आभारी हैं और रहेंगे। वे एक सच्चे, महान लेखक, कथाकार, पत्रकार और फिल्म लेखक भी थे। वे एक सरल, सहज, मानवीय संवेदनाओं से युक्त नेक इंसान थे। हमें आशा एवं विश्वास है कि उनकी अमर कृतियों से हमें सदैव प्रेरणा और सन्मार्ग मिलते रहेंगे। हम ईश्वर से उनकी आत्मा की शांति की कामना करते हैं और उनके परिवार के लिए हार्दिक सहानुभूति रखते हैं। वे हमेशा ही हमारे दिलों में रहेंगे और हमारा मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे। उनको पुन: हार्दिक नमन व विनम्र श्रद्धांजलि!

महेश प्रसाद, हुगली (प. बंगाल)

काबिलेतारीफ ग़ज़लें

• जलंधरा की तेलुगु कहानी 'आकाशगंगा' (अनुवाद : जे.एल. रेड्डी) एवं योगेन्द्र दत्त शर्मा की कहानी 'अस्ति नास्ति' दोनों अपनी गंभीरता-दार्शनिकता की वजह से कुछ बोझिल-सी हो गई हैं।

'प्रेमचंद हम शर्मिंदा हैं' प्रदीप जैन के व्यंग्य में मारक क्षमता है। '1857 का गदर और ग़ालिब' इतिहास पर माजदा असद का लेख दुख-दर्द और अभावों की पीड़ा से अश्रुपूरित है।

तुर्की भाषा के लेखक ओरहान पामुक, जिन्हें 2006 का साहित्य का नोबेल पुरस्कार विजेता चयनित किया गया है, के बारे में देवेन्द्र चौबे एवं कृष्ण कुमार यादव के आलेख उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से साक्षात्कार कराते हैं।

रामदरश मिश्र का संस्मरण 'वसंत के दिन' वसंत ऋतु का

आनंद दे गया। चंद्रकांता का आत्मकथात्मक संस्मरण मन को छू गया। खूब भाया। 'अगला यथार्थ' और 'सागर तट के शहर' पर कृष्णदत्त पालीवाल की पुस्तक चर्चा जातीय स्मृतियों के कहानीकार हिमांशु जोशी' के बारे में समीक्षक का निष्कर्ष कथन 'उनकी मूल चिंता है स्वाधीन चिंतन और स्वाधीनता' अक्षरशः सत्य है। ओरहान पामुक की कृतियों के बारे में जिज्ञासु पाठकों को कब और किन्हें क्या पढ़ना चाहिए 'प्रसंगवश...' दिशानिर्देश देकर आपने अच्छा ही किया है। कुमार रवीन्द्र के चारों गीत अच्छे बन पड़े हैं। श्याम विमल की तीनों कविताएं भी स्तरीय हैं। संजीव श्रीवास्तव की पांचों कविताओं में व्यंग्य की धार है। देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' की चारों ग़ज़लें भी काबिलेतारीफ हैं। 'निशा निमंत्रण' पर मनोज कृष्ण की समीक्षा 'बच्चन के बाद बच्चन' पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचती है।

–राकेलाल 'नवचक्र', भागलपुर (बिहार)

पिता आकाश से भी ऊंचा

● योगेन्द्र दत्त शर्मा की कहानी 'अस्ति नास्ति' को पढ़ा। पिता-पुत्र संबंध, एक औसत आय के व्यक्ति की पारिवारिक जिम्मेदारी, मानवता के जार-बेजार होने, छल-छद्म के मूल्य बनने तथा इसके चलते एक ईमानदार व्यक्ति के परिवार-समाज से मोहभंग को इस कहानी में चित्रित करने का प्रयत्न शर्मा जी ने किया है।

पिता के अनुशासन तथा पुत्र पर बरसते स्नेह को देखकर ऐसा लगता है कि पिता यदि अनुशासन की छड़ी है तो दूसरी ओर उसके हृदय के अतल गहराई में वात्सल्य का सरोवर है, जिसके अजस्र प्रवाह में वह बेटे को सराबोर कर सकता है। इस कहानी के मुनीम जी तमाम अनुशासन के बाद बेटे को अनुग्रह से सींचकर अपना बना लेते हैं। लेखक ने बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए संबंधों की ऊष्मा को रेखांकित किया है। यही नहीं शर्मा जी ने रागात्मक संबंधों को इस कहानी के माध्यम से ठोस वास्तविक धरातल प्रदान किया है। यह कहानी पढ़कर ऐसा लगता है कि रचनाकार ने एक व्यक्ति के अंतर्मन तथा आस-पास की कथा को ही रचनात्मक फैलाव दिया है।

कहानी की दूसरी महत्वपूर्ण बात एक ईमानदार व्यक्ति की नैतिकता की हत्या का होना है। कैसे एक निश्छल, कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति पर नैतिक दबाव डालकर उसे पथभ्रष्ट किया जाता है, इस कहानी में बखूबी उकेरा गया है। आर्थिक मजबूरियां किस तरह मनुष्य को निर्लज्जता का वसन पहना देती हैं। इसको चित्रित करने में शर्मा जी सफल रहे हैं। इस कहानी में शर्मा जी ने यह दिखाकर कि अच्छे संस्कार का प्रभाव बच्चे पर पड़ता है, अपनी रचनात्मक सोद्देश्यता उजागर कर दी है। एक बात तय है कि यदि पिता अपने पिता के प्रति संवेदित है तो बेटा भी अपने पिता के प्रति रागात्मक संबंधों को जीता हुआ नजर आएगा।

– नरेन्द्र कुमार राय, गांधीनगर, दिल्ली

आजकल का ग्राहक बनें :

मैं आपकी पत्रिका *---------- का ☐ एक वर्ष (70 रुपये)

☐ दो वर्ष (135 रुपये) ☐ तीन वर्ष (190 रुपये) का ग्राहक बनना चाहता हूं।

चंदे का रुपये---------- भारतीय पोस्टल आर्डर/ मनीआर्डर / डिमांड ड्राफ्ट सं----------दिनांक---------संलग्न है।

हस्ताक्षर ----------

नाम :----------

पता : ----------

पिन : ☐☐☐☐☐☐

● कृपया अपना चंदा डी.डी./ पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर, *निदेशक, प्रकाशन विभाग* के नाम बनाएं।

● पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

● दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं हैं : *बाल भारती, आजकल* (उर्दू), *कुरुक्षेत्र* (हिंदी व अंग्रेज़ी), *योजना* (हिंदी, अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)।

चंदा निम्न पते पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

ग़ज़लें मील का पत्थर हैं

• साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार ओरहान पामुक पर देवेन्द्र चौबे तथा कृष्ण कुमार यादव के लेख अंक की गरिमा हैं। 'यों ही किसी के कसीदे नहीं पढ़े जाते' चंद्रकांता तथा 'प्रेमचंद हम शर्मिंदा हैं' प्रदीप जैन के लेख भी झकझोरने वाले हैं। 'अस्ति नास्ति' योगेन्द्र दत्त शर्मा की एक उत्कृष्ट कहानी है। देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' की ग़ज़लें मील का पत्थर हैं। ग़ज़ल अब किसी आलोचक की मोहताज नहीं है।

–सार्थ, धरमंगदपुर, कानपुर

स्तरीय सामग्री

• ओरहान पामुक पर स्तरीय सामग्री देने पर साधुवाद। रामदरश मिश्र जी के साथ 'वसंत के दिन' सुहावने लगे। जलंधरा की कहानी 'आकाशगंगा' (अनुवाद : जे.एल. रेड्डी) अच्छी लगी। लेकिन योगेन्द्र जी क्या कहना चाह रहे थे, समझ नहीं पाया। कविताएं/गीत 'सुख के आंसू, दुख के आंसू, घर का स्वाद' अच्छी लगीं।

– सुनील कुमार शर्मा, दिल्ली

मुकम्मल पत्रिका

• *आजकल* का नवीन पाठक हूं। दिसंबर 2006 का अंक हाथ लगा। मैंने एक बैठक में ही बहुत कुछ पढ़ लिया। सामान्यत: जन मानस ग़ालिब की ग़ज़लों तक ही सीमित है। माजदा असद द्वारा ग़ालिब के विषय में लिखा गया लेख ग़ालिब के व्यक्तित्व के अनछुए पहलुओं से रू-ब-रू कराता है जो एक अच्छी पहल है।

कृष्णदत्त पालीवाल द्वारा हिमांशु जोशी के कहानी संग्रहों पर लिखा गया रिव्यू हमें कहानियों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। कविताएं सभी अच्छी हैं। श्याम विमल की कविता 'घर का स्वाद' हमें परिवारों के टूटन पर सोचने के लिए मजबूर करती है। ओरहान पामुक के संदर्भ में कृष्ण कुमार यादव के विचार ज्ञानवर्द्धक हैं। साथ ही हमें एक नयी दृष्टि भी देते हैं। 'सभ्यताओं का संघर्ष, सभ्यताओं की आड़ में मानवीय संघर्ष है'।

- चंद्रकांत बलियाटिक, बलिया

प्रभावित किया

• दिसंबर अंक में मैंने संजीव श्रीवास्तव की कविता 'कुत्ता-एक' पढ़ी। पढ़ने के बाद कवि की मानसिक सजगता और बिम्ब विधान को दाद देना पड़ा। कुत्ते की घ्राण शक्ति का सफल नियोजन तथा इसके द्वारा सभ्यता-असभ्यता को पहचानने का उपक्रम कविता को कलात्मक ऊंचाई प्रदान करता है। योगेन्द्र दत्त शर्मा की कहानी 'अस्ति नास्ति' तथा प्रदीप जैन का व्यंग्य 'प्रेमचंद हम शर्मिंदा हैं' ने भी मुझे काफी प्रभावित किया।

–मनोज कुमार, गांधी विहार, दिल्ली

विशेष सामग्री

• ओरहान पामुक पर विशेष सामग्री पढ़कर मन का पंछी प्रसन्न हो गया। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित ओरहान पामुक निश्चय ही विश्व के उन महान चिंतकों और साहित्यकों में से एक हैं जो इंसानियत को ऊपर उठाने के लिए जाति, धर्म और सम्प्रदाय विशेष को नजरअंदाज कर देते हैं। होना भी यही चाहिए।

तअस्सुब और धार्मिक अंधविश्वास ने लम्बे समय तक खूबसूरत जमीन के ऊपर खून बहाने का काम किया है और अब यह सब त्यागने का समय है क्योंकि मानवीय मूल्य कमजोर पड़ते जा रहे हैं और शैतानी कुकृत्यों की लपटें आसमान छूने को आतुर हैं... मजहब के नाम पर बेकसूरों का लहू बहाने वाले मुसलसल बढ़ते जा रहे हैं...आतंक फैलाने वालों की नई-नई सेनाएं तैयार हो रही हैं... ऐसे समय में ओरहान पामुक को नोबेल मिलना एक महान घटना है। मानवता की कद्र होनी ही चाहिए।

'फोटोग्राफी कला है या विज्ञान' नामक आलेख पढ़कर अच्छा लगा। *आजकल* में चित्रकला के बारे में जो सामग्री प्रकाशित की जाती है वह मुझे बहुत लुभाती है। आज भारतीय चित्रकला 'विश्व चित्रकला' के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। इस विधा से संबंधित कुछ और आलेख विस्तार से प्रकाशित कीजिए। हरिवंश राय बच्चन और नागार्जुन आधुनिक काव्य कला के दो आधार स्तंभ हैं। दोनों ने काव्य में नए-नए प्रयोग किए हैं। हिंदी काव्यजगत दोनों अग्रजों का ऋणी है। दोनों का गद्य एवं पद्य बहुत महत्वपूर्ण है। बाबा नागार्जुन के उपन्यास उच्चकोटि के हैं तो उधर बच्चन जी की आत्मकथाएं आत्मकथा के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुई हैं। हमें दोनों से बहुत कुछ सीखने की जरूरत है।

–इसरार अर्क, जे.पी. नगर (उ.प्र.)

संग्रहणीय अंक

• ओरहान पामुक पर केंद्रित *आजकल* का दिसंबर अंक खूब भाया। कहानियां, लेख और कविताएं सभी रुचिकर लगीं। पुस्तक की समीक्षा ने भी मन को बांधे रखा। कुल मिलाकर अंक संग्रहणीय बन पड़ा है।

–उमेश प्र. शर्मा 'उमेश', भागलपुर

नोबेल पुरस्कार विजेता

• साहित्य का नोबेल पुरस्कार विजेता ओरहान पामुक के व्यक्तित्व कृतित्व पर आपने हिंदी भाषी पाठकों को अच्छी जानकारी दी है। वास्तव में पामुक को अपने पैतृक नगर इस्ताम्बुल की मिट्टी से कितना प्यार व लगाव है!

– लक्ष्मण सिंह पांगती,कल्याणपुर, लखनऊ (उ.प्र.)

उपयोगी सामग्री

• दिसंबर अंक में ओरहान पामुक से परिचय अच्छा लगा। चंद्रकांता जी की आत्मकथा पड़ोस की घटना-सी प्रतीत हुई। प्रेमचंद पर प्रदीप जैन का व्यंग्य सोचने और फिर कुछ करने पर मजबूर करेगा, ऐसी आशा करता हूं।

–ललित जोशी, बिन्दूखत्ता, नैनीताल (उत्तराखंड)

सभी रचनाएं पठनीय

• अंक की सभी रचनाएं अच्छी लगीं। कविताओं में अन्य कवियों के साथ संजीव श्रीवास्तव की 'कुत्ता' ने कुछ खास प्रभावित किया। कुल मिलाकर सभी रचनाएं पठनीय एवं काबिलेतारीफ हैं।

– पंकज कुमार साह, दुमका (झारखंड)

बंग वंदना

बंग-भू शत वंदना ले !
भव्य भारत की अमर कविता हमारी वंदना ले !
अंक में झेला कठिन अभिशाप का अंगार पहला,
ज्वाल के अभिषेक से तूने किया शृंगार पहला,

तिमिर सागर हरहराता,
संतरण का ध्वंस आता,

तू मनाती है हलाहल घूंट में त्यौहार पहला,
नीलकंठिनि, सिहरता जग स्नेह कोमल कल्पना ले,
वेणु बन में भटकता है एक हाहाकार का स्वर,
आज छाले से जले जो भाव से थे सुभर पोखर,

छंद से लघु ग्राम तेरे,
खेत लय विश्राम तेरे,

... ...

जाह्नवी की ऊर्मियां हों तार भैरव राग जागे,
ओ विधात्री ! जागरण के गीत की शत अर्चना ले;
ज्ञान गुरु इस देश की कविता हमारी वंदना ले,

बंग-भू शत वंदना ले ।
स्वर्ण-भू शत वंदना ले।

-महादेवी वर्मा



चित्र सौजन्य : महेन्द्रराजा जैन

महादेवी वर्मा

जन्म : 26 मार्च, 1907
निधन : 11 सितंबर, 1987

"कविता ही मानव-मन की ऋतु बदल सकती है और वह भौतिक तथ्य को आत्मा के सत्य में परिवर्तित कर उसे सुंदर के माध्यम से शिव तक पहुंचा सकती है। बिना स्नेह, समता, बंधुता और मानव गरिमा के मानव जाति का भविष्य केवल मरण का पर्व है। ..."

– महादेवी

* *आजकल* के मई, 1949अंक (पृ. 100) से उद्धृत ।



युग-प्रवर्तिका
श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति



महादेवी की तूलिका से बना महाकवि निराला का चित्र

दिये व्यंग्य के उत्तर रचनाओं से रचकर,
विदुषी रहीं विदूषक के समक्ष तुम तत्पर,
हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणी,
स्फूर्ति-चेतना-रचना की प्रतिमा कल्याणी,
निकला जब 'नीहार' पड़ी चंचलता फीकी
खुली 'रश्मि' से मुख की श्री युग की युवती की,
प्रति उर सुरभित हुआ, 'नीरजा' से, निरभ्रनभ
शत-शत स्तुतियों से गूंजा 'यह सौरभ, सौरभ'।
'सांध्य गीत' गाए समर्थ कवियों ने सुस्वर,
वीणा पर, वेणु पर, तंत्र पर और यंत्र पर।
'यामा' -'दीपशिखा' के विशिखों के ज्यों मारे
अपल-चित्र हो गए लोग, 'चलचित्र' तुम्हारे
चला रहे हैं सहज शृंखला की कड़ियों से,
सजो, रंगो लेखनी-तूलिका की छड़ियों से ।

-सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

** महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित यह कविता 'देशदूत', साप्ताहिक, प्रयाग, 7 फरवरी, 1943, में प्रकाशित हुई थी।*

मैं नीर भरी दुख की बदली

आज नारी–विमर्श साहित्य–लेखन और चर्चा के केन्द्र में है किन्तु सच तो यह है कि मानववादी आधुनिक रचनाकारों ने बिना किसी आंदोलन के सारी–यातना और ऊर्जा को अपनी रचनाओं में रेखांकित किया / अन्य रचनाकारों ने तो कल्पना से कविता और कथा–साहित्य में नारियों का सृजन किया किन्तु महादेवी जी ने तो जीवंत नारियों के सुख–दुख का सीधा साक्षात्कार किया, उन्हें अपने भीतर उतारकर उनका अनुभव किया / महादेवी के रचनाकर्म पर रोशनी डाल रहे हैं **रामदरश मिश्र**

यह महादेवी जी का जन्म-शताब्दी वर्ष है। वे पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्यिक संस्थाओं द्वारा याद की जा रही हैं। लेकिन हिंदी साहित्य के अध्येताओं द्वारा तो वे लगातार याद की जाती रही हैं, याद की जाती रहेंगी। छायावाद हमारे साहित्येतिहास का बहुत गौरवपूर्ण अध्याय है और उसके तीन बड़े कवियों- प्रसाद, निराला और पंत के बाद एक बड़ी कवयित्री के रूप में महादेवी जी याद की जाती हैं। मैंने तो उनकी कविताएं एम.ए. में वर्षों पढ़ायी हैं। हम जैसे लोगों को महादेवी की कविताएं पढ़ाने का एक बड़ा संकट रहा है। संकट यह रहा है कि अनेक लोगों ने उन्हें रहस्यवाद की कवयित्री मान रखा है। अत: वे आलोचक और अध्यापक बड़ी आसानी से उनकी प्रणयानुभूति को अलौकिक मान लेते हैं। यानी कि वह आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रणय निवेदन है। आत्मा परमात्मा के विरह में जलती हुई मिलन की आकांक्षा से विह्वल है। लेकिन छायावाद को लौकिक संदर्भ में देखने के पक्षपाती अध्येता (जिनमें मैं भी हूं) यह मान नहीं पाते कि ठेठ लौकिक जीवन जीने वाले ये कवि रहस्यवादी हो जाएंगे यानी कि इनके प्रेम का आलंबन निराकार ब्रह्म है और तज्जन्य सुख-दुख आध्यात्मिक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यही कहा कि निराकार के प्रति जिज्ञासा हो सकती है उससे प्रेम नहीं। प्रेम तो मूर्त सत्ता से ही होता है। तो मन यह स्वीकार नहीं करता था कि महादेवी के प्रेम का आलंबन निराकार ब्रह्म है। यदि कविता में गहरी अनुभूति है तो निश्चित है कि वह अनुभूति मूर्त सत्ता से ही नि:सृत हुई होगी।



चित्र सौजन्य : महेन्द्रराजा जैन

महादेवी जी वह मीरा तो थीं नहीं जो लौकिक जीवन का सारा सुख-दुख छोड़कर कृष्ण के प्रेम में दिवानी हो गई थीं और आध्यात्मिक अनुभव से गुजरती रहीं। महादेवी जी तो लौकिक जीवन के राग-विराग से गुजरती रही हैं। हां वेद, उपनिषद के ज्ञान और चिंतन से जुड़ी रहीं यह और बात है। तो मैं महादेवी जी को पढ़ाने से पूर्व यह संकल्पना लेकर चला था कि मैं उनकी कविताओं की व्याख्या लौकिक संदर्भ में ही करूंगा। लेकिन यह संभव नहीं हो सका। लौकिक बिंबों से शुरू होने वाली कविताओं में ऐसे-ऐसे बिंब रहते थे जो आध्यात्मिक ज्ञान के बिंब होते थे और किसी भी तरह उनकी सुचारु लौकिक व्याख्या हो ही नहीं पाती थी। फिर तो लौकिक-अलौकिक का ऐसा घाल-मेल प्रतीत होने लगता था जिससे कविता की प्रभान्विति आहत होती थी। झख मारकर मुझे उन बिंबों का आध्यात्मिक प्रतीकार्थ करना पड़ता था। बाहर-बाहर से अत्यंत रसात्मक और गुंजायमान गीत व्याख्या के समय ज्ञान-गरिष्ठ हो उठते थे।

इन गीतों के अध्यापन में मुझे एक सुविधा लगी- वह यह कि अपनी क्षमता के अनुरूप इनके वैकल्पिक अर्थ की रचना की जा सकती है। जहां काफी कुछ अरूप हो वहीं यह छूट रहती है कि आप अपनी क्षमता और दृष्टि के अनुसार उससे अभिप्राय निकाल लें। मैं यही करता था। छात्र तो बहुत संतुष्ट होते थे और वे परस्पर चर्चा भी करते थे कि महादेवी की कविताएं पढ़नी हों तो मिश्र जी से पढ़िए किंतु मैं संतुष्ट नहीं था। मुझे हमेशा लगा रहता था कि अमुक पंक्ति का कुछ और अर्थ हो सकता है जो मेरे बताए अर्थ से बेहतर होगा। यह शंका भी होती थी कि मैं महादेवी जी को कहीं गलत तो नहीं समझा रहा हूं।

खैर, लौकिक हो या अलौकिक, महादेवी जी के काव्य में दुख और करुणा का स्वर व्याप्त है। वे दुख के अनुभव-बिंबों की रचना तो करती ही हैं दुख को जीवन की मूल्यवता के रूप में भी स्वीकारती हैं। 'मैं नीर भरी दुख की बदली' में वे अपनी या अपने जैसे अन्य व्यक्तियों की दुखात्मक अनुभूति की कथा कह देती हैं तो 'तुम दुख बन इस पथ से आना' जैसी कई कविताओं में दुख को जीवन का मूल्य मानकर उसके साथ हो लेने की स्पृहा करती हैं। कामना करती हैं :

शूलों में नित मृदु पाटल-सा
खिलने देना जीवन मेरा
क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना

वे कहती हैं कि सुख हृदय के कपाट बंद कर देता है और गर्व से कहता है मैं तो वसंत हूं, पतझर से मेरा कोई संबंध नहीं है। किंतु दुख के पद को छूकर कण-कण से आंसू के झरने बहने लगते हैं और जीवन मृदु एवं उर्वर हो जाता है। वह व्यक्ति के छोटे से हृदय में असीम संसार को बुलाकर बसा लेता है :

मृग मरीचिका के चिर पथ पर
सुख आता प्यासों के पग धर
रुद्ध हृदय के पट लेता कर
गर्वित कहता मैं मधु हूं मुझ से क्या पतझर का नाता
दुख के पद छू बहते झर-झर
कण-कण से आंसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर
लघु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर आता

किंतु यह मूल्यवान दुख क्या व्यक्तिगत दुख है? व्यक्तिगत अभावों से पैदा होने वाला दुख क्या इतना मूल्यवान और स्पृहणीय हो सकता है और उसके निरंतर होने की कामना की जा सकती है? नहीं न। इसलिए कवयित्री अपने को नीर भरी दुख की बदली कहती है। बदली जल से भरी होती है। बदली का जल अपने लिए नहीं होता, सृष्टि के लिए होता है, वह तप्त विश्व को नहलाती है। बदली विश्व के लिए जल लेकर आती है और पूरे आकाश में छा जाती है। लगता है कि पूरा आकाश उसका अपना है किंतु जल बरसाकर उसका समूचा अस्तित्व समाप्त हो जाता है :

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना, इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली

तो करुणाशील व्यक्तित्व भी संसार में करुणा का जल लेकर आता है, अपने आंसुओं के द्वारा उसे संतप्त हृदयों पर बरसाता है। उसका अपना कोई निजी-सुख-दुख नहीं होता, वह तो दूसरों के ही सुख-दुख से सुखी-दुखी होता रहता है और अपने को बांटता रहता है। इसी में उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। नभ में उसका अपना कोई कोना भले न हो, किन्तु जहां कहीं हरीतिमा का उल्लास और सौन्दर्य है, उसमें वह व्याप्त है। इसी तरह करुणाशील व्यक्तित्व अपने को मिटाकर संतप्त प्राणियों के सुख-चैन में व्याप्त हो जाता है। तो महादेवी जी की कविताओं में ध्वनित दुख या करुणा की दिशा यही है।

महादेवी जी की कविताओं में व्याप्त वेदना या दुख उनका निजी नहीं है, सामाजिक है इसकी प्रतीति उनके गद्य से होती है। कविताएं बार-बार उनके दुख की सामाजिकता की ओर संकेत तो करती हैं किन्तु मुख्य रूप से वे निजी जीवन-क्षेत्र में ही विचरण करती लगती हैं। तभी तो अध्येताओं को लगता है कि यह कवयित्री की विरह वेदना है- चाहे लौकिक अर्थ में हो, चाहे आध्यात्मिक अर्थ में। कुछ लोग तरस भी खा सकते हैं कि हाय बेचारी कवयित्री कितने दुखों से गुजरी है। छायावादी कविता स्वानुभूति-परक कविता मानी जाती है। गीतों में कवि का अवसाद और उल्लास फूट पड़ा है। उन गीतों में वस्तु-जगत की व्याप्ति नहीं है, उससे उपजा हुआ भाव है जो बहुत सूक्ष्म है कुछ अरूप भी। इसे आचार्य शुक्ल ने विभाव का अभाव कहा है। विभाव के स्पष्ट न होने के कारण भाव-जगत काफी हद तक अरूप रह जाता है। यह पता ही नहीं चलता कि संयोग-वियोग का, सुख-दुख का आधार क्या है, आलंबन क्या है? और महादेवी जी की कविताओं के साथ तो यह संकट और भी गहरा बना हुआ है। तो जब उनका गद्य साहित्य सामने आता है तब उनके दुख, करुणा का स्वरूप मूर्त होता है।

उनके रेखाचित्र और संस्मरण-साहित्य में एक बड़ी दुनिया उन लोगों की है जो दुखों से बुरी तरह घायल हैं, अभिशप्त हैं, दलित हैं, बेसहारा हैं। वे जब महादेवी जी के संपर्क में आते हैं तब महादेवी जी का हृदय मौन रूप से चीत्कार कर उठता है। प्राय: संतप्त लोगों को भी पता रहता है कि महादेवी जी उनके लिए कुछ कर सकती हैं, अत: वे उनके पास सहायता के लिए चले आते हैं। महादेवी जी उनकी करुण-कथा सुनती हैं, उनके लिए यथाशक्य कुछ करती हैं। जहां कुछ कर सकने की शक्यता नहीं होती वहां उनके दर्द को लिये-दिये भीतर ही भीतर तड़पती रहती हैं। वे जब बाहर जाती हैं और कहीं अभिशप्त व्यक्ति से टकरा जाती हैं, तब वे उसके दुख-परिसर में पैठने की कोशिश करती हैं और उसके लिए कुछ करती हैं। बचपन से ही महादेवी जी की संवेदनशीलता उन्हें दूसरों के दुख से जोड़ती रही है। उनके परिवार (विशेषतया मां) की मानवीय आभा उनके भीतर गहरा मानवीय संस्कार भरती चली गई। अत: दूसरों के दुख से बेचैन होना और उनके लिए कुछ कर पाना उनका स्वभाव बनता गया।

आज नारी-विमर्श साहित्य-लेखन और चर्चा के केन्द्र में है किन्तु सच तो यह है कि मानववादी आधुनिक रचनाकारों ने बिना किसी आंदोलन के सारी-यातना और ऊर्जा को अपनी रचनाओं में रेखांकित किया। अन्य रचनाकारों ने तो कल्पना से कविता और कथा-साहित्य में नारियों का सृजन किया किन्तु महादेवी जी ने तो जीवंत नारियों के सुख-दुख का सीधा साक्षात्कार किया, उन्हें अपने भीतर उतारकर उनका अनुभव किया।

महादेवी जी के कुछ संस्मरणों के माध्यम से नारियों के उस दर्द की पहचान की जा सकती है जो उनका दर्द बन गया था। अनेक अभिशप्त नारियां महादेवी जी के संपर्क में आयी होंगी और उनके दर्द ने उन्हें गहरे व्यथित किया होगा सब पर तो संस्मरण नहीं लिखा जा सकता किन्तु जिन कुछ नारियों पर उन्होंने लिखा है वे नारी-यातना की व्याप्ति की पहचान करा देती हैं। नारी-यातना के विविध आयाम हैं, विविध स्थितियां हैं, विविध प्रकार के दंड हैं, विविध प्रकार की वर्जनाएं हैं, विविध प्रकार की सहनशीलताएं हैं। *भाभी* संस्मरण में एक बाल-विधवा है जो अपने बूढ़े ससुर के संरक्षण में कठोर वर्जनाओं का जीवन व्यतीत कर रही है। "जिस घर में वह रह रही थी उसमें न कोई झरोखा था न रोशनदान, न एक भी नौकर दिखाई देता था, न अतिथि और न एक भी पशु रहता था न पक्षी। उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीर



अपने निवास पर रचनाकार शिविर में रचनाकारों से चर्चा में तल्लीन महादेवी वर्मा

चित्र : घनश्याम रंजन

से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी साथी के बिना किसी आमोद-प्रमोद के मानो निरंतर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।'' शहर में रहने वाली उसकी ननद कभी-कभी वहां आती थी और उसे भयानक ताड़ना देकर चली जाती थी। बालिका महादेवी जी संयोग से इस विधवा के संपर्क में आयीं और इसका सारा दर्द उनके भीतर उतरता गया। समीप होने पर ही यह दर्द नहीं था, दूर जाकर भी महादेवी जी उससे मुक्त नहीं हुईं। वे बाद में इन्दौर चली गयीं और कहती हैं- ''प्राय: सोचती हूं जब वृद्ध ने कभी न बोलने के लिए आंखें मूंद ली होंगी, तब वह, जिसे उन्होंने संसार की ओर देखने का अधिकार ही नहीं दिया था, कहां गई होगी और तब न जाने किस अनिष्ट संभावना से, न जाने किस अज्ञात प्रश्न के उत्तर में मेरे मन की सारी ममता क्रन्दन कर उठती है- नहीं-नहीं...।''

बिन्दा में लेखिका की बाल सखी बिन्दा के माध्य से नारी-यातना का एक दूसरा परिदृश्य खड़ा होता है। उसकी मां उसके बचपन में ही मर गई है। उसके पिता दूसरी पत्नी लाए हैं जिसे लेखिका पंडिताइन चाची कहती है। एक नन्ही-सी बच्ची को सौतोली मां क्या-क्या यातनाएं देती है और उसका प्रभाव लेखिका पर कैसा पड़ता है, इसका जीवंत चित्र इस संस्मरण में हुआ है। तारों में अपनी मां को खोजती-खोजती बच्ची विमाता के अत्याचार से पीड़ित होकर एक दिन स्वयं तारों में चली जाती है। लेकिन क्या यह केवल बिन्दा की कहानी है। महादेवी जी कहती हैं- ''तब से कितना समय बीत चुका है पर बिन्दा और उसकी नयी अम्मा की कहानी शेष नहीं हुई है। कभी हो सकेगी या नहीं इसे कौन बता सकेगा?''

सबिया की सबिया नारी की एक और व्यथा-कथा कहती है। उसका पति उसे छोड़कर कहीं चला गया और वह अपनी अंधी सास और बच्ची को लेकर जीवन-संघर्ष करती है और दोनों के योगक्षेम के लिए अपने को दिन-रात पीसती रहती है। एक दिन उसका पति उसकी सौत लेकर अवतरित होता है, तब वह सौत को भी स्वीकार कर लेती है और फिर निकम्मे पति तथा सौत का भी खुशी-खुशी बोझ उठा लेती है। नारी-यातना के साथ पत्नीत्व का जो आदर्श जुड़ा हुआ है वह उसे एक अजीब जिन्दगी जीने को विवश करता है। इसी तरह *बिट्टो, सबला, दो फूल* आदि संस्मरणों में नारी की अकथ व्यथा-कथा उरेही गई है। और महादेवी जी ने यह व्यथा-कथा एक तटस्थ दर्शक के रूप में नहीं कही है, वे उसमें गहरे उतरी हुई हैं, उनके दुख से आहत होती हैं, उनके लिए जो कर सकती हैं करती हैं और उन्हें इस रूप में रहने को अभिशप्त करने वाले सामाजिक नियमों एवं व्यक्तियों पर सीधे या व्यंग्य रूप में प्रहार भी करती हैं तथा अनेक यातनाओं के बीच छटपटाती नारियों की महत्ता भी रेखांकित करती हैं तथा जहां संभव होता है उनकी ऊर्जा और प्रतिरोध का भी चित्रण करती हैं जैसे 'भक्तिन' में।

इसी तरह महादेवी जी की पीड़ा दलित वर्ग की पीड़ा से भी जुड़ी हुई है। अलोपी, घीसू, बदलू आदि अनेक निम्नवर्गीय पात्र दलित जीवन की व्यथा-कथा ही नहीं कहते, वे मानवीय सौन्दर्य की दीप्ति भी फैलाते हैं। वे अपनी मटमैली और अभिशप्त जिन्दगी के बीच मानवीय संवेदना और कर्तव्यनिष्ठा की अद्‌भुत छवि विकीर्ण करते हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि महादेवी जी उस सौन्दर्य को गहरे पहचानती हैं, रेखांकित करती हैं और उसके साथ प्रसन्न यात्रा करती हैं। तो एक तरह से हर दलित जीवन के प्रति उनकी सहज पक्षधरता दिखाई पड़ती है। निराला की 'वह तोड़ती पत्थर', 'विधवा', 'भिक्षुक' आदि कविताओं की चर्चा खूब होती है और उनके माध्यम से निराला की प्रगतिशील दृष्टि को रेखांकित किया जाता है और महादेवी अपनी कविताओं के कारण रहस्यवादी बना दी जाती हैं।

महादेवी ने अभिशप्तों पर कविता नहीं लिखी है, बल्कि उनके जीवन के दर्द की सहयात्रा की है। संस्मरणों में दर्द की कल्पना नहीं है, गाढ़ी अनुभूति है। वह गाढ़ी अनुभूति जब महादेवी जी की कविता में उतरती है तब प्रच्छन्न बन जाती है। गद्य का ठोस गाढ़ा अर्थ कविता के रहस्यवादी झीने आवरण में झलमलाने लगता है। इसे कविता और गद्य की प्रवृत्ति का अंतर भी कह सकते हैं। तो मुझे लगता है कि महादेवी जी को और उनके काव्य को सही रूप में समझना हो तो उनके गद्य साहित्य की यात्रा की जानी चाहिए। काश, यह गद्य अलंकार-मालाओं तथा छायावादी कथन-भंगिमा से थोड़ा मुक्त होकर कुछ सीधी राह चला होता। तब कथ्य की मार और सांधी तथा प्रखर हुई होती। ❑

महादेवी वर्मा के सृजन-कर्म का अर्थ संदर्भ

महादेवी का चरम विद्रोही रूप उनके 'गद्य' में उजागर हुआ है / दुख इस बात का है कि इस ओर ध्यान ही नहीं दिया गया और तो और 'नारी विमर्श' वाले भी अभी खुलकर इस सृजन पर बात नहीं कर रहे हैं / इस पक्ष पर गंभीर विमर्श कर रहे हैं **कृष्णदत्त पालीवाल**

महादेवी वर्मा का रचनाकर्म भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की चेतना से निर्मित हुआ है। पद्य हो या गद्य इस सर्जनात्मकता में जागरण सुधार युग या सत्याग्रह युग की स्मृति का जीवंत इतिहास धड़क रहा है। इस जीवंत इतिहास की आंतरिक ध्वनि से यह अर्थ संदर्भ उजागर होता रहा है कि राजनीति के क्षेत्र में जो गांधीवाद है, सृजन-कर्म के क्षेत्र में उसे ही 'छायावाद' नाम दिया गया है। इस तरह छायावाद को शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में कहूं तो छायावाद को गांधीवाद का काव्यानुवाद भी कहा जा सकता है। महादेवी का छायावाद में प्रवेश तब हुआ जब छायावाद के कवि पंत, प्रसाद, निराला का रचना-मुहावरा अपनी सृजन-चमक की चरम सीमा पर था। इसी चमक में छायावाद की सबसे कनिष्ठ कवयित्री ने अपनी सर्जनात्मकता से वस्तु और रूप-विन्यास की 'अपूर्वता' से नया रंग दे दिया। उनके प्रगीतों में सामाजिक-राजनीतिक नवजागरण के संदर्भ संश्लिष्ट-सूक्ष्म-जटिल और कम मुखर हैं लेकिन गद्य में उनकी सामाजिकता का विस्तार उपेक्षित और नारी-यातना का विस्तार एकदम चकित कर देने वाला है।

छायावाद का सांस्कृतिक-राजनीतिक नवजागरण एक ओर तो रूढ़ियों से मुक्ति का आकांक्षी था, दूसरी ओर विदेशी साम्राज्यवाद-उपनिवेशवाद से। भारतीय नवजागरण की शक्ति से जन-मन में जैसे-जैसे मुक्ति की आकांक्षा बलवती होती गई, वैसे-वैसे 'छायावाद' का अर्थ संदर्भ विस्तृत होता गया और उसकी अंतर्वस्तु और रूप विन्यास में नवीन सर्जनात्मक दीप्ति का प्रकाश फैलता गया। आज इसी परिप्रेक्ष्य में हमें महादेवी वर्मा के रचनाकर्म पर विमर्श करना चाहिए। ऐसा न करने वाले आलोचकों ने अभी तक महादेवी वर्मा के रचनाकर्म पर भ्रांतियां ही फैलाई हैं और हर तरह से अवमूल्यन किया है। ऐसी हालत के कारण हमें महादेवी वर्मा के सृजन-कर्म पर नए सिरे से विचार-पुनर्विचार करना होगा ताकि उनके सृजन को ठीक-ठीक संदर्भों में 'डी-कन्स्ट्रक्ट' किया जा सके। उनके पूरे 'टैक्स्ट' की 'क्लोज़ रीडिंग' एक 'डीप रीडिंग' की निगाह से की जा सके।

महादेवी वर्मा की मनोभूमिका का संस्कार और निर्माण जिस सत्याग्रह युग (छायावाद) ने किया था उसका अपना इतिहास-भूगोल और व्याकरण है। 1920 ई. के आसपास 'छायावाद' का आरंभ और 'छायावाद' संज्ञा पर पर्याप्त वाद-विवादों का तूफान। 'छायावाद' का इतना अंधा विरोध हुआ कि 'छायावाद' को समझने के लिए आलोचकों के साथ छायावाद के रचनाकारों को भी खड़ा होना पड़ा। छायावाद को 'अस्पष्ट कथन की भंगिमा' एक खास तिरस्कार भरे व्यंग्य के साथ कहा गया और उसे आध्यात्मिक रहस्यवाद में धकेल कर अंग्रेजी 'मिस्ट्रिसिज़्म' का पर्याय घोषित कर दिया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जो 'छायावाद' को 'मिस्टिसिज़्म' का पर्याय नहीं समझते थे, किंतु वे तक 'आजकल के हिंदी कवि और कविता' शीर्षक निबंध में कहते हैं कि, "छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता।" उन्हें लगता था- छायावादी काव्य एक प्रकार से 'अन्योक्ति पद्धति' पर केंद्रित काव्य है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पंत-प्रसाद-निराला के सृजन-कर्म को परखते हुए पाया कि छायावाद की आध्यात्मिकता पर कवींद्र रवींद्र का रंग चढ़ा हुआ है। उन्होंने छायावाद को ईसाई प्रतीकवाद 'फैंटसमैटा' कहा और इस काव्य को 'कथन की नूतन पद्धति' या कथन की शैली मात्र घोषित कर दिया। इतना ही नहीं आचार्य शुक्ल 'छायावाद' की 'रोमाण्टिसिज़्म' का पर्याय भी नहीं मान सके- जैसा कि बहुत से आलोचकों ने माना है।

छायावाद की आचार्य शुक्ल और नंददुलारे वाजपेयी ने जिस ढंग से व्याख्या की (कुछेक आध्यात्मिक कविताओं के आधार पर) उन व्याख्याओं से थककर महादेवी ने कहा कि छायावाद न तो पश्चिम के 'रोमाण्टिसिज़्म' या स्वच्छंदतावाद की नकल है, न कथन की नूतन शैली मात्र है अपितु सच्चे अर्थों में छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। महादेवी के इस विचार का शांतिप्रिय द्विवेदी और डॉ. नगेन्द्र ने खुलकर साथ दिया। कारण, छायावाद में कहीं-कहीं मांसलता है लेकिन मूल झुकाव और रुझान 'सूक्ष्मता' की ओर ही है। इस तरह महादेवी वर्मा ने अपने निबंधों और काव्य भूमिकाओं में यह विचार व्यक्त किया कि छायावाद न आध्यात्मिकता का 'छायाभास' है न 'आध्यात्मिक छाया का भान', 'न रहस्यवाद-स्वच्छंदतावाद का पर्याय'। मूलत: छायावाद भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं, नवजागरण की भाव-गतियों-प्रवाहों, प्रेरणाओं, साहित्यिक अभिप्रायों की लाक्षणिक प्रतीकात्मकता-वक्रोक्ति-व्यंजनाओं से सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। इस सूक्ष्मता में 'अस्पष्टता' का आना स्वाभाविक है। कारण, छायावाद अंतर्मुखी कविता है- प्रगीत-कला की संपन्नता से युक्त कविता है और इसकी प्रेरणाएं भारतीय हैं। पंत-प्रसाद-निराला पर पश्चिम के स्वच्छंदतावादी आंदोलन के 'प्रभाव' का यह अर्थ नहीं है कि यह पश्चिमी स्वच्छंदतावाद की 'नकल' से उपजी कविता

है। अगर यह नकल होती तो इस कविता के प्रकृत स्वच्छंदतावाद में *वेद-उपनिषद*, बुद्ध, *रामायण*, कालिदास, भवभूति के सृजन की 'कालिदासीय लय' नदारद होती। स्वाधीनता आंदोलन और गांधी की प्रेरणा का सर्जनात्मक तप और ताप न होता। इसमें कबीर-मीरा-तुलसी आदि संवाद करते नहीं मिलते।

महादेवी के सृजन-कर्म में सूर-मीरा-अंडाल की परंपरा तो बोलती मिलती है लेकिन महादेवी को मीरा कहना उनके साथ अन्याय है। मीरा में भक्ति आंदोलन के आत्मनिवेदन और समर्पण की तन्मयता है, महादेवी में भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण की प्रचंड बौद्धिकता और प्रखरता। हर तरह की विपत्ति को झेलने की ताकत और धर्म-दर्शन-अध्यात्म की रूढ़ियों को अस्वीकार करने का साहस। नारी नवजागरण को आगे बढ़ाने का अदम्य अरमान। उपेक्षितों और नारियों को लेकर *अतीत के चलचित्र* और *शृंखला की कड़ियां* वाला आक्रोश और गुस्सा। महादेवी का चरम विद्रोही रूप उनके 'गद्य' में उजागर हुआ है। दुख इस बात का है कि इस ओर ध्यान ही नहीं दिया गया और तो और 'नारी विमर्श' वाले भी अभी खुलकर इस सृजन पर बात नहीं कर रहे हैं। जबकि इस पक्ष पर पूरे संयम के साथ गंभीर विमर्श की आवश्यकता है।

महादेवी के रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण आधुनिक भारत के नवजागरण की प्रेरणाओं, चुनौतियों ने किया। उनका जन्म 26 मार्च, 1907, फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ। कई पीढ़ियों की परंपरा में कन्या का जन्म। कन्या जन्म को अवांछित समझने की हीन मनोवृत्ति के कारण परिवार में दुख मनाया गया। महादेवी ने लिखा है- ''जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे कोने तक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी बूढ़ियां संकेत से मूक गाने वाले-वालियों को जाने के लिए कह देतीं और बड़े-बूढ़े इशारे से नीरव बाजे वालों को विदा देते- यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति के बाहर होता तो उसे बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे।'' सौभाग्य से बड़ी मनौती के बाद जन्मी लड़की का नाम बाबा ने कुलदेवी दुर्गा का विशेष अनुग्रह समझा और नाम रख दिया- महादेवी। यही दुर्गा-भाव जीवनभर इस निर्भय विद्रोही नारी में जड़ता से भरे राक्षसों को ध्वस्त करता रहा। पिता गोविंद प्रसाद और मां हेमरानी की लाड़ली महादेवी को पांच वर्ष की होते-होते इंदौर, मध्य प्रदेश में जाना पड़ा। यहीं पर संयोगवश 'अतीत के चलचित्र' का रामा मिला। आर्यसमाजी परिवार के संस्कार और घर पर ही हिंदी, उर्दू, चित्रकला और संगीत की शिक्षा। घर में पूजा-आरती, व्रत-त्योहार, भजन-कीर्तन में सूर-मीरा-तुलसी के संगीत-मधुर पदों का श्रवण और गायन। सात वर्ष की अवस्था में काव्य-सृजन का श्रीगणेश- ''आओ प्यारे तारे आओ। मेरे आंगन में बिछ जाओ।'' यह समस्यापूर्ति का युग था और साहित्य क्षेत्र में ब्रजभाषा की धाक। प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त की तरह महादेवी का कवि-कंठ ब्रजभाषा में फूटा है। ब्रजभाषा में एक पूरा सवैया समस्यापूर्ति के साथ रच डाला :

आगम है दिन नायक को, अरुताई भरी नभ की गलियान में,
सौरी सुमंद बयार बही, मुस्कान नई बगरी कलियान में,
संख धुनी विरुदावलियां अब गुंजित हैं खग और अलियान में,
वारन के हित कंज कली मुकुताहल जोरि रही अंखियान में।

प्रयाग में विद्याध्ययन के लिए जाने से ही उन पर *सरस्वती* पत्रिका और मैथिलीशरण गुप्त के काव्यसृजन का रंग चढ़ सका। वे श्रीधर पाठक, रामनरेश



चित्र सौजन्य : महेंद्रराजा जैन

त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध और पूरे समकालीन सृजन परिवेश में घुल-मिल चुकी थीं। फलत: 'अहो' और 'कहो' की तुकबंदियों से मुक्त होकर स्वाधीनता संग्राम की भाषा खड़ी बोली में रमने और मंजने लगीं और पहला स्वर्ण छबियों और प्रतीकों से भरा काव्य संग्रह 1930 में प्रकाशित हुआ- *नीहार*।

दरअसल उस समय की मनोभूमि पर महादेवी ने स्वयं कहा है कि ''जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत अध्ययन के लिए बाहर आई, तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं। अत: उनसे प्रभावित होकर मैंने भी शृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी माता, 'तेरी उतरूं आरती, मां भारती' आदि रचनाओं की सृष्टि की।...उनकी समाप्ति के साथ मेरी कविताओं का शैशव भी समाप्त हो गया। उस समय की 'अबला', 'विधवा' आदि रचनाएं *आर्य महिला* एवं *महिला जगत* पत्रिकाओं के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर विचरण करने लगीं। जिसमें व्यष्टिगत दुख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। कहना नहीं होगा कि इस दिशा में मेरे मन को वही विश्राम मिला जो पक्षी शावक को कई बार गिर-उठकर अपने पंखों के संभाल लेने पर मिलता हो।''

कई बार महादेवी ने अपने प्रगीतों को 'गीत विहग' कहकर संबोधित किया है। इस भाव की प्रथम रचना *चांद* पत्रिका के प्रथमांक में प्रकाशित हुई और रचना-कर्म 'नीहार' में आकार पा गया। कॉलेज जीवन में बच्चों के लिए फूल-भ्रमर-तितली और वायु को पात्र बनाकर काव्य-रूपक लिखा। लेकिन इसके बाद इस विधा से सदा के लिए हाथ जोड़ लिए। इसी बीच राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान से मैत्री प्रगाढ़ हुई और देशभक्ति के उद्दाम प्रेम से हृदय भर गया। मार्क्स और फ्रायड के सिद्धांतों से महादेवी की काव्ययानुभूति, वेदनानुभूति को नापने वाले आलोचकों

ने उनके सृजन को अतृप्ति-अभाववादी, रहस्यवादी-अध्यात्मवादी, पलायनवादी-निराशावादी-व्यक्तिवादी न जाने कितने नामों से घेरा और धिक्कारा है- तथा महादेवी के देशभक्ति भाव की पावनता और दृढ़ता से पीठ फेर ली है।

भगवान बुद्ध के प्रति गहन भक्तिमय अनुराग होने के कारण और अपने बाल-विवाह के अवसाद को झेलने वाली महादेवी बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहती थी। कुछ समय बाद महात्मा गांधी के संपर्क और प्रेरणा से उनका मन सामाजिक कार्यों की ओर उन्मुख हो गया। प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. करने के बाद प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य का पद संभाला और *चांद* पत्रिका का नि:शुल्क संपादन किया। प्रयाग में ही उनकी भेंट रवींद्रनाथ टैगोर से हुई और यहीं पर 'मीरा जयंती' का शुभारंभ किया। कलकत्ता में जापानी कवि योन नागूची के स्वागत समारोह में भाग लिया और शांति निकेतन में गुरुदेव के दर्शन किए। यायावरी की इच्छा से बद्रीनाथ की पैदल यात्रा की और रामगढ़, नैनीताल में 'मीरा मंदिर' नाम की कुटीर का निर्माण किया। एक अवसर ऐसा भी आया कि *विश्ववाणी* के बुद्ध अंक का संपादन किया और 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की। भारतीय रचनाकारों को आपस में जोड़ने के लिए 'अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन' का आयोजन किया और राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद से 'वाणी मंदिर' का शिलान्यास कराया।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात इलाचंद्र जोशी और दिनकर जी के साथ दक्षिण की साहित्यिक यात्रा की। 'साहित्यकार संसद' से निराला की काव्य-कृतियों से कविताएं लेकर 'अपरा' शीर्षक से काव्य-संग्रह प्रकाशित किया। 'साहित्यकार संसद' के मुख-पत्र *साहित्यकार* का प्रकाशन और संपादन इलाचंद्र जोशी के साथ किया। प्रयाग में नाट्य संस्थान 'रंगवाणी' की स्थापना की और उद्घाटन मराठी के प्रसिद्ध नाटककार मामा वरेरकर ने किया। इस अवसर पर भारतेंदु के जीवन पर आधारित नाटक का मंचन किया गया। अपने समय के सभी साहित्यकारों पर 'पथ के साथी' में संस्मरण-रेखाचित्र-कहानी-निबंध-आलोचना सभी को घोलकर लेखन किया। 1954 में वे दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादेमी की सदस्या चुनी गईं तथा 1981 में सम्मानित (फेलोशिप) सदस्या। जीवनभर राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की सेवा में समर्पित महादेवी ने 11 सितंबर, 1987 में अंतिम सांस ली।

क्या विडंबना है कि हिंदी जगत ने जितना ध्यान महादेवी वर्मा के कवि-कर्म पर केंद्रित किया उतना उनके गद्य-कर्म पर नहीं। जबकि उनके रचना-बिंब की 'समग्रता' और 'समझ' दोनों को मिलाए बगैर अधूरी रहती है। अपने कवि-कर्म में अंतर्मुखी महादेवी अपने गद्य-कर्म में बहिर्मुखी और निर्भय विद्रोही हैं। उपेक्षितों और नारी विषयक निबंधों-रेखाचित्रों 'संस्मरणों में महादेवी ने जिस क्रांतिकारी सामाजिकता के विस्तार का परिचय दिया है, उसका समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र हमारी आंखें खोलने वाला है। उन्होंने विधवाओं-वेश्याओं और अवैध संतानों की समस्याओं तथा सामान्य नारी उपेक्षिताओं पर बहुत गहराई से चिंतन प्रस्तुत किया है। एक जगह इस विषय में यहां तक कहा है कि "अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूं, अत: इन निबंधों में उग्रता की गंध स्वाभाविक है, परंतु ध्वंस के लिए ध्वंस सिद्धांत में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।" चिंतन में उनका दृष्टिकोण रचनात्मक रहा है। हां, झूठा विद्रोह करने वाली आधुनिकाओं का उन्होंने कभी भी समर्थन नहीं किया। उनमें तर्क-केंद्रित आधुनिकता का समर्थन है।

महादेवी का कवि-कर्म 'नीहार' (1930), 'रश्मि' (1932), 'नीरजा' (1935), 'सांध्यगीत' (1936), 'दीपशिखा' (1942), 'प्रथम आयाम' (1982), 'सप्तपर्णा' (अनूदित 1962), 'हिमालय' (1963) तथा 'अग्निरेखा' (1990) तक विस्तार पाता रहा है। प्रगीत-कला की तराश में महादेवी का कोई मुकाबला नहीं है। छायावाद और छायावाद के बाद का कोई भी प्रगीतकार महादेवी की ऊंचाई को नहीं छू सका है। 'सांध्यगीत' में उनका काव्यात्मकार और चित्रकार अपने साथ संगीत की आंतरिक लय के साथ उपस्थित है। 'यामा' (नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत के प्रगीतों का काव्य-संग्रह) काव्य, चित्र और संगीत महिमा की त्रिवेणी है। महादेवी ने 'दीपशिखा' को काव्यमयचित्र और चित्रमयकाव्य अथवा चित्रगीत की संज्ञा उचित ही दी है। यहां प्रगीत की पृष्ठभूमि के रूप में चित्र अंकित हैं। 'दीपशिखा' के काव्य-सौंदर्य पर मुग्ध होकर आधुनिक हिंदी कविता के सबसे बड़े कवि और विद्रोही सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखा है :

हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-वाणी,
स्फूर्ति चेतना-रचना की प्रतिभा कल्याणी।

महादेवी को निराला और मैथिलीशरण गुप्त, दोनों ने 'वीणा-वाणी' तथा 'साहित्य-शारदा' कहा है और 'स्फूर्ति चेतना-रचना' का वरदान। महादेवी को सतत रचना-साधना से अनुभव होता रहा है कि कलाओं में चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है। बड़ी बात यह है कि महादेवी के गीत और चित्र में एक ही भाव रहता है, इसलिए अनुभूति घनता में छेद नहीं रहता। प्रगीत को पूरे क्लासिक संयम से गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के अनुकूल चित्रित कर देना उसकी सिद्धि है। रंगों की दृष्टि से सफेद-नीले से काम चला लेती हैं। जहां कई को मिलाना आवश्यक होता है वहां ऐसे मिलाती हैं कि किसी की स्वतंत्र सत्ता न रहे।

महादेवी ने निराला-पंत की भांति छायावाद में जिस 'मैं शैली' को अपनाया है वह केवल परंपरा-संस्कृति की निर्वैयक्तिकता के आवरण को उतारने का "विद्रोह-भर नहीं है, उसमें स्वानुभूति की आत्मीयता और अंतरंगता का निजीपन है।" इसके पीछे आधुनिक युवती का पूरा व्यक्तित्व बोल रहा है, जो समाजिक स्वाधीनता चाहता है और रूढ़ियों के अस्वीकार का साहस रखता है। वे पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओं-व्यक्तियों के माध्यम से अपनी बात नहीं कहतीं, 'स्वानुभूति' या वैयक्तिकता के ढंग को अपनाकर प्रतीकों-मिथकों-रूपकों से अपनी बात कहती हैं।

मध्ययुगीन कवियों के आत्मनिवेदन से दूर उनकी प्रखर बौद्धिकता आधुनिक भावबोध की देन है। महादेवी के नारी-मन ने समाज से यह छूट पहली बार ली जो कह सके "उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन"। 'प्रियतम' को बराबरी में पाना-अपनाना महादेवी को मान्य है लेकिन पुरुषवाद-मर्दवाद और वर्चस्ववाद के प्रति खुला विद्रोह और हिकारत का भाव। द्विवेदीयुगीन नारी का 'अबला' बिंब महादेवी तोड़कर चूर कर देती हैं और ऐसी नारी-जागरण की शक्ति का विस्फोट करती हैं कि जिसमें ध्वनित है- "पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला' का निर्भय स्वर हो। उनकी आत्मानुभूति में है मुक्ति का अरमान। मर्दवादी-समाज में नारी के लिए आत्माभिव्यक्ति और मुक्ति का अरमान कितना चुनौती-भरा रहा होगा, आज उसका अनुमान ही किया जा सकता है। प्रश्न उठता है कि निर्भय नारी महादेवी को 'रहस्यवाद' की शरण में क्यों जाना पड़ा? इसका उत्तर नारी-यातना 'थियरी ऑफ सफरिंग' में सहज ही पाया जा सकता है। रहस्यवाद का पर्दा क्या मिला महादेवी की सारी प्रणयानुभूति ससीम में कूदकर असीम में जा मिली। यहां वेदांत के अद्वैत की नई दार्शनिक निष्पत्ति भी हुई है।

महादेवी के रचना-कर्म में आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा आत्म-प्रसार की आकांक्षा का पर्याय है। नई शिक्षा ने प्रकृति की विराटता का बोध जगाया और देश-काल की नई सीमाओं से परिचय और साक्षात्कार। आत्मालोचन ने प्राचीन रूढ़ियों के प्रति असंतोष व्यक्त किया। रीतिकालीन प्रेम की संकीर्णता से मानव को निकाल कर प्रेम सौंदर्य की उन्मुक्तता की ओर ध्यान दिलाया। प्रेम की पुरानी चहारदीवारी को तोड़ती महादेवी की कविता सभी प्रकार की क्षुद्रताओं-संकीर्णताओं के विरोध की कविता है। उसमें उन्मुक्त भावना का आलम यह है कि वह अनंत-असीम में उड़ना चाहती हैं। "तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस पार क्या है?" की अर्थ-ध्वनि में रहस्यात्मकता से ज्यादा आत्म-विस्तार का अर्थ-बिंब है। उनकी कविता की 'अंतर्वस्तु' सामाजिक है जिसमें मुक्ति के बिंब-प्रतीक भरे पड़े हैं। चातक, बादल, दीपक महादेवी के प्रिय प्रतीक हैं जिनमें 'मुक्ति की पुकार' है। यहां मुक्ति के लिए नवीन विनय-पत्रिकाएं मौजूद हैं जैसे 'कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो'। सागर-जल-मछली के बिंब विराटता के बोधक हैं। 'असीम' के प्रति रहस्य-भावना फलने वाली आध्यात्मिकता कम आत्म-विस्तार का अरमान अधिक है। प्रगीतों के कल्पना-लोक में घुटनभरी सामाजिकता से राहत पाने का प्रयास है।

महादेवी के प्रकृति-प्रेम में स्वच्छदतावाद की अर्थच्छाया का निवास है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में प्रकृति-प्रेम, देश-प्रेम का उजला रूप था। आधुनिक युवक सत्याग्रह-युग में प्रकृति-प्रेम की ओर देश-प्रेम की प्रेरणा से गए। प्रकृति का खुला वातावरण सामाजिक घुटन से मुक्ति देता है। कारण, प्रकृति में 'स्वाधीनता-स्वच्छंदता' का संदेश गूंज रहा है। पशु-पक्षी, लता, गुलम, पेड़-पत्ते, पर्वत-नदी-सागर, निर्झर, चातक, चांद, कोकिल, कीर- सभी में एक स्वच्छंद संदेश निहित है। छायावाद के सभी कवियों ने प्रकृति को बहुत महत्व दिया और उसे अनेक रूपों-प्रेरणाओं में चित्रित किया। वैयक्तिक स्वाधीनता का यह व्यक्तिवाद नूतन राष्ट्रीयता से उपजा था और इसी से प्रेरित होकर युवक-युवतियों ने पराधीनता के बंधनों से विद्रोह करते हुए स्वाधीनता और स्वाधीन चिंतन की ओर कदम उठाया। प्रकृति के काव्य में स्वतंत्र सत्ता को प्रतिष्ठित करने के पीछे क्या था? स्वतंत्र मानव व्यक्तित्व और अस्तित्व की महत्व-प्रतिष्ठा। महादेवी में इसी भाव से कालिदासीय-लय फूटी और हिमालय-प्रेम उमड़ा। इतना उमड़ा कि 'हिमालय' से संबंधित कविताओं का उन्होंने संग्रह-संपादन कर डाला। प्रकृति ने मानव में नए सौंदर्यबोध की सृष्टि की और प्रकृति के विविध ऐन्द्रिय बोध जगाने वाले दृश्यों का अंकन किया- भौंरा, कोकिल, चातक, फूल आदि। यहां प्रकृति और नारी की अद्वैतता का संसार अपूर्वता के साथ सामने आया। स्त्री-पुरुष के बीच स्वच्छंद प्रेम 'स्वाधीनता' का नया अर्थ लेकर आया। प्रिया-प्रेयसी, सजनी-सखी महादेवी के काव्य में 'प्रियतम' से ऊंचे आसन पर बैठी दिखाई देती हैं। प्रणय में इस तरह नई स्वच्छंदता को स्थान मिला। महादेवी के काव्य ने प्रथम बार प्रणय-प्रेम के मानदंड ही बदल डाले। अशरीरी नारी-सौंदर्य में कल्पना का अपार विस्तार एक नया सौंदर्यशास्त्र ही प्रस्तुत कर देता है।

यहां नारी-व्यक्तित्व की स्वाधीनता-स्वच्छंदता-स्वतंत्रता का अर्थ सांस्कृतिक नवजागरण से जुड़ा हुआ है। महादेवी का गीत 'जाग तुझ को दूर जाना' का अर्थ निराला के 'जागो फिर एक बार' से मिलाकर करना चाहिए। जातीय स्मृति और आत्म-गौरव ने महादेवी में इतनी शक्ति और भक्ति पैदा की है कि वे पूर्णावतार कृष्ण को जगाना चाहती हैं- 'वृंदावन बिहारी जाग।' इस जागरण में *गीता* और *भागवत* दोनों का स्वर है- भारतेंदु और माखनलाल चतुर्वेदी दोनों की पराधीनता से मुक्ति दिलाने वाली आवाज। छायावाद की अबाध स्वच्छंद कल्पना में जो भावावेग है उसके पीछे गांधी का सत्याग्रह-युग है। महादेवी के आंसुओं से गीले काव्य-संसार की कल्पना में सत्यान्वेषी अंतर्दृष्टि का आग्रह स्वप्नलोक रचता है। भावावेग से उत्पन्न रूप-विधायिनी कल्पना ने प्रगीतों में नए-रूप-विन्यास से क्रांति उपस्थित की है। छायावादी नवीन उपमान-योजना और चित्रात्मकता के पीछे बिंब ग्रहण की शक्ति सक्रिय रही है- "यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।" इस तरह महादेवी के प्रगीतों का रूप-विन्यास, भाषा, प्रतीक-बिंब लय के स्तर पर अद्भुत उपलब्धि कहा जा सकता है। *दीपशिखा* (1942) के प्रगीतों का स्वर शक्ति प्रवाह की अटूट लय का संकेत हैं।

आज यह भूलने के विरुद्ध बात है कि मौलिक सृजन की अपूर्वता के साथ महादेवी ने सर्जनात्मक अनुवादक की भूमिका का सफल निर्वाह किया है। वैदिक ऋचाओं से लेकर वाल्मीकि, थेरगाथा, कालिदास, अश्वघोष, भवभूति तथा जयदेव की उदात्त काव्य-कृतियों का *सप्तवर्ण* नाम से काव्यानुवाद किया है। कालिदास के महाकाव्य *कुमारसंभव* तथा *रघुवंश*, अश्वघोष के महाकाव्य *बुद्धचरित* का काव्यानुवाद उनकी उस मानसिकता को सामने लाता है जिसमें 'परंपरा' का बड़ा अर्थ संदर्भ है और यह परंपरा बंधन नहीं है, स्मृति है, निरंतरता है। भारतीय साहित्य-संस्कृति के परस्पर संबंध को समझने के लिए भी यह 'परंपरा' ज्ञान जरूरी है। इस परंपरा के भीतर से फूटती आधुनिकता ने छायावाद में अपने को निखारा है।

काव्यकार महादेवी का गद्यकार रूप अपनी बृहत्तर सामाजिकता में पाठक को विस्मयचकित करने वाला रहा है। इस क्षेत्र में वे पहले-पहल *अतीत के चलचित्र* (रेखाचित्र) लेकर उपस्थित होती हैं। उनकी करुणा के विस्तार का अमिट पहलू है यह रेखाचित्र। इस रेखाचित्र के विषय में लिखा है कि "समय-समय पर जिन व्यक्तियों के संपर्क ने मेरे चिंतन को दिशा और संवेदन को गति दी है, इन संस्मरणों का श्रेय उन्हें मिलना चाहिए।" अर्थात इन संस्मरणों में महादेवी के सृजन-कर्म के प्रेरणा-स्रोत निहित हैं। इनकी कहानी पुरानी होने पर भी करुणा से भीगी है। गृहस्वामिनी और वृद्धसेवक (रामा) की कथा में जीवन-चक्र के अनेक 'पाठ' मौजूद हैं। इन संस्मरणों की कहानी में महादेवी के जीवन की अंतरंग झांकी है और अतीत की कथा को लिखने की व्याकुलता। उपेक्षित पात्रों पर आत्म रंग ने रामा, सबिया, घीसा, अलोपी, बदलू आदि को कथानायक बनाया है। कुरूपता-विद्रूपता का सौंदर्य कितना महान है, इस दृष्टि ने इन पात्रों को जीवन-यथार्थ का सौंदर्य दिया है। यहां दलित-पीड़ित-उपेक्षित जनों पर करुणा का विस्तार जीवन का सच्चा मर्म उद्घाटित कर देता है।

करुणा की इसी बृहत्तर सामाजिकता के विस्तार से *शृंखला की कड़ियां* (1942) नारी विषयक सामाजिक निबंधों की गद्य पुस्तक आती है। इस पुस्तक का 'समर्पण' इसकी पूरी अंतर्वस्तु को व्यंजित कर देता है- "जन्म से अभिशप्त, जीवन से संतप्त किंतु अक्षय वात्सल्य वरदानमयी भारतीय नारी को।" वस्तुत: *शृंखला की कड़ियां* में भारतीय नारी के अभिशापों की करुण चीत्कार है। नारी मुक्ति के उपायों की ओर गहन चिंतन और विद्रोही तेवर। अन्याय के प्रति असहिष्णु महादेवी का स्वर यहां आहत और उग्र है। नारी-यातना के इतिहास को सामने लाने वाले इन वैचारिक लेखों का आज 'नारी विमर्श' के संदर्भ में विशेष महत्व है।

आलोचना टेकनीक से उद्भूत निबंधों का संग्रह 'महादेवी का

विवेचनात्मक गद्य' पुस्तक में साहित्य और संस्कृति का नया परिप्रेक्ष्य सामने आता है। यह परिप्रेक्ष्य पूरा होता है- ''साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध'' (1960) पुस्तक से। इन आलोचनात्मक निबंधों ने छायावाद के नए काव्य-चिंतन के सौंदर्यशास्त्र की नींव रखी है। सन 1943 में *स्मृति की रेखाएं* का प्रकाशन हिंदी साहित्य की एक अविस्मरणीय घटना बन गया। रेखाचित्रों में कहानी, निबंध और संस्मरण-तीनों का 'फ्यूजन'। गुंगिया, चीनी भाई, भक्तिन और अपढ़ पहाड़ी कुली का यह संसार गहन आत्मीयता में अद्वितीय है और हिंदी गद्य की सर्जनात्मकता का अनुपम उदाहरण। समाज के विपन्न, अनाथ, अछूत व्यक्तियों का आंतरिक सौंदर्य पहली बार हिंदी गद्य में इतनी उर्वरता से प्रकट होता है। महादेवी के आस-पास यदि भक्तिन थी तो पंत, निराला भी थे। रचनाकार-मित्रों और युग के प्रेरणा पुरुषों को लेकर 'पथ के साथी' का 1956 ई. में प्रकाशन हुआ। अपने 'आत्मकथ्य' में कहा कि ये संस्मरण हैं- ''संस्मरण को मैं रेखाचित्र से भिन्न साहित्यिक विधा मानती हूं।''

इन संस्मरणों को वे 'मन की तीर्थयात्रा' कहती हैं और अपने सौहार्द्र की शपथ भी। यहां दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त), निराला, प्रेमचंद, प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, प्रणाम (रवींद्रनाथ टैगोर,) पुण्य स्मरण (महात्मा गांधी), राजेंद्र बाबू, जवाहर भाई तथा संत राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन पर लिखे गए संस्मरण हैं। इन सभी के व्यक्तित्व-कृतित्व, प्रभाव-प्रेरणा, चिंतन-आलोचना और उनकी मनोभूमियों को स्पष्ट करने का प्रयास है। महादेवी का परिवार पशु-पक्षियों के संस्मरणों से भी नाभि-नाल रूप में जुड़ा हुआ है और इस आत्मीयता की अभिव्यक्ति *मेरा परिवार* (1971) में हुई है। यह एक नया हिंदी का पंचतंत्र है जिसकी 'स्मृति-यात्रा' में 'पशु-पक्षी ही मेरे संगी' रहे हैं किंतु यह दुर्योग ही कहा जाएगा कि मनुष्य ने उनसे यह प्राथमिकता अनायास ही छीन ली है। ये सभी हमारे हैं, हमारा जीवन हैं, तदाकार हैं- इस दर्शन की भारतीय परंपरा के स्वर को 'नीलकंठ', 'गिल्लू-गिलहरी', 'सोना हिरनी', 'दुर्मुख खरगोश', 'गौरा गाय', 'नीलू कुत्ता' और 'निक्की रोजी और रानी' में भर दिया है।

महादेवी की कसकती-करकती चिंता के मूल में संस्कृति-भाषा और शिक्षा रही है। *भारतीय संस्कृति के स्वर* (1984) स्पष्ट करने के लिए उन्होंने 'मातृभूमि देवोभव', 'संस्कृति का प्रश्न', 'भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि', 'मानव विकास परंपरा के संदर्भ में', 'संस्कृति और प्राकृतिक परिवेश', 'भारतीय संस्कृति और शासन', 'भाषा का प्रश्न', 'शिक्षा का उद्देश्य', 'भारतीय संस्कृति और नारी' तथा 'संस्कार और संस्कृति' जैसे चिंतनपरक निबंध लिखे हैं। इस तरह के निबंधों की एक धारा का ही विस्तार 'क्षणदा' (1956), 'संकल्पिता' (1969), और 'चिंतन के क्षण' जैसे निबंध संग्रहों में हुआ है। महादेवी ने निबंध के विषय में कहा है कि कविता लिखने से गद्य लिखना अवश्य ही कठिन रहा होगा, अन्यथा 'गद्यं कवीनां निकषं वदंति' न कहा गया होता। कविता भाव-केंद्रित होती है, गद्य विस्तार केंद्रित। यहां यह कहना आवश्यक है कि महादेवी ने अपने गद्य में जो जीवन-संग्राम किया है, उसका महत्व उनके गद्य को समझने के लिए कम नहीं है।

महादेवी के रचनाकार व्यक्तित्व को पद्य-गद्य दोनों में मिलाकर ही समग्रता में एकाग्रचित से 'समझना-जानना' चाहिए ताकि दोनों के 'पाठ' को मिलाकर उनका 'इंटरप्रिटेशन' किया जा सके। साथ ही साहित्य और समाज के उस अर्थपूर्ण द्वंद्वात्मक संबंधों की नई व्याख्या हो सके। साहित्यिक पाठ के अंत:संबंधों की सहायता से अंतर्पाठक से उन तत्वों का विश्लेषण-भाष्य किया जा सकता है जो 'पाठ' में दबे पड़े हैं। यह ठीक है कि प्रत्येक 'कलाकृति' भिन्न होती है, किंतु विभेद कलाकृति के अनुपम होने में नहीं, अपितु प्राय: कलाकृति की 'पाठात्मकता' का हिस्सा होता है। 'पाठ' का पाठक से संबंध मात्र 'उपभोक्ता' या 'आस्वादक' तक सीमित नहीं है बल्कि नव अर्थ उत्पन्न करने वाले उत्पादक का है।

महादेवी को पढ़ते हुए चाहे वह *दीपशिखा* हो या *शृंखला की कड़ियां* सदैव ध्यान रखना चाहिए कि लेखन ही लेखन को लिखता है- अर्थात परंपरा, संस्कृति और पूर्व-लेखन के अस्तित्व के बिना कोई रचनाकार लिख ही नहीं सकता। पूर्ववर्त्तियों के लेखन का कलाकृति नए ढंग से परिष्कार संस्कार करती है। महादेवी जिस संस्कृति-परंपरा-दर्शन-इतिहास-साहित्य, भाषा (साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा) में पोषित हैं वह संस्कृति हिंदी तथा भारतीय साहित्य की परंपरा है। इसलिए इस परंपरा-संस्कृति की परिधि में महादेवी ने गद्य-पद्य लिखा है और इसी के भीतर से निकला है उनकी रचनाओं का व्याकरण काव्यशास्त्र। इस दृष्टि से महादेवी की कलाकृतियों पर विचार सांस्कृतिक तंत्र के भीतर ही करना चाहिए। रहस्यवाद-अध्यात्मवाद, फ्रायडवाद, मार्क्सवाद के आरोपित प्रतिमानों से अभी तक हिंदी आलोचना महादेवी के रचना-कर्म पर 'बरबराने' की मुद्रा में विचार करती रही है। नतीजा यह हुआ है कि हम उनके रचना-कर्म के अंत:करण में प्रवेश करने से ही वंचित रहे हैं।

महादेवी के 'पाठ' की अर्थबहुलता, नवजागरण की संदर्भपरकता, भारतीय नारी की अग्नि-धर्मा तेजस्विता और दुर्गा-भाव की शक्ति-सौंदर्य कला से अभी तक पाठक सीधा साक्षात्कार नहीं कर सका है। क्योंकि अभी तक पाठक ने उनके 'पाठ' के जटिल प्रतीक-रूपक-मिथक पर्तों को खोला ही नहीं है। खोला होता तो पाया होता कि बुद्धिवादी महादेवी अध्यात्म-पलायन के रहस्यवाद में गर्क नहीं हैं, उनमें सामाजिक स्वाधीनता की अग्नि धधक रही है और उपेक्षितों के उद्धार का संकल्प। इस नारी-मन में हर चुनौती को झेलने का साहस है- ''पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला'' की काव्य-टोन तो यही कहती है। ❑

पाठकों से निवेदन

मूल्य : सात रुपये, वार्षिक : 70 रुपये

पत्रिका मंगाने के लिए मनीऑर्डर / डीडी / पोस्टल ऑर्डर

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय

के नाम से बनवाएं तथा निम्नलिखित पते पर भेजें

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामाकृष्णापुरम

नई दिल्ली-110066

26100207/26105590

साहित्य और उसमें स्त्रियों का स्थान

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा ने 1935 में 'चांद' पत्रिका के विदुषी अंक का संपादन किया था। उन्होंने पत्रिका के संपादकीय में अपने विचार प्रकट करते हुए नारी की सामाजिक स्थिति और उसकी समस्याओं का मुद्दा उठाया था। विदुषी अंक के संपादकीय के रूप में लिखे गए महादेवी के विचार हम यहां ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत कर रहे हैं।

–संपादक



किसी ने साहित्य को समाज विशेष का दर्पण, किसी ने जीवन की विवेचना और किसी ने उत्कृष्टतम कल्पनाओं, भावों और विचारों की समष्टिमात्र माना है। वास्तव में वह तीनों ही है, कारण, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में विकास पाने वाले मानव-समाज उसमें प्रतिबिम्बित रहते हैं, जीवन की सुख-दुख, रागविरागमयी अनेकरूपता की उसमें अभिव्यक्ति मिलती है तथा युग विशेष के उत्कृष्टतम व्यक्तियों की नश्वर विचारधारा उसी की सीमा में आबद्ध होकर अमरता पाती है। इतिहास में जिस प्रकार राजनैतिक तथा सामाजिक परिवर्तन संग्रहीत रहते हैं, साहित्य में उसी प्रकार उन परिवर्तनों के अंतर में रहकर उन्हें परिचालित करने वाली विचारधारा के उद्गम और प्रगति का परिचय मिलता है, जो वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही हैं।

जब से मनुष्य अपने आपको एक अपरिचित संसार में पहले-पहले पाता है तभी से वह उसकी प्रत्येक वस्तु से परिचित होने, उससे कोई रागात्मक संबंध स्थापित करने और उस संबंध में सामंजस्य उत्पन्न करने की ओर प्रयत्नशील रहने लगता है। इसी सामंजस्य का प्रथम रूप बालक में और उसका उत्कृष्टतम तथा अंतिम रूप साहित्यकार में मिलता है। वास्तव में सारी कलाओं के प्रथम अंकुर हमें एक बालक के विकास में प्रत्यक्ष हो जाते हैं। प्रथम वह किसी सुंदर वस्तु को देखकर गुनगुनाना या हर्ष-ध्वनि करना सीखता है, फिर खिलौने को तोड़-फोड़कर बनाना; इसके उपरांत पृथ्वी पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं खींचना तथा सबके अंत में किसी वस्तु या कार्य पर अपने विचार और भाव प्रकट करना जान जाता है। यही बालक अनुकूल परिस्थितियां पाकर किसी विशेष कला या साहित्य की ओर आकर्षित होकर हमारे सम्मुख एक उत्कृष्ट कलाकार या साहित्यकार के रूप में आ सकता है।

नाद के कोमल तथा कर्कश स्वरों में सामंजस्य का अनुभव और उसे प्रकट करने की शक्ति का आ जाना संगीत की सिद्धि, है, परंपरा विरूद्ध और भिन्न रंगों में सामंजस्य ढूंढकर उसे प्रत्यक्ष करना चित्रकार का लक्ष्य है, सरल और कुटिल रेखाओं से आबद्ध भौतिक सृष्टि के बाह्य आकारों की अनेकरूपता में सौंदर्य की एकाकारिता दिखा देना शिल्पकार का कार्य तथा मानव हृदय की सम और विषम संख्यातीत भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों में सामंजस्य देखकर उसे शब्दों में साकार कर देना साहित्यकार का ध्येय है।

मनुष्य जिन मनोवृत्तियों तथा प्रवृत्तियों की सहायता से साहित्य का निर्माण करता है उनके न्यूनाधिक सहयोग के अनुसार ही साहित्य को दर्शन, विज्ञानादि तर्कप्रधान और उपन्यास, नाटक तथा काव्यादि भाव और कल्पनाप्रधान विषयों में विभाजित कर दिया गया है। इसमें संदेह नहीं कि हमारी प्रत्येक अनुभूति में तर्क, बुद्धि, कल्पना, भावना आदि का इस प्रकार मिश्रण रहता है कि हमारे लिए किसी वस्तु को उसके नग्न रूप में देखना कठिन है। एक सुंदर फूल के सौरभ से जब हमारी घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति होती है, कोमलता के स्पर्श से जब हम सुख पाते हैं, उसके रूप से जब हमारी दृष्टि को आनंद मिलता है तभी तो हम इसे फूल का ज्ञान कहते हैं। परंतु एक फूल को हर्ष विषाद से रहित होकर केवल एक भौतिक वस्तु मात्र समझकर देखना एक साधना है जिसकी प्रवृत्ति वैज्ञानिक को जन्म देती है और निवृत्ति कवि को।

मनुष्य के सुख-दुख, हर्ष-शोक, अनुराग-विराग शाश्वत् हैं। उनकी अभिव्यक्ति भी अविच्छिन्न गति से होती ही रहती है, परंतु जब वह अभिव्यक्ति कला का आश्रय लेकर अपने सुंदरतम रूप में प्रकट होती है तब साहित्य के अंतर्गत मानी जाती है। सब प्रकार के नियम और शृंखला से रहित

क्रमहीन वाणी साहित्य में स्थान नहीं पाती।

काव्य के अतिरिक्त साहित्य के अन्य अंगों का कला की परिधि में प्रवेश निषिद्ध है, परंतु वास्तव में साहित्य उत्कृष्ट कोटि की कला ही है। अन्य कलाओं के समान इसके भी विचारात्मक तथा रचनात्मक दो पक्ष हैं जिनमें पहला मनुष्य की मनोवृत्तियों से संबंध रखता है तथा दूसरा उनकी अभिव्यक्ति से। विषय विशेष के लिए प्रयुक्त भिन्न-भिन्न शैलियां कला की ही छाया में विकास पाती हैं, परंतु इसमें संदेह नहीं कि नवीन तथा उत्कृष्ट विचारों से शून्य, चमत्कृत कर देने वाली शैली, साहित्य को हीरकाभरणों से सज्जित निष्प्राण प्रतिमा के समान बना देती है तथा उपयुक्त और सुंदर अभिव्यक्ति के बिना कल्पना, भाव और विचारों की मौलिकता सूखे पत्तों में ढकी हुई सुवर्ण राशि के समान सारा सौंदर्य खो देती है। दोनों पक्षों का सामंजस्य ही श्रेष्ठ साहित्य का प्राण है।

"साहित्य की सृष्टि के लिए स्त्री या पुरुष के भेद की आवश्यकता नहीं और कतिपय विद्वानों का यह मत कि स्त्रियां श्रेष्ठ कलाकार नहीं हो सकतीं निरर्थक ही नहीं, अनुचित भी है। किस व्यक्ति को साहित्य के किस अंग में अधिक सफलता मिलेगी यह उसके तर्क, कल्पना, भावुकता आदि के प्राधान्य या गौणता पर निर्भर है।"

साहित्य की सृष्टि के लिए स्त्री या पुरुष के भेद की आवश्यकता नहीं और कतिपय विद्वानों का यह मत कि स्त्रियां श्रेष्ठ कलाकार नहीं हो सकतीं निरर्थक ही नहीं, अनुचित भी है। किस व्यक्ति को साहित्य के किस अंग में अधिक सफलता मिलेगी यह उसके तर्क, कल्पना, भावुकता आदि के प्राधान्य या गौणता पर निर्भर है। प्राय: एक मनोविज्ञानवेत्ता दार्शनिक कवि नहीं हो सकता और न हृदय के गूढ़तम रहस्य से परिचित कवि न्याय शास्त्र का आचार्य हो सकता है। जिस समय हृदय भावों के प्रवाह में बहता होता है मस्तिष्क विश्राम लेता है और जग मस्तिष्क तर्क के आह्वान से जागरूक बन जाता है, हृदय की वाणी को मौन होना पड़ता है। जिन व्यक्तियों में हृदय मस्तिक से अधिक जागरूक होता है उनमें भावुकता का प्राधान्य मिलता है तथा जिनमें मष्तिष्क हृदय से अधिक क्रियाशील होता है उनमें तर्क का। प्राय: एक व्यक्ति के जीवन में भी यह अवस्थाएं आती रहती हैं। यही कारण है कि हम प्राय: पत्ते की कंपन को भी हृदय में अनुभव करने वाले भावुक कवि को अंत में ऐसे दार्शनिक के रूप में पाते हैं जिसे पर्वत का हिलना भी नहीं हिला पाता।

ऐसे साहित्यकार कम होंगे जिनकी मनोवृत्तियां इतनी सधी हुई हों और उनमें इतना साम्य हो कि वे प्रत्येक दिशा में समान रूप से सफल हो सकें।

स्त्री में स्वभाव से भावुकता अधिक होने के कारण वह उन विषयों की ओर सरलता से आकर्षित हो जाती है जिनमें भाव का प्राधान्य रहता है। मनोवृत्ति के अतिरिक्त परिस्थितियां भी उसे इसमें सहायता देती है। वह संसार की रुक्षता से दूर अपने स्नेहीजनों के स्नेह की मृदुल सीमा के भीतर कल्पना द्वारा अनेक अभूतपूर्व स्वर्ग रचने का और भावों के अविच्छिन्न प्रवाह में बहने का अवकाश पाती रहती है तथा उसके जीवन को वे प्रहार अपेक्षाकृत कम झेलना पड़ते हैं जो मनुष्य की कल्पना को निर्जीव और भावुकता को मूर्छित कर देते हैं।

अत: भावप्रधान साहित्य के काव्यादि अंगों और ललित कलाओं में उसे जितनी सफलता मिलती है वह पुरुषों के लिए स्पृहणीय है, उपेक्षा की वस्तु नहीं। अपने इसी स्वभाव के कारण वे विदुषियां जो हमारी संस्कृति के आदिम युग के इतिहास *ऋग्वेद* की भावमयी ऋचाओं की ऋषि हो चुकी थीं तर्कप्रधान शुष्क दर्शनों के युग में अपने स्मृतिचिह्न न छोड़ सकीं।

प्रत्येक वस्तु को मानवीय दृष्टिकोण से देखकर उससे रागात्मक संबंध स्थापित करने में ही उनकी शक्ति सन्निहित है। इसे दुर्बलता कहना अन्याय होगा। इसके अतिरिक्त साहित्य में उनकी उपयोगिता भी कम नहीं। प्रत्येक साहित्यकार का ध्येय जीवन की अनेक रूपता में छिपे तारतम्य को अपने विशेष दृष्टिकोण से देखकर उसकी अभिव्यक्ति करना है अत: एक भी व्यक्ति की, चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष, अभिव्यक्ति का खो जाना हमारे सामूहिक ज्ञानरूपी शृंखला में से एक कड़ी का खो जाना है। स्त्री और पुरुष को प्रकृति ने एक-दूसरे से भिन्न, परंतु एक दूसरे की पूर्णता के लिए बनाया है अत: उनके दृष्टिकोण तथा संसार की गुरु लघु वस्तुओं को तोलने की तुला भी भिन्न परंतु परस्पर की पूर्ति के लिए है, इसमें संदेह नहीं। स्त्री का दृष्टिकोण व्यापक कम परंतु केन्द्रित अधिक है, कारण, वह एक समय में एक ही वस्तु को देखती है, किंतु उसे हृदय के निकट से निकटतम स्थान में रखकर देखती है। इसके विपरीत पुरुष का दृष्टिकोण व्यापक अधिक पर केंद्रित कम है, क्योंकि वह एक ही समय में अनेक वस्तुओं को अपने आप से दूर रखकर देखना चाहता है। स्त्री यदि एक जाति की कल्पनामयी भावना है तो पुरुष विवेकमय तर्क। यदि साहित्य केवल पुरुषों के विचारों की समष्टि है तो वह आधे मानव समाज के विचारों से रहित होने के कारण अपूर्ण है। यदि उसमें पुरुषों द्वारा स्त्रियों के विचार मिलेंगे भी तो ये अनुमान मात्र होने के कारण वास्तविकता से बहुत अधिक दूर होंगे।

वर्तमान महिला साहित्य की विभिन्न धाराएं

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, भविष्य में होने वाले परिवर्तनों के जो अंकुर धीरे-धीरे विकास पाते रहते हैं उन्हें तब तक कोई नहीं देख पाता जब तक वे बड़े वृक्ष का आकार नहीं धारणा कर लेते। प्रत्येक व्यवस्था चाहे वह अपने समय में कितनी ही सुंदर और उपयोगी क्यों न रही हो सब कालों की आवश्यकता और अभावों की पूर्ति नहीं कर सकती। जिस प्रकार हमारे शारीरिक विकास के साथ-साथ वस्त्रों को घटना-बढ़ना पड़ता है उसी प्रकार हमारे मानसिक विकास और परिवर्तन के साथ भी उसकी अभिव्यक्ति में भी समयानुसार परिवर्तन तथा संशोधन अनिवार्य होते जाते हैं। अत: रीतियुग के नायिकाभेद की उलझन में पड़े हुए मानव हृदय ने यदि हरिश्चंद्र युग में, जाति-प्रेम और प्रकृति-प्रेम में अतीत की परिपाटी को डुबा डाला तो आश्चर्य ही क्या! पहले भी तो मनुष्य का हृदय एक बालक के समान भक्ति की मंदाकिनी में स्नान कर शृंगार की धूलि में लोटने के लिए मचल उठा था। जिस नखशिख वर्णन में शृंगारी कवि अपने हृदय का दुखभार हल्का करते थे जब यह स्वयं भार बन गया तो अन्य नवीन साधनों की खोज होने लगी और जो कुछ उस खोज में मिल गया उसका अभिनंदन किया गया। तब से अब तक साहित्य के अंतरंग और बहिरंग में अनेक परिवर्तन और विकास हो चुके हैं और यदि उसमें जीवन है तो होते ही रहेंगे।

महिला-साहित्य भी सामाजिक विकास से सूना नहीं है। उसमें भी इस युग के दोषगुणों की अमिट छाप है। गिरधर के अध्यात्म प्रेम में पागलिनी मीरा और 'वह वृन्दावन वारा कृष्ण साहेब हमारा है' गाने वाली ताज का

अनुसरण रीतियुग की उत्कृष्ट कवयित्री शेख ने- 'घूंघट ते सेख मुखज्योति न घटैगी छिनु, झीनी यह न्यारिये झलक पहचानि है', द्वारा किया और अब यह उसी युग की प्रतिक्रिया है कि स्त्रियां अधिक से अधिक संख्या में किसी निराकार प्रियतम के अलक्ष्य चरणों में आत्म निवेदन के लिए आकुल हैं।

आधुनिक युग वास्तव में तर्कप्रधान युग है, अत: उसमें गद्य का जैसा सर्वतोन्मुख विकास हो रहा है वैसा किसी अन्य युग में संभव नहीं था। इस समय अधिकांश मनुष्यों के हृदय मस्तिष्क के प्राधान्य में अपनी अनुभूतियों का मूल्य आंकते तथा भावुकता को स्त्रियोचित समझने का सफल या विफल प्रयास करते रहते हैं, फिर भी एक ओर लौकिक और अलौकिक भावनाओं के संगम से उत्पन्न काव्यधारा गतिशील है और दूसरी ओर जीवन को वास्तविकता की सीमा से बाहर न जाने देने वाला गद्य। विकासोन्मुख साहित्य के उपन्यास, नाटक, गल्प, समालोचनादि विभिन्न अंगों में से महिलाओं ने विशेष रूप से काव्य और आख्यायिका को अपनाया है।

काव्य में उसने प्रकृति की प्रतिमा में निराकार की आत्मा डाली और उसे राष्ट्रीयता की मुरली दे एक अभिनव मुरलीधर की सृष्टि की।

इस युग में विशेष वृद्धि पाने वाले गीतकाव्य से हमारा कितना प्राचीन परिचय है, इसका निदर्शन हमें हिंदी की जननी प्राकृत के मधुर गेय पदों में मिलता है। इसके प्रधान गुण स्वत: पूर्णता शब्दों में कोमलता तथा मधुरता का सन्निवेश और प्रेम-विरह आदि किसी भाव 'विशेष की सजीव व्यंजना है। स्त्री-स्वभाव के अधिक उपयुक्त होने के कारण ही आधुनिक महिला-काव्य में उसी का प्राधान्य है। अन्य प्रबंध काव्यों की ओर तो अभी कवयित्रियों का ध्यान ही नहीं गया। काव्य में हमें जो दो धारायें जान पड़ती हैं उनकी शैली में इतना अंतर नहीं जितना भावों में मिलेगा। एक में वस्तु जगत की अभिव्यक्ति सरल और सरस शब्दों द्वारा होती है तो दूसरे में हृदय की किसी दशा विशेष की या सब में व्याप्त परंतु अलक्ष्य चेतन की सांकेतिक अभिव्यंजना रहती है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान तथा तोरन देवी जी आदि की रचनाओं में अधिक परिचय के कारण प्राचीन लगने वाला वस्तु जगत नवीन रूप में अवतीर्ण हो जाता है। सुभद्रा जी की 'मेरी बिटिया' सभी कालों और परिस्थितियों में हमारी दृष्टि में, कुत्सिता और उपेक्षिता पुत्री को भी 'बाबा काशी' बनाए रहेगी। उनकी 'राखी' भाई को दूरस्थ बहिन के दिव्य उपहार के समान और बहिन को प्रवासी भाई की स्नेह-स्मृति के समान मधुर और प्रिय लगती रहेगी। इस प्रकार हमारे साधारण संबंधों और वस्तुओं को भावों की तूलिका से रंगकर उन्हें एक अभूतपूर्ण नवीनता दे डालना ही इस काव्यधारा का ध्येय है।

परंतु इस युग की अधिकांश कवयित्रियां वस्तु जगत को भूलकर केवल उसके घात-प्रतिघात से स्पष्ट उत्पन्न हर्ष, शोक, अनुराग, विराग आदि मानसिक भावनाओं के चित्रण में प्रयत्नशील हैं और इसमें संदेह नहीं कि स्व. रामेश्वरीदेवी चकोरी, स्व. पुरुषार्थवती, तारादेवी पाण्डेय और रत्नकुमारी जी आदि अनेक कवयित्रियां उसे अपने हृदय के माधुर्य्य से अधिक मधुर बना सकी हैं। एक भाव को उसकी अतिशयता में, मार्मिक शब्दों द्वारा इस प्रकार प्रत्यक्ष और साकार कर देना कि वह अन्य हृदयों के निकट से निकट पहुंच सके इन रचनाओं की विशेषता है। काव्य में प्रकृति को सदा से स्थान मिलता आ रहा है। परंतु आधुनिक छायावाद ने उसे जो विशिष्ट स्थान दिया है वह पहले से भिन्न है। पहले वह रूपक उत्प्रेक्षादि अलंकारों का निर्जीव साधन मात्र थी, परंतु अब जीवन की संगिनी के रूप में उसमें प्रविष्ट हो सकती है। वास्तव में छायावाद में उसके मानवीय दृष्टिकोण से देखे हुए अभिनव रूप की झांकी मिलती है। उसकी प्रत्येक नश्वर वस्तु में, प्रत्येक परिवर्तनशील वेष में हमें किसी अनश्वर और परिवर्तनहीन की छाया मिलती है जिसे पकड़ने में असमर्थ होकर हम अस्थिर तथा आकुल हो उठते हैं।

" हमारे समाज में स्त्रियां कहानियों का अक्षय कोष हैं। वे प्रत्येक पुण्य पर्व में अपने धार्मिक कृत्यों का उपसंहार, प्रत्येक शंका का समाधान तथा प्रत्येक सुख–दुख और आपत्ति–संपत्ति का दार्शनिक समाधान कथाओं द्वारा ही कर लेती हैं। "

इन दोनों काव्यधाराओं में प्रथम का अंत हो रहा है और दूसरी अपने शैशव को पार नहीं कर पाई है। अत: एक शिथिल है तो दूसरी कहीं-कहीं असंयत। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय गीतों की संख्या भी कुछ कम नहीं है जो हमें यह स्मरण कराते रहते हैं कि हिंदी काव्य का जन्म वीरगीतों में ही हुआ था। सुभद्राकुमारी, तोरनदेवी, राजराजेश्वरी, नलिनी के कुछ राष्ट्रीय गीत अपने मर्म को स्पर्श कर लेने वाले गुण से साहित्य में सहज ही अमरता पा लेंगे, इसमें संदेह नहीं।

अवश्य ही हमारे काव्य का भविष्य उज्ज्वल है। जिस प्रकार वर्षा की तटिनी जो अपने ही तटों को गिराती हुई आगे मार्ग बनाती है, शरद में स्वयं ही आविल और सीमाबद्ध हो जाती है उसी प्रकार हमारी काव्य-तरंगिणी भी समयानुसार अधिक संस्कृत और सरस होती चलेगी। कौन कह सकता है कि यही करुण-रागिनी जिसकी अस्फुट ध्वनि हमें आजकल केवल पंक्तियों में सुन पड़ती है किसी समय मनुष्य को निर्दय से सदय बनाती हुई उसके हृदय में प्रतिध्वनित न हो उठेगी, यही प्रकृति और हृदयवाद हमारे यंत्रों में परिवर्तित होते हुए हृदय और मस्तिक को सजीव न रख सकेगा और यही राष्ट्रीय गान हमारे बुझते हुए प्राणों में साहस के अग्निकण से शक्ति का प्रदीप न जला सकेंगे!

कहानी- कविता के अतिरिक्त कहानी-साहित्य की ओर भी हमारे युग का अभूतपूर्व आकर्षण है। वस्तुत: हमारा सारा जीवन ही कहानी है, अत: हम उसका प्रेम लेकर ही जन्म लेते हैं। छोटा बालक दिन भर इसी आशा में अनेक अप्रिय काम करता है कि रात में कहानी सुनते-सुनते सो सकेगा। हमारे समाज में स्त्रियां कहानियों का अक्षय कोष हैं। वे प्रत्येक पुण्य पर्व में अपने धार्मिक कृत्यों का उपसंहार, प्रत्येक शंका का समाधान तथा प्रत्येक सुख-दुख और आपत्ति-संपत्ति का दार्शनिक समाधान कथाओं द्वारा ही कर लेती हैं। अपने कहानी-प्रिय स्वभाव के कारण महिलाओं ने आख्यायिका साहित्य को अधिक अपनाया और इसमें उन्हें आशातीत सफलता भी मिली। कहानी उपन्यास के समान जीवन के अंतर्द्वंद्वों का बड़ा चित्र न होकर, किसी घटना विशेष के आधार पर व्यैयक्तिक परिवर्तनों की झांकी मात्र है। एक युग से महिला-समाज अनेक अत्याचारों की कहानियां अपने हृदय में छिपाये चला आ रहा है। आज लेखिकाओं की स्वाभाविक सरल और सरस भाषा में आकार तथा जीवन पाकर वे ही गाथाएं सामाजिक कहानियों में परिवर्तित हो-होकर हमारे सम्मुख आ रही हैं। देश और काल के अनुसार हमारे समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं, परंतु इस ध्वंस और निर्माण के संगम में भी, पुरुष, स्त्री में किसी परिवर्तन का अभिनन्दन करना नहीं चाहता, अत: स्त्री

का जीवन कैसी अनेकरूपिणी समस्या बनता जा रहा है, इसका परिचय हमें कुछ समस्या कहानियों में मिलता है। सुभद्राकुमारी, कमलादेवी चौधरी, यशोदादेवी, शिवरानी देवी, तेजरानी पाठक इस युग की प्रमुख कहानी लेखिकाएं हैं तथा इनकी संग्रहीत कहानियों का साहित्य में अच्छा अभिनन्दन भी हो चुका है। स्त्रियों की अनेक सामाजिक परिस्थितियां और समस्याएं इनकी कहानियों में सजीव और मर्मस्पर्शिनी हो उठी हैं।

श्रीमती कमलादेवी चौधरी की कुछ ऐसी भी मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं जिनमें घटना वैचित्र्य न होकर मनुष्य के मानसिक परिवर्तनों का ही विश्लेषण मिलता है, परंतु ऐसी गल्पों की संख्या कम है और विषय की जटिलता तथा कथा के निर्वाह में विशेष कौशल की आवश्यकता को देखते हुए इस न्यूनता पर आश्चर्य नहीं होता। ऐतिहासिक घटनाओं का आश्रय लेकर गल्प लिखने की ओर अभी लेखिकाएं विशेष रूप से आकर्षित नहीं हुई हैं।

इस आख्यायिका साहित्य के साथ ही साथ दिनेशनन्दिनी चोरड्या, रामेश्वरीदेवी गुप्त द्वारा जिस गद्य काव्य का विकास हो रहा है वह कविता के लिए आवश्यक बंधनों से रहित होने पर भी उसी के समान प्रवाहमय और मधुर है।

उपन्यास– अभी तक महिला साहित्य में उपन्यासों की संख्या न्यूनतम है। उपन्यास में जीवन की अनेकरूपता का जितना विस्तृत अध्ययन, विशिष्ट घटनाओं का उपयुक्त तारतम्य रखने में जैसी क्षमता और चरित्रचित्रण तथा कथा के निर्वाह में जैसी कुशलता की आवश्यकता पड़ती है वैसी गल्प में नहीं। परंतु जैसी परिस्थितियों के सांचे में हमारे समाज में स्त्री का जीवन ढाला जाता है उसमें इन शक्तियों के विकास के समुचित साधन नहीं रहते और यह तो निर्विवाद है कि ज्ञान तथा अनुभव की दरिद्रता में साहित्यकार नहीं पनप सकता। तेजरानी दीक्षित का 'हृदय का कांटा', ज्योतिर्मयी ठाकुर का 'मधुवन' साहित्य-संसार में समुचित सम्मान पा चुके हैं अत: यह निश्चित है कि यदि स्त्रियां इस ओर अग्रसर हों तो उन्हें सफलता मिले बिना न रहेगी।

नाटक जैसे साहित्य के विशेष अंग की ओर भावप्रवण और गद्य की अच्छी लेखिकाओं के भी ध्यान देने का विशेष कारण है। नाटक तथा साहित्य के उपन्यासादि अंगों में उतना ही अंतर है जितना हमारी दृष्टि और श्रवणेन्द्रिय में। जिस प्रकार दृष्टि के नियम श्रवण के नियमों से भिन्न हैं उसी प्रकार दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य में अंतर रहता है। एक को विभिन्न बुद्धि और ज्ञान वाले एक साथ रंगमंच पर अभिनीत देखते हैं और दूसरे का एक ही व्यक्ति अध्ययन करता है। नाटक रंगशाला के जिन नियमों में बद्ध रहता है उनसे पहले परिचित हो जाना नाटककार का कर्तव्य है, परंतु हमारे यहां रंगशाला के अभाव ने इस कर्तव्य का पालन असंभव कर दिया है। विशेषकर महिलाओं के संस्कार तो उन्हें अभिनय को उच्चकला में स्थान भी नहीं देने देते, उस पर रंगशाला की अनभिज्ञता उन्हें नाटक की ओर और भी आकर्षित नहीं होने देती। विद्यालयों में विद्यार्थिनियां तो कभी-कभी तीसरे दर्जे की रंगशाला से परिचित हो भी आती हैं परंतु अन्य महिलाओं के लिए उनसे परिचित हो सकना कठिन ही नहीं, असंभव है। इस समय नवीनतम विकास के अनुरूप हिंदी की अपनी रंगशालाओं की नितांत आवश्यकता है जिसमें रंगशालाओं के प्रति उपेक्षा रखनेवाली महिलाएं भी उस ओर आकर्षित हों और उनके विशेष नियमों तथा प्रतिबंधों में विज्ञता प्राप्त कर साहित्य के इस अंग की पूर्ति कर सकें।

निबंध– परिवार में बालक को जो स्नेह और स्वच्छंदता मिलती है वही स्वच्छन्दता और आकर्षण साहित्य में निबंध को प्राप्त है। उसमें उपन्यास का विस्तार नहीं, कविता की ऊंची उड़ान और भावातिरेक नहीं, नाटक के प्रतिबंध नहीं और कहानी का घटना वैचित्र्य भी नहीं है। परंतु यदि निबंध का लेखक कुशल कलाकार हो तो उन सबका आकर्षण एक ही स्थान में मिल जाता है।

हिंदी में विद्वानों के कुछ भावात्मक दर्शनात्मक तथा मानसिक विश्लेषण पर आश्रित निबंध साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं और रहेंगे, परंतु यात्रा भ्रमण आदि साधारण विषयों से संबंध रखने वाले निबंध इतने साधारण हो गए हैं कि उन्हें उपर्युक्त निबंधों की श्रेणी में रखना कठिन है।

महिलाओं ने अब तक निबंध-साहित्य के विकास में उल्लेखनीय सहयोग नहीं दिया। उनके सामयिक समस्या और विचारों से संबंध रखनेवाले लेख अवश्य प्रकाशित होते रहते हैं। परंतु वे साहित्य की तुलना में न गुरु ठहर सकते हैं और न स्थायित्व ही पा सकते हैं।

संभव है कविता और कहानी के अभिनव रूप और विकास में मग्न रहने के कारण महिलाओं का अभी साहित्य के इस सूने कोष की ओर ध्यान ही न जा सका हो।

वास्तव में केवल कविता और गल्प ही में साहित्य सीमित नहीं है और न प्रत्येक व्यक्ति इन्हीं दो के निर्माण के लिए आवश्यक शक्ति और प्रतिभा लेकर उत्पन्न होता है। प्राय: सफल कवि सफल उपन्यासकार नहीं हो पाता, सफल उपन्यासकार सफल नाटककार होने की क्षमता नहीं रखता। किसी भी लेखक या लेखिका को, अपनी रुचि और प्रतिभा का भलीभांति पर्यवेक्षण कर साहित्य के किसी अंश विशेष को अपनाना और उसमें सफलता पाने के लिए साधक के समान लग जाना ही अमर बना सकता है। जिसे गन्तव्य स्थान का पता नहीं, मार्ग और उसकी कठिनाइयों का ज्ञान नहीं और अपने पैरों की शक्ति से जिसका परिचय नहीं वह केवल भटकता रह सकता है, अपने लक्ष्य तक पहुंचने वाला सफल यात्री नहीं हो सकता। मनुष्य में रुचिवैचित्र्य तथा प्रतिभादि गुणों का अंकुर जन्म से ही रहता है; अनुकूल परिस्थितियां केवल उन गुणों के समुचित विकास के लिए सुविधाएं प्रदान कर सकती हैं।

समालोचना– हीरे को सान पर चढ़ाने और खरादने वाले को जो महत्व प्राप्त है, केवल वही नहीं वरन उससे कुछ अधिक सत्समालोचक को साहित्य-संसार में प्राप्त हो जाता है। लेखक के लिए अपनी अभिव्यक्ति इतनी निकट और प्रिय होती है कि वह न तो उसके गुणदोषों की विवेचना कर सकता है और न विस्तृत बाह्य समाज पर गुणदोषों का प्रभाव ही जान पाता है। समालोचक ही कला तथा उपयोगिता की कसौटी पर कसकर हमारी अभिव्यक्तियों का मूल्य निर्धारित करने में समर्थ है। वह एक चतुर माली के समान अपने साहित्योद्यान से कंटीली झाड़ियों और विषैली वनस्पति दूर करता तथा उपयोगी और सुंदर फूल, फलों के विकास के लिए स्थान बनाता चलता है। हिंदी के प्राचीन साहित्य से संबंध रखनेवाली आलोचनाएं अपने ध्येय तक पहुंचने का प्रयास कर रही हैं, परंतु अर्वाचीन साहित्यिक विकास से संबंध रखनेवाली अभी तक बालचापल्य नहीं छोड़ सकी है।

वास्तव में व्यक्ति और उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति में अंतर है। उसका प्रभाव सीमित है, परंतु उसकी रचनाओं के प्रभाव को देश-काल की सीमा में आबद्ध करना कठिन है। व्यक्ति अच्छा या बुरा होकर समाज विशेष का इतना उपकार या अपकार नहीं कर सकता जितना उसकी रचनाएं। यदि समालोचक व्यक्ति के संबंध में ही उसके साहित्य की विवेचना करता है तो उसके तटस्थ तथा पक्षपातरहित रहने की कम संभावना रहती है।

व्यक्ति के समान ही समाज या साहित्य का भी एक व्यक्तित्व होता है और व्यक्ति ही के समान उसे भी अनेक समयानुकूल परिस्थितियों के सांचे में ढलकर एक विशेष आकार में संसार के सामने आना होता है। स्त्रियों की वर्तमान साहित्यिक प्रवृत्तियों की जो कुछ विवेचना होती रहती है उसमें पुरुष का दृष्टिकोण रहता है स्त्री का नहीं।

हमारी विदुषियों को अवश्य ही साहित्य के इस आवश्यक अंग की ओर विशेष ध्यान देकर, अपने साहित्य की त्रुटियों और गुणों को अपने ही दृष्टिकोण से जांचना चाहिए। इससे हमारा प्रतिदिन उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ साहित्य अधिक व्यवस्थित रूप-रेखा में सब के सन्मुख आवेगा। राष्ट्र की पूर्णता के समान ही राष्ट्रभाषा की पूर्णता में भी महिलाओं का सहयोग वांछनीय है और सदैव रहेगा।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि गंभीर विषयों को भी हमारे भावुक जीवन में स्थान मिलना अनिवार्य हो उठा है। श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल ने 'स्त्रियों की स्थिति' और 'शिक्षा मनोविज्ञान' जैसी उच्चकोटि की पुस्तकें लिखकर उस दिशा में सराहनीय प्रयत्न किया है। विकास का क्रम यदि सर्वतोन्मुख रहा तो महिला-साहित्य मां भारती के मुकुट का उज्ज्वल और सब से प्रिय मणि बन सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

विदुषियों का उत्तरदायित्व

हमारी संस्कृति में धर्म और ज्ञान दोनों एक ही सिद्धांत के क्रियात्मक तथा विचारात्मक दो रूप कहे जा सकते हैं। एक, अनेक बिन्दुओं को स्पर्श करते हुए वृत्त की तरह हमारे व्यावहारिक जीवन का सब ओर से संस्पर्श करता रहता है तो दूसरा हमारी विभिन्न विचार धाराओं में व्याप्त है। भारतीय संस्कृति ने अपने ज्ञान पक्ष में आस्तिकवाद-नास्तिकवाद, द्वैत-अद्वैत इत्यादि भिन्न और परस्पर विपरीत विचारधाराओं को समान स्थान देकर जो उदारता प्रकट की है वही उदारता उसके धर्म-पक्ष में भी प्रतिबिम्बित है। हमारा धर्म उन व्यापक सिद्धांतों की समष्टि मात्र है जिनसे व्यक्ति अपना जीवन धारण कर सकता है और जो उसे सामाजिक प्राणी के उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक वहन करने में समर्थ बना सकते हैं। वास्तव में हमारे कर्तव्य का पर्यायवाची धर्म केवल ईश्वर और मनुष्य के संबंध पर ही आश्रित न होकर मनुष्य के प्रति मनुष्य के संबंध पर निर्भर है।

विद् (जानना) से बने हुए विद्वान या विदुषी शब्द से पुरुष या स्त्री का उन व्यापक सिद्धांतों के ज्ञान-पक्ष को जान लेना ही प्रकट होता है, जो समाज की व्यवस्था के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं जितने सामाजिक प्राणियों के मानसिक विकास के लिए। यह तो निर्विवाद है कि मनुष्य अनेक संबंधों का केन्द्र हो कर जन्म लेता है और उन सारे संबंधों के उत्तरदायित्व को समझकर अपने आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक जीवन का विकास करते रहना एक ऐसी साधना है जो केवल उपयुक्त शिक्षा और वास्तविक ज्ञान द्वारा ही पूर्ण हो सकती है, अत: प्राचीन काल के मनीषियों ने अध्ययन का एक समय तो जीवन के आरंभ में निश्चित किया था, जब मनुष्य का चरित्र और उसकी विचारधारा एक विशेष रूपरेखा धारणा करती है, और दूसरा अंत में निर्धारित किया था जब वह अपने कर्त्तव्य को पूर्ण कर असंख्य मधुर और कटु अनुभवों से अपने संचित ज्ञान का कोष बढ़ाकर आत्मचिंतन में प्रवृत्त हो सकता है। विद्वान वही है जो अपने अनेक संबंधों में सामंजस्य उत्पन्न कर आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श पिता तथा सफल नागरिक कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर सके। विदुषियों का उत्तरदायित्व इससे कुछ अधिक है कम नहीं क्योंकि उन्हें केवल अपने आपको आदर्श नहीं बनाना पड़ता वरन् आदर्श व्यक्तियों की सृष्टि भी करनी पड़ती है। स्त्री का आदर्श मातृपद भी सापेक्ष है निरपेक्ष नहीं, कारण यदि उसका पुत्र आदर्श नहीं होता तो वह भी सफल माता नहीं कही जा सकती।

वर्तमान समाज में स्त्रियों की निरर्थक और उपेक्षित स्थिति देखकर अब यह विश्वास करना भी कठिन हो जाता है कि किसी सुदूर अतीत में यह समाज का केवल सार्थक ही नहीं विशिष्ट अंग भी रही होगी। किसी और सामाजिक प्राणी का जीवन उत्कर्ष तथा अपकर्ष का ऐसा सजीव और करुण इतिहास बन सकेगा, इसमें संदेह है परंतु निश्चय ही किसी समय समाज में, वह इतनी श्रद्धा की पात्र रही होगी कि प्रत्येक धार्मिक भावना स्त्री के रूप में अवतीर्ण हुई, ऐसी अलौकिक और दिव्य सुषमा से पूर्ण रही होगी कि प्रकृति की अनुपम झांकी को देख चकित आनंदविभोर बालक जैसे मानव-समाज ने उसे भी स्त्रीत्व से युक्त समझा तथा ऐसी ज्ञानमयी सिद्ध हुई होगी कि विचारों के शाब्दिक रूप को वाणी का या भारती का नाम मिला। स्त्री को सरस्वती के रूप में ज्ञान की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में ऐश्वर्य की दात्री, भवानी के रूप में विनाश की मूर्ति तथा अदिति के रूप में साकार प्रकृति मानकर प्राचीन संस्कृतिक ने मानो उसके उत्तरदायित्व को चरमसीमा तक पहुंचा दिया। उस प्राचीन स्त्री-समाज ने भी अपने गौरव को, अपने उत्तरदायित्व को अपनी संपूर्ण जीवनी शक्ति से सींचकर जीवित रखा इसे प्रमाणित करने के लिए निदर्शनों की आवश्यकता नहीं है। जिस कवित्वमय हृदय से उसने सुंदर और भावमयी वेद ऋचाओं की रचना में भाग लिया उसी से शुष्क मानवीय संबंधों को दिव्य तथा सरस बना डाला, जिस ज्ञान की ज्योति से उसने बड़ी-बड़ी विद्वतसभाओं को जगमगाया उसी से अपने पिता और पति के कुटीर में भी आलोक फैलाया, जिस पूत भावना से उसने धार्मिक कृत्यों को अपने सहयोग से पूर्ण किया उसी से समाज की जड़ शृंखला में भी प्राण डाला तथा जिस अधिकार में उसने

महादेवी वर्मा की कृतियां

काव्य संग्रह :

नीहार (1930); रश्मि (1932); नीरजा (1934); सांध्यगीत (1936); यामा (उपर्युक्त पुस्तकों का संकलन) (1936); दीपशिखा (1942); सन्धिनी (1965); गीतपर्व; परिक्रमा; सप्तपर्णा; स्मारिका; हिमालय।

संस्मरण :

पथ के साथी (1956); मेरा परिवार (1971); स्मृतिचित्रा (1973)।

रेखाचित्र :

अतीत के चलचित्रा (1941); स्मृति की रेखाएं (1945)।

निबंध-संग्रह :

शृंखला की कड़ियां (1942); क्षणदा (1956); साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1960); संकल्पिता (1969); सम्भाषण (1974)।

गृह का अधिपत्य स्वीकार कर संपत्ति और प्रजा की वृद्धि की उसी मे उसने पवित्र त्याग का व्रत भी ग्रहण किया।

अवश्य ही आज की नारी प्राचीन नारी-जगत की वंशज नहीं जान पड़ती और इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि वह स्वयं अपनी शक्ति और दुर्बलता दोनों से अनभिज्ञ है। मनुष्य की सबसे भयानक दासता उसका अपने आप को दास समझ लेना है। इतने विस्तृत देश के मानव-समाज का आधा भाग होकर तथा ऐसा स्वर्णाक्षरों में अंकित रखने योग्य उज्ज्वल इतिहास लेकर भी यदि आज वे अपने ही घरों में बंदिनी हैं, अपने ही प्रियजनों की क्रीतदासी हो रही हैं तो अवश्य ही उनमें आत्मबल और आत्मविश्वास का अभाव है, अन्यथा ऐसा अनर्थ संभव ही नहीं था।

यह क्रांति का युग है जिसका काम पहले ध्वंस और फिर निर्माण होता है। हमारी विकृत सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्थाएं प्रौढ़ शरीर में बाल्यकाल के वस्त्रों के समान कष्टदायक हो रही हैं, परंतु हम निर्णय नहीं कर पाते कि वस्त्रों का विकास शरीर के अनुसार होता है या शरीर का वस्त्रों के अनुसार। जीवन की गति वेगवती सरिता के समान निरंतर आगे की ओर ही बढ़ती रहती है, पीछे लौट सकना उसके लिए संभव नहीं। अत: देश, काल तथा परिस्थियों के अनुरूप जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिए प्राचीन व्यवस्थाओं में कुछ संशोधन और परिवर्तन अनिवार्य हो उठे हैं। ऐसी अवस्था में विदुषियों का उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ़ गया है, कारण, ये घरों में बंद असंख्य पंगु महिलाओं की गति हैं, दृष्टिहीनों की आंखें हैं तथा मूकों की वाणी हैं। वे ही पक्षाघात से पीड़ित, निस्पंद समाज में जीवन फूंक सकेंगी।

आधुनिक महिला जगत की अधोगति के दो ही प्रधान कारण हैं- विकृत धर्म की अंधभक्ति और मिथ्या आदर्शवाद में आसक्ति। धर्म वास्तव में जीवन की सुव्यवस्था का साधन है, परंतु यदि वह सत्य और न्याय के विकृत रूप को अपना ले तो उससे बड़ा अपकार करने का दूसरा अस्त्र नहीं मिल सकता। जिस धर्म ने ईसा के समान त्यागी को जन्म दिया, क्या उसी के विकृत रूप ने अनेकों को जीवित जला देनेवाले निष्ठुरों की सृष्टि नहीं की? हमारे धर्म का रूप इतना अधिक व्यापक था कि उसमें अन्याय और स्वार्थ का प्रवेश सुगमता से हो सका। युगों से नारी जाति शास्त्र से अपरिचित रखी जा रही है, इसके अतिरिक्त उसके संस्कारों में इतनी धर्मभीरूता भर दी गई है कि वह शास्त्र के नाम से संबंद्ध किसी वाक्य में शंका करना भी पाप समझती है। अब तो उसे अर्थहीन कर्म में मुक्ति का विश्वास है। उसकी प्रत्येक सिद्धांत में निष्ठा है, परंतु सिद्धांत के अपवाद का होना भी आवश्यक है, यह उसे ज्ञात नहीं। पति की सहधर्मचारिणी होना उसका ध्येय है, परंतु यदि पति अन्याय करे या कुपथ का आश्रय ले तो उसमें प्रश्रय देना उसे अधर्मचारिणी बना देगा, यह उसने न सुना है न समझा है। उसके आदर्शवाद में भी यही संकीर्णता है। कारण वह नहीं जानती कि आदर्श भी प्राय: अपने युग की आवश्यकता के अनुरूप बनता रहता है। एक युग में पतिव्रत का आदर्श सीता में प्रकट हुआ तो दूसरे युग में द्रौपदी में। शौर्यप्रधान युग के आदर्श राम हैं और अहिंसाप्रधान युग के बुद्ध। कुछ ऐसे भी आदर्श चरित्र हो सकता हैं, जिनके गुणों का समन्वय देश, काल की सीमा का उल्लंघन कर जाता है, परंतु उनमें भी मनुष्य अपने युग की विशेषताओं का न्यूनाधिक अंश में आरोपण कर ही लेता है।

जब तक स्त्रियों की विचाराधारा में परिवर्तन न हो जावे वे अपनी समस्याओं के सुलझाने की ओर ध्यान न देंगी और अपने कष्टों को त्याग का रूप समझती रहेंगी। आधुनिक समस्याओं से संबंध रखनेवाले साहित्य का निर्माण और प्रचार विदुषियों द्वारा ही संभव है। इसके अतिरिक्त वे शिक्षा के प्रचार में भी अधिक से अधिक सहायता दे सकती हैं, परंतु इससे पहले उन्हें पश्चिम का अंधानुसरण छोड़कर अपनी संस्कृति के अनुरूप ही अपने आप को बनाने की आवश्यकता पड़ेगी। यदि अशिक्षिताएं या अर्धशिक्षिताएं रूढ़ियों के बंधन में हैं तो विदुषियां भी विदेशीय कृत्रिमता की दासता स्वीकार करती जा रही है और इसमें संदेह नहीं कि स्वयं बंधे हुए के लिए दूसरे बंदी को छुड़ाना दुराशामात्र है। ऐसे क्रांति और अशांतिमय वातावरण में विदुषियों का कर्त्तव्य अपनी अन्य बहिनों को मार्ग दिखाना है, स्वयं भटक जाना नहीं। यदि वे अपने उत्तदायित्व को समझ लेंगी तो वे अपने आप में उसे पूर्ण करने की शक्ति का भी अनुभव कर सकेंगी।

हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति में कुछ ऐसा विष है जो मनुष्य की सारी शक्तियों को केवल अंतर्मुखी कर देता है बहिर्मुखी नहीं, और जब तक हमारी शक्तियों का विकास दोनों ओर समान नहीं होता, संकीर्णता तथा स्वार्थ की वृद्धि ही अवश्यंभावी है, जो किसी भी जाति या राष्ट्र के लिए हितकर नहीं। प्राचीन संस्कृति का लक्ष्य मनुष्य के व्यक्तित्व को इतना विस्तृत कर देना था कि उसमें समस्त संसार को स्थान मिल सके, परंतु अर्वाचीन का ध्येय मनुष्य के व्यक्तित्व को इतना संकीर्ण बना देना है जिसमें निकट संबंधी भी न समा सकें। आजकल भी विद्वान और विदुषियों के जीवन का एक विशेष अंश अध्ययन में व्यतीत हो जाता है, परंतु उसके उपरांत वे मनुष्याकृति वाले यन्त्र बनकर ही अनुभव के संसार में प्रवेश करते हैं; जहां मनुष्य को, मनुष्य के स्नेह, सहानुभूति, त्याग तथा मानवीय संबंधों की आवश्यकता होती है, हृदयहीन परंतु कर्मशील यन्त्रों की नहीं। विश्वव्यापी अशान्ति तथा असंतोष ने प्रमाणित कर दिया है कि भौतिकवाद अपने पूर्ण से पूर्ण रूप में भी मानव-हृदय की आवश्यकताओं की पूर्त्ति में असमर्थ है और रहेगा।

हमारे देश की विदुषियों का, मनुष्य बन कर औरों में मनुष्यता के भाव भरने का व्रत ग्रहण करना ही उनकी कीर्ति को उज्ज्वल रख सकेगा। प्राय: शिक्षित महिला-समाज में भी असंतोष और असफलता का कारण विदुषियों का ध्येयरहित होना है। भविष्य में उन्हें क्या करना या क्या होना है, इस पर वे अपने विस्तृत अध्ययन काल में कभी विचार नहीं करना चाहतीं और अध्ययन के उपरांत जो कुछ दूर से सुखद जान पड़ता है उसी ओर अग्रसर हो जाती हैं। वे प्राय: विवाह के उत्तरदायित्व पर बिना ध्यान दिए ही पत्नी बनना स्वीकार कर लेती है, गुरु के उत्तरदायित्व से अनभिज्ञ होने पर भी अध्ययन-कार्य को अपना लेती हैं; फलत: कुछ समय में अपनी स्थिति में सुख के स्थान में दुख का अनुभव करने लगना अनिवार्य है।

जीवन जुआ नहीं है जिसमें जीत-हार का प्रश्न संयोग पर छोड़ा जा सके और सफलता-असफलता का उत्तरदायित्व अदृष्ट पर रखकर संतोष किया जा सके। वास्तव में जीवन एक साधना है जिसमें केवल साधक की अपूर्णता ही उसे असफल बना सकती है और पूर्णता ही सिद्धि के द्वार तक पहुंचा देती है। अपने जिन क्षणों को हम मूल्य रहित जानकर व्यर्थ लुटा देते हैं उन्हीं से लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग बनता है, यदि हम उनका ठीक उपयोग जान सकें। अनेक उपकरणों और साधनों के होते हुए भी शिल्पी कोई मूर्ति नहीं गढ़ सकता जब तक उसकी कल्पना ने उसके अंतर्चक्षुओं के सम्मुख किसी आदर्श, किसी प्रतिमा का निर्माण न कर दिया हो। अत: जीवन-संग्राम में प्रविष्ट होने से पहिले हमारे लक्ष्य को इतना दृढ़ और स्पष्ट हो जाना चाहिए कि संसार की आपत्ति तथा असफलताएं उससे टकराकर टूट जाएं पर वह न हिले। ❑

महादेवी वर्मा के प्रगीतों की संरचना

महादेवी के काव्य में दीया जीवन का ही प्रतीक बनकर आया और इसी प्रतीक और उसके अर्थ में थोड़ा हेरफेर करते हुए महादेवी वर्मा ने तमाम प्रगीत लिखे, जिसका चरम रूप हमें दीपशिखा के प्रगीतों में मिलता है। उनके गीत-संरचना की विस्तृत व्याख्या कर रहे हैं हरदयाल

महादेवी वर्मा छायावाद के चार बड़े कवियों में से एक हैं और अंतिम बड़ी छायावादी कवयित्री हैं। उन्होंने 1924 में लिखना आरंभ किया और उनका पहला कविता संग्रह *नीहार* 1930 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद *रश्मि* (1932), *नीरजा* (1935), *सांध्यगीत* (1936) और *दीपशिखा* (1942) शीर्षक कविता संग्रह प्रकाशित हुए। उनके दिवंगत होने के बाद उनकी अप्रकाशित रचनाओं का *अग्निरेखा* (1990) नामक संग्रह प्रकाशित हुआ। इन छह संग्रहों के अतिरिक्त उनके जो और काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, वे इन्हीं संग्रहों में प्रकाशित रचनाओं के विविध दृष्टियों से किए गए संचयन मात्र हैं।

उनकी कविता के क्षेत्र में सक्रिय रचनाशीलता 1924 से लेकर लगभग 1942 तक सीमित है अर्थात लगभग दो दशकों तक। गद्य वे इसके बाद भी अपने जीवन के अंतिम दिनों तक लिखती-बोलती रहीं। 'बोलती' इसलिए कि वे जो भाषण और वक्तव्य देती रहीं, उनमें से अनेक लिखित और मुद्रित रूप में सामने आते रहे। उनकी काव्य-रचना काल की दृष्टि से ही नहीं, वस्तु और शिल्प की दृष्टि से भी सीमित है। यदि *मुझाया फूल, फिर एक बार, हे चिर महान, वीणा वादिनि, बापू को प्रणाम, विदा वेला, बंग-वंदना* जैसी गिनी-चुनी रचनाओं को छोड़ दें तो उनकी सभी रचनाएं आत्मरक, विषयीप्रधान रचनाएं हैं, जिनमें कवयित्री ने अपने ही लौकिक-अलौकिक सुख-दुखों को अभिव्यक्ति दी है। यह वस्तुगत सीमा शिल्प को भी सीमाबद्ध कर देती है। उनकी सभी काव्य-रचनाएं छोटे-छोटे प्रगीत मुक्त हैं। उन्होंने प्रबंधकाव्य तो दूर, कोई लंबी कविता भी नहीं लिखी है।

जिन रचनाओं को हमने व्यक्तिपरकता की सीमा से बाहर रखने की बात कही है, वे भी पूर्णत: वस्तुपरक नहीं हैं। उदाहरण के लिए, 'फिर एक बार' शीर्षक रचना में से यह पंक्ति – 'मेरे भारत मेरे विशाल' – निकाल दी जाए तो यह अनुमान लगा पाना भी असंभव हो जाएगा कि यह रचना भारत को लेकर लिखी गई है। पूरी रचना में भारत अमूर्त है। मूर्त है तो कवयित्री की यह आकांक्षा :

फूलों-सी हो पल में मलीन,
तारों-सी सूने में विलीन,
ढुलती बूंदों से ले विराग,
दीपक से जलने का सुहाग,
अंतरतम की छाया समेट
मैं तुझ में मिट जाऊं उदार !
फिर एक बार, बस, एक बार !!

(*महादेवी साहित्य-3*, प्रथम संकरण, 1970; पृष्ठ 74)

इस वस्तुगत सीमितता का कारण है। और इस कारण को वह अपने गीतिकाव्य शीर्षक निबंध में सैद्धांतिक औचित्य का जामा पहनाती हैं –

"हिंदी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीतप्रधान ही कहा जाएगा। हमारा व्यस्त और व्यक्तिप्रधान जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक सांस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपने प्रत्येक कम्पन को अंकित करने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं। संभव है, यह उस युग की प्रतिक्रिया हो, जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कहकर संसार-भर का इतिहास कहना था; हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।"

(*साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध*, तृतीय संस्करण 1970: पृष्ठ 122)

कवयित्री की इस व्याख्या में पूर्णत: न सही, अधिकांशत: सत्यांश है। छायावादी कवियों में व्यक्तिप्रधानता और आत्मकेंद्रितता प्रधान थी, यद्यपि अलग-अलग कवियों में उसकी प्रधानता का अनुपात अलग-अलग था। इसीलिए प्रसाद, पंत और निराला प्रबंधकाव्यों की भी रचना कर सके, यद्यपि इनके प्रबंधकाव्य हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त के प्रबंधकाव्यों जैसे विषयप्रधान और वस्तुपरक नहीं हैं। उनमें भी प्रगीतात्मकता का तत्त्व अनुपेक्षणीय रूप से विद्यमान है। भला *कामायनी* के 'निर्वेद' सर्ग के इस गीत को क्या कोई पाठक भुला सकेगा –

तुमुल कोलाहल कलह में, मैं हृदय की बात रे मन !

यदि छायावाद के चारों कवियों के काव्य को समग्रत: देखें तो उनके काव्य में गीतितत्त्व की ही प्रधानता मिलेगी। कारण गीतिकाव्य सीमित, किंतु शाश्वत संवेदना का काव्य है और यह संवेदना व्यक्ति की है, समूह की नहीं। महादेवी वर्मा ने गीत के संबंध में ठीक ही लिखा है –

"गीत का चिरंतन विषय रागात्मिका वृत्ति से संबंध रखने वाली सुख-दुखात्मक अनुभूति ही रहेगी। परंतु अनुभूति मात्र गीत नहीं, क्योंकि गेयता तो अभिव्यक्ति-सापेक्ष है। साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"

(*साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध*, पृष्ठ 124)

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि गीत या प्रगीत में अभिव्यक्त होने वाली 'रागात्मिका वृत्ति से संबंध रखने वाली सुख-दुखात्मक अनुभूति' लौकिक है या अलौकिक। महादेवी वर्मा की 'अनुभूति' की लौकिकता-अलौकिकता को लेकर हिंदी के आलोचकों में किंचित मतभेद रहा है। डा. नगेन्द्र जैसे आलोचक उसकी अलौकिकता या आध्यात्मिकता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं (विचार और अनुभूति, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 116), प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक भी उनसे सहमत है। महादेवी वर्मा की अनुभूति है तो लौकिक ही, लेकिन वे जिस समय और समाज में रहकर अपने प्रगीत लिख रही थीं, उसमें उसे आध्यात्मिक या अलौकिक रूप देना उनकी विवशता थी। इसीलिए *नीहार* और *रश्मि* के प्रगीतों में जो इंद्रियानुभूति है, वह क्रमशः क्षीण होती गई है और हृदय के ऊपर बुद्धि, अनुभूति के ऊपर सरलीकृत भाव या विचार का वर्चस्व स्थापित होता गया है।

इसलिए महादेवी वर्मा के प्रगीत-काव्य में अभिव्यक्त होने वाली अनुभूति, भाव और विचार की पूंजी सीमित है; जो जल्दी ही चुक गई और उन्होंने काव्य-रचना बंद कर दी। यह दुर्घटना उनके कुछ अन्य समकालीन कवियों के साथ भी घटी। इसने उनके प्रगीतों की संरचना को भी प्रभावित किया। जैसे उनके प्रगीतों में अभिव्यक्त होने वाली वस्तु सीमित है वैसे ही उनके प्रगीतों की संरचना भी।

एक तो प्रगीत वैसे ही सीमित संरचनावाला काव्य है; ऊपर से उसमें व्यक्त होने वाली वस्तु भी अत्यंत सघन और वैविध्यपूर्ण न हो तो उसकी संरचना और भी सीमित हो जाती है। प्रगीत की मूल संरचना एक टेक और कुछ अंतरों से निर्मित होती है। जैसे, *नीहार* के 'चाह' शीर्षक गीत की टेक और पहला अंतरा इस प्रकार है –

चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार !
कलियों की उच्छवास शून्य में ताने एक विहान,
तुहिन कणों के मृदु कम्पन से सेज बिछा दें गान;
जहां सपने हों पहरेदार,
अनोखा एक नया संसार !

(*महादेवी साहित्य-3*, पृष्ठ 48)

'अनोखा एक नया संसार' इस टेक की आवृत्ति हर अंतरे के बाद होगी और वह न केवल अंतरे की अंतिम पंक्ति के अंत्यानुप्रास को नियंत्रित करेगी, बल्कि उसकी वस्तु को भी। यह प्रगीत चार अंतरों से मिलकर बना है। अंतरे चार से अधिक भी हो सकते थे, फिर भी प्रगीत की संरचना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'अनोखा एक नया संसार' से पहले आने वाली पंक्ति 'चाहता है यह पागल प्यार' टेक की भूमिका जैसी है। यह भूमिका सर्वत्र आवश्यक नहीं है। महादेवी वर्मा के प्रगीतों में भी ऐसे प्रगीत हैं, जिनमें बिना भूमिका की एक ही पंक्ति टेक के रूप में प्रयुक्त हुई है। जैसे, *नीरजा* के 'अश्रु-नीर' शीर्षक गीत की यह टेक 'प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर!'

(वही, पृष्ठ 195)

कोई प्रगीत कितना सुगठित है, इसकी परीक्षा उसके विश्लेषण से की जा सकती है। यदि कोई प्रगीत एकाग्र अनुभूति पर आधारित है तो हम उसमें एक अंतरा तो दूर, एक पंक्ति भी नहीं निकाल सकते। यदि हम कोई पंक्ति, यहां तक कि कोई शब्द भी उसमें से निकाल देंगे तो तुरंत हमें उसका अभाव खटकने लगेगा। उदाहरण के लिए 'वीणा मौन' शीर्षक प्रगीत को लें। इस प्रगीत की टेक है–

आज क्यों तेरी वीणा मौन?

सीधे-सीधे यह टेक एक प्रश्न है, एक जिज्ञासा है। स्वाभाविक ही इस प्रगीत के अंतरों में इस जिज्ञासा या प्रश्न का उत्तर होना चाहिए। प्रगीत का पहला अंतरा है –

शिथिल-शिथिल तन थकित हुए कर,
स्पंदन भी भूला जाता उर,
मधुर कसक-सा आज हृदय में आन समाया कौन?
आज क्यों तेरी वीणा मौन?

इस अंतरे में वीणा के मौन होने का कारण तन का थका होना, हाथ का थका होना, हृदय का स्पंदन भूल जाना और हृदय में कसक के समान किसी अज्ञात का आकर समा जाना बताया गया है अर्थात् न तन ऐसी स्थिति में है और न मन (हृदय) ही कि वीणा को बजाया जा सके। कारण तर्क-सम्मत है; लेकिन पूछा जा सकता है कि क्या 'कर' 'तन' से अलग हैं? यदि 'तन' ही शिथिल है तो क्या 'कर' अशिथिल रह सकते हैं? स्पष्ट ही 'थकित हुए कर' भरती की चीज है जो छंद पूर्ति और अल्त्यानुप्रास के आग्रह से आया है। यह प्रगीतों और अनेक कविताओं की सामान्य दुर्बलता है, जिसके कारण ऐसी रचनाएं विश्लेषणसह्य नहीं रह पातीं; और जब उनका विश्लेषण करके उनकी दुर्बलता पर उंगली रखी जाती है तो गीतकार प्रायः क्षुब्ध हो जाते हैं। इस गीत का दूसरा अंतरा है –

झुकती आतीं पलकें निश्चल,
चित्रित निद्रित-से तारक चल,
सोता पारावार दृगों में भर-भर लाया कौन?
आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

इस अंतरे में जिज्ञासा का जो कारण दिया गया, वह 'शिथिल तन' का ही विस्तार है। आंखें तन से अलग कहां हैं? आंखों की निश्चल पलकें झुकती आती हैं और आंखों की उनींदी चलायमान पुतलियां चित्रित हैं। वह कौन है जो आंखों में सोया हुआ सागर भर लाया है। आंखों की यह स्थिति शारीरिक शिथिलता का ही एक अंश है, जिसके कारण वीणा मौन है। इस प्रगीत के तीसरे अंतरे में शारीरिक शिथिलता से भिन्न बात कही गई है। बाहर बादलों का अंधेरा छाया हुआ और अंतर में दुख का। बादलों के अंधेरे में आकाश में बिजली चमक रही है और दुख भरे अंतर में प्रियतम प्रकाश कर रहे हैं। सुधि बनकर छाया रहने वाला वह कौन है, जिसने जीवन को बरसात की रात बना दिया है ? इसके कारण ही वीणा मौन है।

स्पष्ट है कि इस प्रगीत में कार्य-कारण शृंखला बहुत तर्क-सम्मत, परस्पर अविच्छिन्न रूप से संबद्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि इसमें अभिव्यक्त अनुभूति या प्रत्यय संवेग-प्रस्फुटित नहीं है। इसमें अंतरों को घटाया-बढ़ाया जा सकता है, पंक्तियों को अदला-बदला जा सकता है। छायावाद के पंत जैसे कवियों और बाद के अनेक प्रगीतकारों की रचनाओं में यह दुर्बलता विद्यमान है। इस दुर्बलता का निराला ने अपने एक निबंध 'मेरे गीत और कला' ('प्रबंध-प्रतिमा') में अच्छा विवेचन प्रस्तुत किया है।

असल में इसका कारण संवेग की दुर्बलता और बुद्धि की प्रबलता है। जब बुद्धि संवेग की दुर्बलता पर हावी हो जाती है तब प्रगीत की रचना

बुद्धिप्रसूत होने लगती है। कोई प्रगीत कितना संवेगप्रसूत है और कितना बुद्धिप्रसूत, इसकी कसौटी उसमें प्रयुक्त प्रतीक और रूपक हैं। महादेवी वर्मा के काव्य में कुछ प्रतीक इतने पुनरावृत्त हुए हैं कि अंततः उनकी प्रतीकात्मकता रूढ़ और एक सीमा तक प्रभावहीन हो गई है। इनमें से एक प्रतीक दीपक का है। यह प्रतीक खड़ी बोली में लिखी गई उनकी पहली ही कविता में आ गया था। इस कविता का शीर्षक ही 'दीया' था। यह कविता है –

धूलि से निर्मित हुआ है यह शरीर ललाम,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम,
प्रेम का ही तेल भर जो हम बनें निःशोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर में आलोक।

इस कविता में दीया जीवन का ही प्रतीक बनकर आया और इसी प्रतीक और उसके अर्थ में थोड़ा हेरफेर करते हुए महादेवी वर्मा ने तमाम प्रगीत लिखे, जिसका चरम रूप हमें *दीपशिखा* के प्रगीतों में मिलता है। उनकी इस पहली खड़ी बोली की कविता में दीपक के प्रतीक के साथ-साथ सांग रूपक भी है। प्रतीक के चयन और सांग रूपक की संरचना से यह स्पष्ट है कि उनकी यह कविता उतनी संवेगप्रसूत नहीं है, जितनी बुद्धिप्रसूत। अर्थालंकारों में सांग रूपक की रचना बुद्धि-आधारित है। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जो कवि जितने बड़े और निर्दोष सांग रूपक रच सकता है वह उतना ही बड़ा बौद्धिक कवि है। हिंदी में *रामचरितमानस* और *विनय पत्रिका* के वृहदाकार और सर्वथा निर्दोष सांग रूपक रचने वाला तुलसी के अतिरिक्त दूसरा कोई अन्य कवि नहीं है। इसीलिए उनसे बड़ा विद्वान और बौद्धिक कवि भी दूसरा नहीं। लेकिन उनका वैशिष्ट्य इस बात में भी है कि उनकी तीक्ष्ण बुद्धि के साथ-साथ उनका हृदय भी अत्यंत संवेदनशील है। इसीलिए तो वे राम को भगवान के रूप में स्थापित करने में सफल हुए। यही स्थिति छायावादी कवियों में प्रसाद जी की है। *कामायनी* की रचना वे ही कर सकते थे। यही कारण है कि *रामचरितमानस* और *कामायनी* सहृदय बौद्धिकों के लिए चुनौती बनकर आई हैं और उन्हें बार-बार विभिन्न दृष्टि बिंदुओं से देखा गया है और व्याख्यायित किया गया है। महादेवी वर्मा में इन महाकवियों जैसी बौद्धिकता और सहृदयता है, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उनके प्रगीतों की सांग रूपकात्मक संरचना उनकी बौद्धिकता को अवश्य प्रमाणित करती है। उनके प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रगीतों की संरचना सांग रूपकात्मक है। उदाहरण के लिए, *नीरजा* का ही प्रसिद्ध प्रगीत 'वसंत रजनी' देखें। इस प्रगीत के टेक है –

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से, आ वसंत-रजनी !

इस टेक के बाद इस प्रगीत के अंतरों में वसंत की रात का सांगरूपक के द्वारा मानवीकरण किया गया है। इस वसंत-रजनी से कवयित्री कहती है कि वह तारों की नई वेणी बांधकर शीश पर शशि का नूतन शीशफूल धारण कर, किरणों का कंगन पहनकर, सफेद बादलों का घूंघट काढ़कर अपनी चितवन से अभिराम मुक्ताफल बिछा दे। यह वेश धारण कर वह पुलकती हुई आए। वह मर्मर की सुमधुर नूपुरध्वनि करती हुई, भौंरों से गुंजायमान कमलों कर्धनी पहनकर, अपने पैरों में धीरे-धीरे बहने वाली तरंगिणी की चाल लेकर हंसती हुई आए और अपनी मृदु स्मिति से तरल रजत की धारा बहा दे। वह पुलकित रोमावली से युक्त होकर, हाथों की अंजलि में स्मृतियां भर कर, मलयानिल का चंचल दुपट्टा ओढ़कर सकुचाती-लजाती हुई इस विश्व रूपी अभिसार स्थल पर श्यामल छाया के समान (कृष्णाभिसारिका) बनकर आए। इस कृष्णाभिसारिका वसंत-रजनी का सरिता रूपी हृदय सिहर-सिहर उठता है, अथवा उसे इस प्रकार आता देखकर सरिता का हृदय सिहर-सिहर उठता है, सुमन सुधा से भरकर उसके स्वागत में खिल-खिल पड़ते हैं, पल मचलने लगते हैं, प्रिय की पदचाप सुनकर अवनी पुलकित हो उठती है। यह वसंत-रजनी अपने प्रिय से मिलने के लिए सिहरती हुई आती है।

यह पूर्णतः निर्दोष सांग रूपक है। महादेवी वर्मा के अनेक प्रगीतों में ऐसे सांग रूपक अनायास सुलभ हैं। 'प्रिय! सांध्य गगन मेरा जीवन', 'विरह का जलजात जीवन', 'यह मंदिर का दीप, इसे नीरव जलने दो', 'चुभते ही तेरा अरुण बान', 'मोम-सा तन', 'पूछता क्यों शेष कितनी रात', 'शून्य मंदिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी' आदि प्रसिद्ध प्रगीतों की संरचना सांग रूपकात्मक ही तो है। जहां पूरा-का-पूरा प्रगीत सांग रूपक नहीं है, वहां भी सांग रूपकों का अभाव नहीं है।

महादेवी वर्मा ने ऐसी कविताएं भी लिखी हैं, जिनकी औपचारिक संरचना प्रगीत की नहीं है अर्थात् जिनका ढांचा टेक और अंतरों से मिलकर नहीं बना है, उनमें भी अनुभूति के स्तर प्रगीतात्मकता है। जैसे, 'विसर्जन', 'मिलन', 'अतिथि से', 'अधिकार' आदि अनेक रचनाएं। इनमें भी प्रतीकों, मानवीकरणों, उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, रूपकों आदि का अभाव नहीं है। इन कविताओं में कवयित्री की बौद्धिकता स्पष्ट झलकती है। 'मैं और तू' ('रश्मि') कविता में तो यह बौद्धिकता अपने चरम पर पहुंची है। इस कविता में महादेवी वर्मा ने आत्मा और परमात्मा के भिन्नता में अभिन्नता के संबंधों का निरूपण किया है। यह निरूपण कैसा है, यह एक उदाहरण से ही स्पष्ट हो जाएगा–

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर कौतूहल के बाण !
कलियों के मधु प्यालों से जो करती मदिरा पान,
झांक जला देती नीड़ों में दीपक-सी मुस्कान!
लोल तरंगों की तालों पर करती बेसुध लास,
फैलाती तम के रहस्य पर आलिंगन का पाश!
ओस धुले पथ में छिप तेरा जब आता आह्वान,
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में होता अंतर्धान !

(*महादेवी साहित्य-3*, पृष्ठ 157-58)

इसमें विधु ब्रह्म का प्रतीक है और मुग्धा रश्मि आत्मा का। रश्मि विधु से भिन्न होकर विविध क्रीड़ाएं करती है और फिर उसी में लीन हो जाती है। इसमें मानवीकरण के साथ-साथ सांग रूप भी है। इस कविता की संरचना विभिन्न सांग रूपकों से मिलकर बनी है। इस कविता के विभिन्न रूपकों में बौद्धिक विलास स्पष्ट है। इससे यही सिद्ध होता है कि यह आध्यात्मिकता या रहस्यवाद उतना अनुभूतिजन्य नहीं जितना बुद्धिजन्य।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष स्वतः निकलता है कि महादेवी वर्मा के प्रगीतों की मूल संरचना सांग रूपकात्मक है। सांग रूपक उनके प्रगीतों में ही नहीं, प्रगीतेतर कविताओं में भी अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति रखते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि उनकी काव्य रचनाओं में संवेगात्मक अनुभूति की अपेक्षा बौद्धिकता अधिक सबल है। इसीलिए सीमित वस्तुगत पूंजी से वे इतनी कविताएं लिख सकीं। हमें इस बात की प्रशंसा करनी होगी कि सीमित पूंजी के बावजूद उनकी दो काव्य-रचनाओं में पुनरावृत्ति का आभास प्रायः नहीं होता। क्या इसका श्रेय भी उनके सांगरूपकों को नहीं दिया जा सकता।❑

महादेवी के काव्य में क्रांति-चेतना

फ्रायड के प्रिय शिष्यों ने महादेवी के हर शब्द, हर पंक्ति, हर प्रतीक में प्रच्छन्न शृंगार और काम-कुंठाओं को प्रमाणित करने का प्रयास किया तो कई अन्य ने उनके काव्य में किसी भी सामाजिक संघर्ष के अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया / इन विकृत समीक्षाओं का परिणाम यह हुआ कि महादेवी की कविता में छिपी क्रांति की आग अनदेखी रह गई / उनके आंसू तो सबने देखे पर हम भूल गए कि महादेवी ने आग के बिना आंसू का अस्तित्व कभी स्वीकार ही नहीं किया था / महादेवी के काव्य में क्रांति-चेतना के विभिन्न पक्षों से परिचित करा रहे हैं **राजेन्द्र गौतम**

पिछले आठ दशकों में महादेवी के काव्य पर सीधे-सीधे या छायावाद के संदर्भ में कई हजार पृष्ठ लिखे जा चुके हैं। सवाल उठ सकता है कि क्या अब भी उन पर कुछ नया कहा जा सकता है? इसका उत्तर 'हां' है और इसके अनेक कारण हैं। एक तो बहुत कुछ कह दिए जाने का मतलब सब कुछ कह दिया जाना नहीं है, दूसरे उस 'बहुत कुछ' के प्रति सर्वसहमति हो, सर्वस्वीकृति हो...न यह अनिवार्य है और न संभव ही। महादेवी के काव्य की अब तक की समीक्षा में दो-तीन बड़ी खामियां नजर आती हैं। पहली तो यह कि हमने आदतन उन्हें सूत्रों में बांधकर मूल्यांकित किया है। 'वे आधुनिक मीरा हैं!' 'वे पीड़ा की साम्राज्ञी है!' 'वे रहस्यवादी है!' इस तरह के जुमले महादेवी की कविता को समझने के सही रास्ते नहीं दिखलाते। 'मैं विरह में चिर हूं।' 'मैं नीरभरी दुख की बदली', 'मैं मृत्यु मंदिर हूं।' जैसे उनके ही कथन उथले रूप में उद्धृत करके भी हम महादेवी को तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम इन उक्तियों के गंभीर आशय तक नहीं जाते। आंसू, रुदन, विरह, मिटना, गलना, मृत्युछाया आदि के यत्र-तत्र उल्लेख को देखकर उन्हें पलायनवादी घोषित करते हुए कुछ दिग्गज समालोचकों को जरा-सी देर नहीं लगी है। यह वह दूसरी खामी है, जिसका बड़ा कारण महादेवी की कविता को अपने 'कंडिशंड' चश्मे से देखने की आदत है। फ्रायड के प्रिय शिष्यों ने उनके हर शब्द, हर पंक्ति, हर प्रतीक में प्रच्छन्न शृंगार और काम-कुंठाओं को प्रमाणित करने का प्रयास किया तो कई अन्य ने उनके काव्य में किसी भी सामाजिक संघर्ष के अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया। इन विकृत समीक्षाओं का परिणाम यह हुआ कि महादेवी की कविता में छिपी क्रांति की आग अनदेखी रह गई। उनके आंसू तो सबने देखे पर हम भूल गए कि महादेवी ने आग के बिना आंसू का अस्तित्व कभी स्वीकार ही नहीं किया था।

महादेवी की कविता की क्रांति-भावना को हम बीसवीं सदी के परिदृश्य को समझे बिना नहीं समझ सकते। उन्होंने स्वयं लिखा है : ''एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला...।'' 'व्यापक विकृति' का यह वह समय था, जब व्यक्ति का अस्तित्व उपेक्षित था और निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत होने के कारण उसकी अभिव्यक्ति संभव नहीं थी। इसीलिए छायावाद को परिभाषित करते समय बहुत बल देकर महादेवी ने कहा- ''हजारों वर्षों से कुचला व्यक्ति का अहम् अभिव्यक्ति के लिए रो उठा।'' हम हैं कि 'रोने' पर ही अटके रह गए, 'अभिव्यक्ति' पर हमारा ध्यान नहीं गया। 'रोना' भी किस प्रकार क्रांति हो सकता है, इसे समझना होगा। महादेवी की पहली बड़ी क्रांति तो यह है कि उन्होंने कविता लिखी और दूसरी यह कि आत्माभिव्यक्ति की कविता लिखी क्योंकि उस परिवेश में नारी के द्वारा इस रास्ते को चुनना ही बड़ी क्रांति थी। मीरा से उनके व्यक्तित्व और काव्य की बहुत सारी भिन्नताएं हैं पर यह इन दोनों में एक समान बिंदु है। जरा कल्पना कीजिए यदि मीरा अपने ठाकुर को भजने के लिए अपने महल में ही एक ठाकुर-द्वारा बनवा लेतीं तो उनके सामंती परिवेश को क्या आपत्ति होती। लेकिन हद तब हो गई जब वे अपने प्रेम को गा-गाकर जनता के बीच ले आईं। औरत प्रेम करे, भले ही ईश्वर से प्रेम करे, यह हमारी सामंती मानसिकता को कैसे स्वीकार हो सकता है? इससे भी आगे जाकर उस प्रेमी की सरे-बाजार घोषणा भी करे! यह तो कुफ्र है। महादेवी समाज की सारी जड़ताओं को तोड़कर कविता लिखकर ही क्रांति करती हैं और प्रेम की कविता लिखकर उस क्रांति को चरम तक पहुंचाती हैं। आप कहेंगे- प्रेम कहां, वहां तो रहस्यवाद है। पर महादेवी के ही शब्दों को याद कीजिए : ''उसने (छायावाद ने) पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदांत के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली...।'' उनके काव्य में तमाम तीव्रता-उत्कटता लौकिक प्रेम से कटी नहीं है। 'जो तुम आ जाते एक बार', 'तुम्हें बांध पाती सपने में', 'प्राण पिक प्रियनाम के कह' जैसे कितने ही गीतों में लौकिक प्रेम की उत्कटता है।

'दद्दा' का स्नेह पाकर भी महादेवी, प्रसाद, निराला और पंत के उस विराट् आंदोलन से जुड़ीं, जिसका वैश्विक रूप स्वच्छंदतावाद है। सामंतवाद के खंडहर पर खड़ा होने वाला यह काव्यांदोलन प्रकृतितः क्रांतिधर्मा होता है और स्वच्छंदतावाद की लड़ाई होती है, जड़ यांत्रिकता के विरुद्ध, औपनिवेशिकता के विरुद्ध, अमानवीय शास्त्रीयता के विरुद्ध तथा रूढ़िपरक धर्म के विरुद्ध। महादेवी की क्रांतिभावना की दो स्पष्ट दिशाएं हैं। एक ओर वे मनुष्यमात्र के दमन से विचलित-विह्वल हैं? दूसरी ओर मानव के समाज के एक अंग की प्रतिनिधि होने के कारण, औरत होने के कारण, वे अतिरिक्त रूप से क्रांति-भार को वहन करती हैं। यह संघर्ष उनके सामने अस्तित्व का एक संकट खड़ा करता है। महादेवी की एक विशिष्ट आरंभिक कविता है-

'उस पार'। यह उन्होंने तब लिखी थी जब वे मात्र 17 वर्ष की एक किशोरी थीं। अस्तित्व के संकट को उन्होंने तभी पहचान लिया था :

घोर तम छाया चारों ओर
घटाएं घिर आई घनघोर
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वत मूल
गरजता सागर बारम्बार
कौन पहुंचा देगा उस पार

महादेवी की कविता में अंधेरा कितनी बार आया है, यह गिनना बहुत मुश्किल है। उनके अग्रज निराला ने कुछ हताश होकर कभी कहा था : 'कौन तम के पार रे कह!' तम से पार पाना महादेवी के लिए भी बहुत बड़ी चुनौती है। यह तम प्रतिपक्ष का प्रतीक है। अंधेरे से, रात से संघर्ष का अर्थ कोई सस्ती भावुक प्रेमकथा है क्या? नहीं, यह वह विराट् संघर्ष है, जिसका मूल स्वर अग्निमय है। महादेवी की क्रांतिभावना की साक्षी उनकी अग्नि-गर्भा रचनाएं ही हैं। उनको उपेक्षित कर महादेवी का कोई भी मूल्यांकन सही नहीं हो सकता। प्रतिपक्षी तम से लड़ने के लिए- 'अंजनवदना रात्रि' से जूझने के लिए, 'कज्जल दिशा' में धंसने के लिए, 'तिमिरवेषी कल्पदल' से टकराने के लिए महादेवी दीपशिखा के अतिरिक्त क्या बन सकती थीं! महादेवी क्या हैं, यह सवाल हम आज ही नहीं पूछते हैं, ये प्रश्न-बाण तो उन्हें भी निरंतर बींधते रहे। 17 वर्षीय किशोरी ने जिस तम की बात की थी, प्रौढ़ महादेवी उसकी पराजय दिखलाते हुए यह भी बताती हैं कि वे क्या हैं :

पूछता क्यों शेष कितनी रात?
व्यंग्यमय है क्षितिज घेरा
प्रश्नमय हर कण-निठुर-सा
पूछता परिचय बसेरा
आज हो उत्तर सभी का ज्वालवाही श्वास तेरा
छीजता है इधर तू, उस ओर बढ़ता प्रात

कविता का अंत इस प्रकार होता है- 'कौन भय की बात।' नहीं, भय तो महादेवी को है ही नहीं। पूछ, लो क्या पूछना चाहते हो। 'ज्वालवाही श्वास' से उत्तर मिल रहा है। आप उनके लिए तरह-तरह के भ्रांत शीर्षक खोजते रहिए पर समझ तो उन्हें ज्वालवाही श्वास के संदर्भ में ही पाएंगे।

हमने आरंभ में कहा था कि महादेवी को समझने में कई गलतियां हुई हैं। उन्हीं में से एक यह भी है कि उन्हें पलायनवादी घोषित करते हुए उनके गद्य को नजरअंदाज कर दिया गया। *शृंखला की कड़ियां* में उन्होंने स्त्री की अस्मिता को अत्यंत क्रांतिकारी ढंग से रेखांकित किया है तो घिस्सू, भक्तिन और गुंगिया जैसे संस्मरण और रेखाचित्र एक और क्रांति-कथा लिखते हैं। निराला ने यों ही महादेवी को 'स्फूर्ति, चेतना, रचना की प्रतिमा कल्याणी' नहीं कहा था। *शृंखला की कड़ियां* पिघलाना उनके जीवन और काव्य का लक्ष्य था। उनकी दृढ़ता और क्रांतिभावना से परिचित होना है तो जरा इन पंक्तियों को देखिए :

शृंखलाएं ताप के डर से गलेंगी।
भित्तियां यह लौह की रज में मिलेंगी।

लौह-भित्तियां कैसा भयानक परिदृश्य हमारे सामने लाती हैं! देश और विश्व- दोनों संदर्भों में हम तब लौह-भित्तियों से घिरे थे। उन्हें गलाने के लिए



चित्र सौजन्य : महेन्द्रराजा जैन

अपेक्षित आनुपातिक ताप की कल्पना करके ही हम महादेवी के व्यक्तित्व को समझ सकते हैं। ध्यान रखना होगा, यह ताप अन्याय और शोषण के विरुद्ध है पर अंतत: यह स्नेह-निर्झर ही बहाता है। महादेवी ने जब-जब जलने की बात की है, तब-तब गलने का, पिघलने का संदर्भ आया है। यह पिघलना, करुणा-द्रविता होना ही है। हम उनके जीवन और कविता में 'आंसू' के अस्तित्व को नकार नहीं रहे हैं पर ये आंसू पराजित रुदन के पर्याय नहीं हैं, ये तो उनकी करुणा का साकार रूप हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है- 'आग हूं जिससे ढुलकते / बिंदु हिमजल के।' महत्त्वपूर्ण यह है कि करुणा के साथ क्रांति की अनिवार्य भावना उनके काव्य में है। स्वच्छंदतावादी कवि की भीतर सामाजिक जड़ताओं के प्रति गहरा असंतोष होता है, वह इसीलिए सब कुछ बदल देना चाहता है। झंझावात, प्रलय, तूफान जैसी शब्दावली वास्तव में स्वच्छंदतावादी कवि भी भीतरी बेचैनी की वाहक होती है। महादेवी की समूची कविता में एक बेचैनी का भाव सर्वोपरि है। उनकी कविता में कल्पना के द्वारा जिन विराट व्यापक लोकों की सृष्टि हुई है, वह परिवर्तन के सपने देखने का ही परिणाम है। इसीलिए उनकी क्रांति-चेतना ऐसा रूप पा सकी है:

मेरे विश्वासों में बहती रहती झंझावात
आंसू में दिन-रात प्रलय के घन करते उत्पात
कसक में विद्युत अंतर्धान

महादेवी जिस व्यापक, विराट संसार की रचना करती हैं, वह उनकी आकांक्षा का संसार है। यह आकांक्षा व्यष्टि और समष्टि दोनों की ही है। वे जानती हैं कि यह सहज सुलभ नहीं है, पर फिर भी इस कल्पना-सृष्टि से वे अपने लिए एक स्पेस खोजती हैं। मनुष्य की और औरत की एक जगह समाज में बनाती हैं- उस औरत की जो नितांत उपेक्षित थी। यह जगह, यह स्पेस ध्यान रहे, करुणामय तो है पर करुण नहीं, दया का पात्र या निरीह नहीं क्योंकि वे विषम विसंगता का, भयावह का, कठिन-कठोर का चित्रण तो करती हैं पर उससे पराजित कहां होती हैं? ऐसी है उनकी संकल्पनावत्ता :

अन्य होंगे चरण हारे
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे



वाराणसी में भारतेन्दु पुण्यशती समायोजन के अवसर पर समारोह को संबोधित करती महादेवी वर्मा, साथ में हैं कथाकार जैनेन्द्र (बाएं) और काशी हिंदू विश्वविद्यालय के कुलाधिपति वि. ना. सिंह

दुखव्रती निर्वाण उन्मद / यह अमरता नापते पद
बांध देंगे अंक-संसृति / से तिमिर में स्वर्ण बेला
पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला

कविता में जब क्रांति का जिक्र आता है तो कुछ लोग नारों को इसका वाहक समझ लेते हैं और चूंकि महादेवी के लिए नारे कविता के पर्याय नहीं थे, इसलिए उन्हें महादेवी की कविता में कहीं क्रांति नजर नहीं आती। स्वच्छंदतावाद की पहली टक्कर यथास्थितिवाद से होती है। परिवर्तन उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा है। इसलिए महादेवी का समूचा काव्य यथास्थितिवाद के विरुद्ध खड़ा है। उनकी कविताओं में ही नहीं, उनके चित्रों में भी यात्रा का बिंब आवृत्तिमूलक है। उनकी एक बहुपरिचित और बहुचर्चित कविता है- 'जाग तुझको दूर जाना!' इस कविता का पुनर्पाठ और विखंडन महादेवी को समझने में सहायक हो सकता है। आइए जरा इसे देखें :

चिर सजग आंखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!
जाग तुझको दूर जाना!
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आंसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत शिखाओं में निदुर तूफान बोले!
पर तुझे है नाश के पथ पर चिह्न अपने छोड़ जाना!
बांध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले!
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले!
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओसगीले!
तू न अपनी छांह को अपने लिए कारा बनाना!
वज्र का उर एक छोटे अश्रु कण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूंट मदिरा मांग लाया,
सो गयी आंधी मलय की वात का उपधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या फिर नींद बनकर पास आया?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?
कह न ठंडी सांस में अब भूल वह जलती कहानी
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका!
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदु कलियां बिछाना

एक सरलतावादी आलोचक के लिए इस कविता का रहस्यवादी पाठ बड़ा अनुकूल पड़ता है पर क्या वह सही पाठ है? जब घेरे से बाहर निकल कर देखते हैं तो इसमें महादेवी की क्रांतिभावना की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। यहां भी प्रतिपक्ष में आलोक को पीकर डोलते तिमिर की छाया है और हृदयहीन तूफान है। पलायन की एक सीधी-सी व्याख्या यह है कि हम मोम के बंधनों में बंध जाते हैं, तितलियों के रंगीन पर बाधा बन जाते हैं, फूल के ओस-गीले दल, हमें डुबा देते हैं, मधुप की गुन-गुन विश्व-क्रंदन भुला देती है। इनके पार जाना होगा। तो क्या महादेवी का मन सौंदर्य-द्वेषी है। नहीं प्रश्न चुनाव का है। विश्वक्रंदन के रहते इन सबका क्या अर्थ है। और क्रंदन पहली बार तो उनकी कविता में नहीं आया है, वह तो पहले ही पूछ चुकी हैं:

कह दे मां अब क्या देखूं
तुझ में अम्लान हंसी है
इसमें अजस्र आंसू जल
तेरा वैभव देखूं या
जीवन का क्रंदन देखूं।

और इससे पहले ही वे अपने हंसते अधरों की अपेक्षा जग की आंसू

लड़ियों को देखने की बात कह चुकी थीं। अन्यत्र उन्होंने यह भी कहा है :

तुम्हें बांध पाती सपने में
भरती मैं संसृति का क्रंदन
हंस जर्जर जीवन अपने में।

महादेवी यदि विश्व-क्रंदन न भुलाकर अनंत यात्रा पर निकली हैं तो अपनी करुणा को लेकर, पर गौर कीजिए उनके आंसू भीतर की आग के बिना कहां से आते। वे तो कहती हैं- 'आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी।' यह आग, यह ज्वाला उनकी शाश्वत सहचरी है। इस आग के बिना महादेवी क्या हैं- 'एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूं।'

अध्यात्म और रहस्यवाद की मनमानी व्याख्या करके आलोचकों ने महादेवी की कविता को जड़िमा प्रदान की है। यदि उनके रहस्यवाद को सही परिप्रेक्ष्य में समझें तो वह भी कम प्रगतिशील नहीं हैं। अध्यात्म के संबंध में वे लिखती हैं : ''इस बुद्धिवाद के युग में भी मुझे जिस अध्यात्म की आवश्यकता है, वह किसी रूढ़ि, धर्म या संप्रदायगत न होकर उस सूक्ष्म सत्ता की परिभाषा है, व्यष्टि सप्राणता में समष्टिगत एक प्राणता का आभास देती है, इस प्रकार व मेरे संपूर्ण जीवन का ऐसी सक्रिय पूरक है, जो जीवन के सब रूपों के प्रति मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है। जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में निराशा का कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता है, यह दूसरे ही बता सकेंगे, परंतु हृदय में तो मैं आज निराशा का कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल एक गंभीर करुणा की छाया ही देखती हूं।'' उनके हृदय की यह गंभीर करुणा की छाया परिवर्तनाकांक्षी है इसमें संदेह नहीं। उनके रहस्वाद में प्रकृति का व्यापक लोक सर्जित हुआ है, वह भी एक भावक्रांति है। महादेवी ने प्रकृति को मानव के सौंदर्य और प्रेम के महागीत की सजग श्रोता ही नहीं, उसकी ऐसी निरंतर संगिनी अनुगायिका माना है, जिसके अभाव में संगीत के स्वर अकेले और प्रतिध्वनि शून्य हो जाते हैं।

यहां हमें प्रसिद्ध स्वच्छंदतावादी आलोचक सी.एम. बावरा याद आते हैं। अपनी पुस्तक *द रोमांटिक इमेजिनेशन* में उन्होंने लिखा है : ''सभी स्वच्छंदतावादी कवियों ने आरंभिक प्रेरणा प्रकृति से ग्रहण की। यह उनके लिए सर्वस्व भले ही न हो पर वे इसके बिना कुछ नहीं थे, क्योंकि इसी के माध्यम से वे सक्षम अनुभूति-क्षण प्राप्त हुए, जिनमें विश्व-रहस्यों के उद्घाटन की अंतर्दृष्टि भी उन्हें प्राप्त हुई।'' महादेवी ने अपने समूचे कथ्य को प्रकृति के परिवेश में ही प्रस्तुत नहीं किया है, अपितु प्रतीक, बिंब एवं अप्रस्तुत-विधान के रूप में प्रकृति-उपादानों का ही उपयोग किया है। यह प्रवृत्ति आत्मपरक स्वच्छंदतावादी क्रांतिधर्मा कवि की है। उनके विरोध और विद्रोह की अभिव्यक्ति का एक रूप द्वंद्वात्मकता में है। उनकी कविता में आग और आंसू, मोम और ज्वाला, शूल और धूलि चंदन एक साथ आए हैं। उनकी करुणा भी इस द्वंद्वात्मक रूप में फूटी है :

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन
व्यथा प्राण हूं नित सुख का पता मैं
घुला ज्वाल में मोम का देवता मैं।

महादेवी को उनके जीवन और साहित्य की समग्रता के द्वारा ही समझा जा सकता है। उन जैसा निश्चय-निष्ठ जीवन कितने लोग जीते हैं? वे वैसी सुविधाजीवी पार्टटाइम साहित्यकार नहीं थीं, जैसे हममें से अधिकांश हैं। साहित्य ही उनका जीवन था पर जब जीवन सीमित नहीं है तो साहित्य सीमित कैसे होगा! न वे अपने समय की राजनीतिक हलचल से अपरिचित थीं और न सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों से कटी थीं। गांधी तो उनकी सादगी भरी जीवनपद्धति में बसे थे और नेहरू से भी उनके निकट आत्मीय संबंध थे। इसीलिए वे जीवन के सभी पक्षों को देख-छू पाई हैं। समग्रता का दूसरा पक्ष उनके रचना-वैविध्य का है। कविता, अनुवाद, साहित्य-विमर्श, निबंध, संस्मरण और रेखाचित्र तो इस समग्रता के विपुल घटक हैं ही, उनके जीवन के अंतिम तीन दशकों में उनके व्याख्यान और भाषण भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। महादेवी के कविता-संसार की एकांगिकता से जो विद्वान खिजे रहते हैं, वे इस समग्रता के पास क्यों नहीं जाते? 'पथ के साथी' औपचारिक संस्मरण भर हैं या ये अपने समकालीनों से उनके गहरे जुड़ाव का प्रमाण देते हैं, यह तो सोचना ही होगा। देश और समाज की उन्हें कितनी चिंता थी, यह उन भाषणों से जाना जा सकता है।

प्रेमचंद जन्म-शताब्दी पर 'मध्य प्रदेश साहित्य परिषद' में 1980 में दिया गया उनका एक ऐसा ही उल्लेखनीय भाषण है, जिसमें उन्होंने प्रेमचंद के लेखन को ही नहीं, समूचे हिंदी कथा-साहित्य को मथकर ये उत्प्रेरक-उद्वेलक विचार व्यक्त किए थे : ''आप लोगों ने *गोदान* पढ़ा ही होगा तो मन एकदम कांप जाता है और आप कई रात सो नहीं सकेंगे। अगर होरी की बात आप सोचें तो लगता है, प्रेमचंद जी सके हैं, उसके साथ। यथार्थ तो सबके पास है। यथार्थ को सत्य से जोड़ देना बड़ा कठिन होता है...आज इतने उपन्यास लिखे जा रहे हैं, क्रांतिकारी लिखे जा रहे हैं, मनोवैज्ञानिक लिखे जा रहे हैं, लेकिन *गोदान* का होरी तो अकेला ही है, उसकी समस्या जहां की तहां है और वह जीवन के व्यापक सत्य से जुड़ी हुई है। मनुष्य जब तक समानता नहीं पाएगा, मनुष्य तब तक बंधुत्व नहीं पाएगा, मनुष्य जब तक मनुष्य की गरिमा नहीं समझेगा, तब तक सुखी नहीं रहेगा।'' ये हैं महादेवी! जो मनुष्य की गरिमा की चिंता से ग्रस्त हैं, बंधुत्व की आंकाक्षिणी हैं और यह आकांक्षा क्रांति-चेतना से उद्भुत है। किसी पलायन ग्रस्त मन में इसका अस्तित्व नहीं होता।

आज जब उन्हें केंद्र में लाने के लिए संघर्ष का बिगुल बज चुका है, जिनका अस्तित्व हासिए पर रहा है, तब महादेवी की क्रांति-चेतना और भी प्रासंगिक हो जाती है। यह दलित एवं स्त्री-विमर्श का युग है। स्त्री-विमर्श का बीज रूप निस्संदेह उनकी कविता में विद्यमान है पर महादेवी ने उच्छृंखलता को क्रांति का पर्याय नहीं माना है। उनका कहना है- ''प्रत्येक मद्यप कुछ सामाजिक मूल्यों का विरोध करता है, इसीलिए वह क्रांतिकारी नहीं बन जाता।'' जिस समय 'शृंखला की कड़ियां' के निबंध लिखे गए थे, उस समय के हिंदी साहित्य में आज जैसे स्त्री-विमर्श की कहीं कोई ध्वनि या प्रतिध्वनि नहीं थी। तब महादेवी ने औरत होने के दर्द को रेखांकित किया था। वह औरत घर-परिवार की साधारण औरत थी। उसके दर्द के रेशे-रेशे से पहचान थी महादेवी की! उस समय उन्होंने स्त्री के हकों के लिए जो आवाज उठाई थी, उसमें दृढ़ता तो है ही, रूढ़ियों तथा जड़ संस्कारों पर चोट भी है पर उनका स्त्री-विमर्श पुरुष-द्वेषी नहीं है। उसमें घृणा का दर्शन नहीं है। उद्दाम भोग की मांग भी नहीं है अर्थात् नारी की देहवादी परिभाषा उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। *सिमोन द बुआ* के 'द सैकिंड सैक्स' की तर्ज पर वह 'अन्य' नहीं थी। समाज की समान इकाई थी। अपनी अन्य मान्यताओं की तरह यह क्रांतिदर्शिनी कवयित्री इस संदर्भ में भी मोम-सी कोमल और वज्र-सी कठोर है। वास्तव में उनका समूचा व्यक्तित्व ऐसा ही है। 'हिमालय' विषयक कविता में उन्होंने हिमालय को तरलता का मूर्तिमान रूप और कुलिश सम कठोर बतलाया है। सचमुच ऐसी ही थीं महादेवी! उनका व्यक्तित्व टैगोर के इन शब्दों की याद दिलाता है : (हे धन-विद्युत के देव! तुम्हारी रत्न-जटित कलाई सुंदर है परंतु सुंदरतर है वह खड्ग जिसे देख सोचकर डर लगता है!) ❑



महादेवी वर्मा के साथ लेखिका अनिता गोपेश

स्त्री अस्तित्व की सशक्त पहचान

महीयसी महादेवी वर्मा

***अनिता गोपेश** इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राणी विज्ञान विभाग में प्रोफेसर हैं / महादेवी वर्मा के देहावसान के कुछ महीने पहले लेखिका ने उनसे एक लंबी बातचीत की थी / प्रस्तुत है बातचीत के कुछ अंश :*

मेरा सौभाग्य कि मुझे महीयसी महादेवी वर्मा को न सिर्फ पास से जानने का अवसर मिला, बल्कि उनका समर्थन और स्नेह भी मिला। वह कविता में छायावाद की स्तंभ, एक कुशल चित्रकार, एक शिक्षाविद, शिक्षिका, सशक्त वक्ता होने के साथ ही, स्त्री-विमर्श की एक सशक्त पैरोकार थीं। उनका जीवन और व्यक्तित्व जहां एक अधुनातन और आज की शब्दावली में 'बोल्ड' स्त्री का ज्वलंत उदाहरण था, वहीं स्त्री सरोकारों पर लिखे उनके लेखों का संकलन *शृंखला की कड़ियां* भारतीय संदर्भ में स्वतंत्र स्त्री के स्वरूप पर एक स्पष्ट और संतुलित दस्तावेज है। 1945 में छपी यह पुस्तक, पश्चिम के उधारी स्त्री-विमर्श *वीमेन्स लिब* के बर-अक्स, पूरबी समाज में स्वतंत्र स्त्री के स्वरूप का एक मौलिक संस्करण प्रस्तुत करती है।

पुस्तक और रचनाओं से इतर, उनका जीवन अपने मन के जीवन को हाथ बढ़ाकर प्राप्त कर लेने की अनुपम मिसाल है। छोटी वय में, नींद के झोंके में हुए विवाह का, बिना वाद-वितंडा खड़ा किए, अहिंसक तरीके से निषेध, उनका गांधी के अहिंसा में आस्था का परिचायक था। तत्कालीन समाज में जब रचनाकर्मी 'भाई-बहिन' के छद्म में प्रेम का कारोबार चला रहे थे, महादेवी जी ने अपने सुहृदय मित्र गंगा प्रसाद पांडेय तथा, उनके परिवार को गांव से लाकर अपने साथ रखा। उन्हीं पांडेय जी के पुत्र स्वर्गीय श्री रामजी पांडेय ने पुत्रवत उनकी जीवन के अंतिम क्षण तक सेवा की और इतनी की कि उनके इलाज के दौरान दी जाने वाली रेडियेशन-थेरेपी से अपने फेफड़े खराब कर लिए।

मेरे पिता श्री गोपीकृष्ण गोपेश को महादेवी जी राखी बांधती थीं- भय्यादूज और रक्षाबंधन पर हम उनके घर जरूर जाते। राखी बांधने पर बजाय अपने भाइयों से कुछ लेने के, भाइयों को नारियल और ग्यारह रुपये देती थीं। बड़े चाव से वे भोज-पत्र और कलाई-नारा की राखी अपने हाथ से बनाती थीं। पिता के निधन के बाद जब रक्षा-बंधन और भय्यादूज पर उनके यहां नहीं गए तो डॉ. रामजी पांडेय से उन्होंने कहला भेजा कि "राखी और भय्या दूज पर गोपेश की कमी बहुत अखरती है- बच्चों से कहो कि आ जाया करें।" और फिर हम चारों भाई-बहन जीवनपर्यंत दोनों अवसरों पर उनके यहां जाते- उनकी बैठक की उसी गोल-मेज के चारों तरफ बैठ उनके हाथ से प्रसाद-स्वरूप नाश्ता-फल पाते और टीका लगवाकर 'ग्यारह रुपये' लेकर आते। इन सभी अवसरों पर वह मां का हाल विस्तार से जानना न भूलतीं। लड़कों की तरह ही मुझसे भी चरण-स्पर्श करा लेतीं और आशीर्वाद देतीं- "पढ़ो-लिखो भाइयों के लिए संरक्षक बनो, मां बनो।" अपनी निश्छल छल-छल करती हंसी के साथ कहतीं - "विवाह करो या न करो - काम करो - समाज के लिए कुछ सार्थक करती रहो।"

एक रक्षाबंधन पर 'राखी' के महत्व पर बात करते हुए उन्होंने मेरे छोटे भाइयों से पूछा- "रक्षा-सूत्र का तुम क्या मतलब समझते हो?" भाई ने कहा - "बहिन, भाई से रक्षा का संकल्प लेती है।" सिर हिलाकर नकारते हुए उन्होंने जवाब दिया, "नहीं भाई ! अरे इसकी तुम लोग रक्षा करोगे - फिलहाल तो यही तुम लोगों की रक्षा कर रही है। अब इसका अर्थ बदल दो- ये रक्षा का नहीं, स्नेह का सूत्र है। मैं इसे स्नेह का प्रतीक मानती हूं।"

ऐसी ही अनगिनत बातें उनकी याद करने लायक हैं। उनके देहावसान के पहले- मैंने उनसे एक लम्बी अनौपचारिक बातचीत की थी- मेरे प्रश्नों के जवाब महादेवी जी देती गई थीं। वह ज्यों की त्यों प्रस्तुत है :

आज आजादी मांगने से मिलती कहां है। आजादी तो हम औरतों को छीनकर लेनी होगी, परन्तु समता के नाम पर पश्चिम से उधार ली हुई समता की बात से मैं सहमत नहीं हूं। समता की बात करके औरत मर्द बन जाना चाहती है, जबकि उसे मर्द नहीं, विवेकशील, विचारवान औरत बनना है और यह नए और पुराने के संतुलित समन्वय से संभव होगा।...

-महादेवी वर्मा

प्रश्न : **आप उन चश्मदीद गवाहों में से एक हैं, जिन्होंने आजादी के पहले, आजादी के समय और आजादी के बाद की औरत को बहुत करीब से देखा है, समझा है और उनकी तकलीफों को अपनी आवाज दी है। निश्चय ही तब से अब तक स्थितियों, परिवेश और संदर्भों में काफी बदलाव आया है। इस बदली हुई स्थिति में आप नारी के स्वरूप में किस तरह के परिवर्तन देख रही हैं?**

उत्तर : परिवर्तन अवश्य हुआ है, परन्तु जितना होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ और जो हुआ, वह सही दिशा में नहीं हुआ। विकास की जितनी सुविधाएं और अवसर औरत को दिए गए हैं, औरत ने अपने मूलाधार परिवर्तन के लिए उनका लाभ नहीं उठाया। बाहरी बदलाव चाहे जितने हुए हों, औरत अन्दर ही अन्दर अभी उन्हीं हालातों में जी रही है।

आपकी दृष्टि में इसका कारण क्या है?

कारण, सही शिक्षा का अभाव और समाज में धीरे-धीरे व्याप्त होती जा रही वस्तुवादी मानसिकता है। दरअसल इसी मानसिकता ने हमारे समाज के सभी वर्गों को प्रभावित किया है। ऐसे में औरत इससे अछूती रह जायेगी, ऐसा सोचना हमारी भूल होगी। हमारे यहां औरत की सारी तैयारी ही इसी उद्देश्य से की जाती है, कि वह साधन-सम्पन्न सुविधाजनक जीवन का अंग बन सके। मैं अपने जमाने की बात बताऊं। हमारे जमाने में औरतों के सामने एक उद्देश्य था। बापू के आह्वान पर स्वतंत्रता की लड़ाई में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर औरतें जगह-जगह शिरकत कर रही थीं, सहयोग कर रही थीं।

महादेवी जी, आज ये कहा जा रहा है कि औरतों के साथ आए दिन होने वाली दुर्घटनाएं जैसे बलात्कार, अपहरण, जिन्दा जला देने की घटना, आत्महत्या, तलाक और दाम्पत्य जीवन में बढ़ता हुआ तनाव इन सबके पीछे औरतों का ज्यादा पढ़ा-लिखा होना ही मूल कारण है। आप क्या सोचती हैं?

यह नितांत भ्रामक धारणा है। औरतों की बढ़ती हुई शिक्षा ने ही तो अपने अस्तित्व की पहचान करायी है और इसी पहचान से उसे अपने अधिकारों का एहसास हुआ है। यह पहचान ज्यों-ज्यों पुख्ता होती जायेगी, इसे पाने के लिये संघर्ष होंगे। इन हालात में औरतों के साथ यह सब तो होना ही है। जब तक औरत के भीतर अपने अस्तित्व का अहसास नहीं था, उसका मान-सम्मान नहीं था। लेकिन जैसे-जैसे यह अहसास बढ़ा, जागृति आई और औरत ने आजादी की मांग की। पुरुष ने कहा, "तुझे समता चाहिए, स्वतंत्रता चाहिए तो यह ले।" समता और स्वतंत्रता भी जैसे उन्होंने उसे भीख में देनी चाही। बल्कि कमोबेश दी गई आजादी और अधिकारों के इस लेन-देन के व्यापार में पुरुष औरत के प्रति अनास्था और आक्रोश से भर उठा। अब जो छोटी-छोटी कम उम्र की लड़कियों के बलात्कार, अपहरण और सताये जाने की दुर्घटनाएं होती हैं, तो उसके मूल में यही मानसिकता काम आती है। जो व्यक्ति बलात्कार करता है, वह भी आम आदमी की तरह ही एक व्यक्ति है। उसके भी मां, बहन, पत्नी और बेटी होती हैं, परंतु बलात्कार के समय वह मनुष्य कहां रह जाता है, वह तो पशु समान आचरण करने लगता है।

तो क्या औरतें समता और आजादी की बात करना छोड़ दें?

न...न... ऐसा बिल्कुल न करें, लेकिन आज आजादी मांगने से मिलती कहां है। आजादी तो हम औरतों को छीनकर लेनी होगी, परन्तु समता के नाम पर पश्चिम से उधार ली हुई समता की बात से मैं सहमत नहीं हूं। समता की बात करके औरत मर्द बन जाना चाहती, जबकि उसे मर्द नहीं, विवेकशील, विचारवान औरत बनना है और यह नए और पुराने के संतुलित समन्वय से संभव होगा।



स्त्री विमर्श की सशक्त पैरोकार महादेवी के साथ लेखिका

इस ज्ञान के सही अभाव में भी हमारे समाज में बहुत–सी लड़कियां दुर्घटनाओं का शिकार हो जाती हैं।

देखो, हर चीज को जानने का एक समय होता है और समय आने पर वह चीज खुद-ब-खुद जानकारी में आ जाती है। मोर को कौन बताता है कि बरसात प्रेम का मौसम है, हर्ष और उल्लास का मौसम है। समय के पहले कुछ भी बता देना बहुत घातक है। अधिकारों की लड़ाई लड़ने के लिए भी एक ट्रेनिंग की जरूरत है। भावनाओं से हम विकृतियों और विसंगतियों का मुकाबला नहीं कर सकेंगे। हमारे अपने देश के लिए अपनी संस्कृति, संस्कार और परिवेश के अनुरूप नयी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है। पश्चिम की नकल करने से कोई बात नहीं बनने वाली है।

महादेवी जी, आप यह तो मानती होंगी कि औरत को आर्थिक आजादी मिली है और सामाजिक सुरक्षा की बात काफी हद तक आर्थिक आजादी से जुड़ी हुई है। इन स्थितियों में आत्मनिर्भर औरत के लिए विवाह के स्वरूप में भी कुछ परिवर्तन अपेक्षित था। क्या कोई परिवर्तन आपको विवाह के स्वरूप में दिखाई देता है?

हां, हुआ है यह परिवर्तन। पहले से बहुत ज्यादा बिगड़ गया है यह स्वरूप। आज विवाह की बलि पर दहेज के नाम पर कितनों की बहू-बेटियां निछावर कर दी जा रही हैं। पहले तो कहीं ऐसा नहीं होता था। आज हमारा दाम्पत्य जीवन जितना तनावपूर्ण है, पहले कभी नहीं था।

क्या ऐसा नहीं लगता कि विवाह के इस साजिशपूर्ण पूर्व निर्धारित स्वरूप पर एक बार फिर से विचार करने की आवश्यकता है?

है, बहुत ज्यादा है, लेकिन इस तरह की चिंता से समाज के एक वर्ग विशेष में बहुत उथल-पुथल है। उस वर्ग में विवाह को लेकर मूल रूप से परिवर्तन हो रहा है, परन्तु वह वर्ग बहुत छोटा वर्ग है, जहां से ऐसे बहुत सारे लोग मिल जायेंगे जो बिना किसी विवाह-आडम्बर के साथ-साथ रह रहे हैं और ऐसे लोग भी समाज में मौजूद हैं जो बार-बार साथी बदलने में विश्वास करते हैं। बड़ी अराजकता बढ़ी है हमारे वैवाहिक और दाम्पत्य जीवन में।

क्या इस परिवर्तन, इस अराजकता को रोका जा सकता है?

नहीं, फिलहाल तो हमारे पास कोई विकल्प नहीं है। बच्चों की समस्या आ जाती है हमारे सामने। मैं तो कहूंगी ऐसे दाम्पत्य जीवन के चलते हमारे समाज में हिप्पियों की पीढ़ी तैयार हुई थी। एक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है हमारा समाज। अभी कोई सही विकल्प हमारे सामने नहीं है।

शायद समय के उथल–पुथल से अपने आप कभी इसका हल निकल सकेगा?

नहीं, शायद ऐसा नहीं होगा। अपने आप कुछ नहीं होगा। बदलाव के लिए औरतों को आगे आना ही पड़ेगा। बहुत से संकट हैं इसमें। जीवन के बीमार मूल्यों को तोड़ने और नये मूल्यों को स्थापित करने के लिए यदि औरतों को विवाह जैसी परम्परा का निषेध करना पड़ा, तो वह भी करना होगा। जिनके लिए आत्म-सम्मान की कीमत है, जो औरतें आजादी से प्यार करती हैं, वे हर हाल में ऐसा करेंगी और जिनके लिए सुख-सुविधाएं ही सब कुछ हैं, उनके लिए हर जगह सुख ही सुख है। वे तो जैसे-तैसे विवाह कर ही लेंगी। अब मोटर, गाड़ी, बंगला, टी.वी., फ्रिज, नौकर-दरबान भी हों और आपके अपने व्यक्तित्व की लड़ाई भी चलती रहे, यह एक साथ तो नहीं हो सकता। अपना रास्ता औरतों को खुद तय करना होगा और सारे विद्रोह के लिए उसे दान की सामग्री से व्यक्ति बनने तक की यात्रा पूरी करनी होगी। अधिकार संघर्षरत व्यक्ति को मिलते हैं, समझौता-परस्तों को नहीं। आज अफसोस इस बात का है कि औरत 'व्यक्ति' की जगह 'व्यंजन' बनकर रह गई है। व्यंजन की नियति व्यक्ति जैसी हो ही नहीं सकती। आज लड़की की सारी शिक्षा-दीक्षा, हाव-भाव, आचार-विचार केवल विवाह के बाजार से अधिक से अधिक मूल्य लगवाने के लिए एकत्र किये जाते हैं। ठीक वैसे ही, जैसे ग्राहक को लुभाने के लिए दुकानों पर व्यंजन सजाकर रखे जाते हैं। ये लड़कियां खुद भी अपने आपको बाजार में वैसे ही पेश करती हैं, जैसे वे बिकने की चीज हों। यह हमारे सतही सोच का नतीजा है। आख़िर व्यंजन की तरह कब तक परोसी जाती रहेंगी हम औरतें? प्रेम भी तो अब वैसा नहीं रहा, जैसा पहले कभी हुआ करता था। अब कहां है वैसा राम, जो समुद्र लांघकर अपनी सीता को वापस ले आए। आज तो हाल यह है कि तू चली गई, अच्छा ही हुआ, मैं दूसरी ले आऊंगा।

ऐसी स्थिति में क्या साहित्य, प्रचार–प्रसार के माध्यम और शिक्षाविदों पर एक अहम दायित्व नहीं आ जाता?

आता क्यों नहीं, पर उन सबका भी तो बुरा हाल है। कहते हैं, पढ़ाई में अब सेक्स एजुकेशन भी शामिल की जायेगी। संयम से रहने की शिक्षा तो देते नहीं, इसकी शिक्षा देंगे ... आजादी की लड़ाई में कितने ही लोगों ने बलिदान दिया। उसके सामने जीवन के सुनहरे सुखद सपने नहीं थे। आजादी ही उनके लिए सपना थी। जब वे खुद जलकर भस्म हुए तब आजादी मिल सकी। हम लोगों को जलकर आज अपनी मानसिक आजादी को पाने के लिए लड़ना होगा। बिना लड़े, बिना संघर्ष के कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है।❑

काशी में महादेवी

श्याम बिहारी श्यामल

"क्या नाम है तुम्हारा ?" वाणी में कोमलता, माधुर्य भी। भावपूर्ण मुखमंडल पर सरल-तरल स्नेह और आंखों में अपनापन के चमकीले भावों का अद्‌भुत संगम। सिर झुकाये चौखट के पार खड़ी वह पूछ रही थीं।

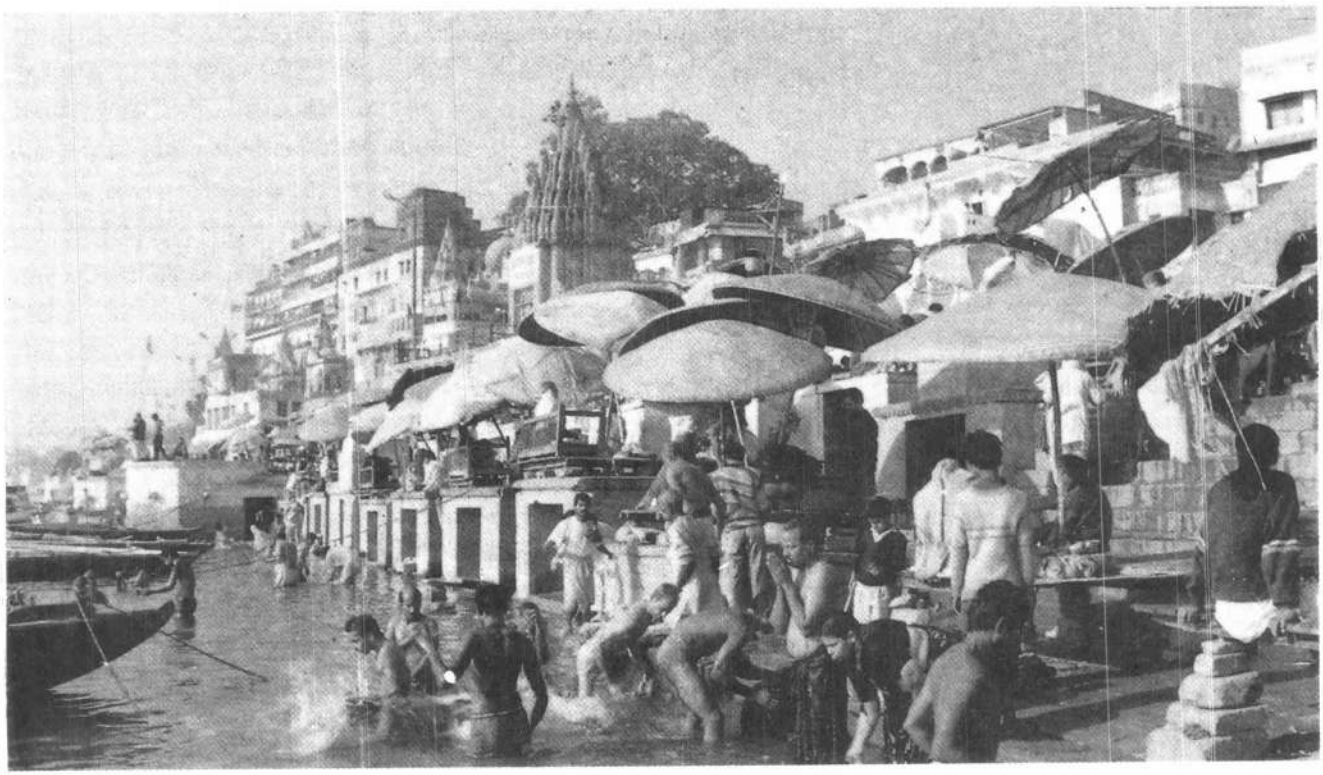
"हम्मर नाम तऽ चेखुरा है! आपन परिचय?" उसने किंचित संकोच किंतु सम्मान भाव से स्वागती मुद्रा में भीतर आने का आग्रह से भरा संकेत दिया।

"मैं प्रयाग से आ रही हूं ...जयशंकर प्रसाद से मिलने...! हैं कि नहीं? ...अरे हां, तुमने जो पूछा वह तो बताऊं...नाम मेरा महादेवी है!"

चेखुरा अभिभूत हो गया। पलक झपकते ही विद्युत-गति से सामने निकट आ गया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। वह चौंककर रह गईं। पीछे खिसकने का उपक्रम करती बोलीं, "अरे...अरे...भैय्या!...यह क्या!...तु-तु...तुम मुझे जानते हो क्या?...क-क कैसे?...चलो! आगे चलो! बताओ..."

"आप कवि हई, ई बात भला केऽ ना जानत हौ! इहां विनोदशंकर व्यास, रायकृष्ण दास से लेके बिहार वाले शिवपूजन बाबू तक सब लोग काल्हे तऽ दिन भर जमल रहन...बार-बार आपके चर्चा होत रहल! कौन अइसन दिन होई जौन दिन इहां आपलोगन के चर्चा ना होला!...आप भीतर तो...।"

वह अचकचाकर उसका मुंह ताके जा रही थीं। यों तो वह उसे पहली ही दृष्टि में समझ गई थीं कि यह सुंघनी साहु परिवार का भृत्य है किंतु उसकी यह बोली-बानी और अतिथि-स्वागत मुद्रा जब क्रमशः सामने आने लगी तो अब यह महसूस होने लगा कि यह सामान्य भृत्यों से कुछ भिन्न है। महादेवी को गहराई से यह अनुभूत होने लगा- इसे कहते हैं संगत का प्रभाव! चंदन तो अपने ऊपर हमला करने वाली कुल्हाड़ी को भी सुवासित कर डालता है। यह तो सर्वथा स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति महाकवि जयशंकर प्रसाद के निकट रह रहा हो उसमें चाहते-न-चाहते इतना ज्ञान-प्रभाव तो उत्पन्न हो ही जाएगा कि उसके आचार-व्यवहार सुधर जाएं। भृत्य तो सबसे करीबी साथी होता है! हर बात का साक्षी भी। यही तो वह होगा जिसने कामायनीकार के मुखमंडल पर प्रलय-लीला का सृजन-पूर्व संपूर्ण आलोड़न-भूकंपन भी देखा होगा और सृजन-काल की रचना-पीड़ा भी! मनु की आंखों से ढुलकते चमकते मोती भी देखे होंगे और कवि के मुखमंडल पर श्रद्धा-इड़ा के समस्त दोलित आंदोलित भाव-उद्वेलन भी। महाकवि की महाछवि के समानांतर वह उनके उस कमजोर मानव-रूप का भी द्रष्टा होगा जो हममें से किसी के लिए



छायांकन : सर्वेश

सदा-सदा अज्ञात-अल्पज्ञात ही रहेगा। हां, वह भृत्य ही तो है जो कवच-कुंडल पहनाते समय नायक की थरथराती काया तक का इकलौता साक्षी बनता है!...

उन्हें भावपूर्ण मौन के साथ अपनी ओर ताकती देख वह श्रद्धा-संकोच से पिघला जा रहा था। कुछ पल बाद वह सहज हुआ और उन्हें साथ लेकर बैठकखाने में आ गया। उसी क्षण पीछे से विनोदशंकर व्यास का नाति प्रखर स्वर गूंजा, ''अरे!...वाह!...वाह! महादेव! महादेव!...''महादेवी ने चौंककर देखा तो उनके मुख पर मुस्कान आए बगैर नहीं रह सकी। मोटे पाढ़ की साड़ी के पल्लू से मुंह ढंककर हंसती हुई वह कभी चेखुरा तो कभी आगंतुक की विशिष्ट स्वागत मुद्रा देखती रहीं। दोनों हाथ आकाश की ओर उठाये विनोदशंकर व्यास विशिष्ट बनारसी शैली में अभिवादन करते बैठकखाने की ओर ही आ रहे थे,''...महादेव!.. .महादेव!!''

समीप आते ही उन्होंने दोनों हाथ जोड़े भरपूर झुककर अभिवादन करते हुए कहा, ''महादेव बाबा विश्वनाथ की काशी नगरी में हिंदी की महादेवी का स्वागत है! स्वागत है!...देखिए मेरी स्मृति कितनी सटीक है! आपकी तस्वीर पहले कहीं छपी देखी है उसी से आपको अभी दूर से ही पहचान गया. .. बहन, आप यहां आयीं कब? खड़ी क्यों हैं? बड़े भाई के घर में आई हैं और अतिथि की तरह चौखट के बाहर खड़ी हैं!...आसन तो ग्रहण करें पहले!''

महादेवी पल्लू में मुंह को हल्का ढंके लगातार हंसती रहीं। उन्हें विनोदशंकर व्यास की यह शैली पर्याप्त रोचक लगी, ''विनोद जी, अब मैं समझी...''

''क्या बहन?''

''मैं लंबे समय से उलझन में थी... लेकिन आज यहां अभी-अभी बात को समझ सकी हूं....''

''बताइये तो! भला, क्या?...''

''यही कि प्रसाद जी आखिर नाटक की भाव-मुद्रा पाते कहां से हैं! आज अभी समझी हूं कि तमाम दृश्य तो हमारा विनोद भाई पहले उनके सामने उपस्थित कर देता है...एकदम संपूर्ण अभिनय-दक्ष मुद्राओं के साथ- उन्हें तो इसे सिर्फ लिपिबद्ध ही करना पड़ता होगा।...'' स्वर में गरिमा से भरी चुहल और स्नेह से छलछलायी चिकोटी भी। बाहर से करीब आते रायकृष्ण दास ने दूर से ही ठहाका लगाया जिस पर सभी हंसने लगे।

महादेवी तख्त से उठती हुई आदर के साथ रायकृष्ण दास का अभिवादन करने लगीं तो वे वहीं से बोले, ''नहीं, नहीं! उठना नहीं! तुम तो साक्षात सरस्वती हो बहना! तुम्हें तो अभिवादन-कष्ट से हमेशा के लिए मुक्त करना ही उचित होगा...''

वह पूर्ववत् तख्त पर आराम से बैठ गईं। पास ही दूसरी कुर्सी की ओर रायकृष्ण दास ने हल्की-सी दृष्टि डाली तो विनोदशंकर व्यास ने उठकर उन्हें ससम्मान स्थान-ग्रहण कराया। रायकृष्ण दास बोले, ''व्यास, महादेवी को कुछ खिलाया-पिलाया भी या तुम भी अतिथि-श्रेणी में ही डटे हो? लगता है, बाबू साहब अब कुछ विलंब से ही लौटेंगे!...''

''पता नहीं आज किस ओर सैर को निकले हैं....!'' विनोदशंकर व्यास ने जिज्ञासा मिश्रित चिंता झलकायी।

''मुझे पता चल गया है! वही तो कह रहा हूं न!...अभी आ रहा था तो रास्ते में आगा हश्र कश्मीरी मिल गए...उन्होंने ही पहले मुझे देख लिया और मार्ग पर बीच में आकर गाड़ी को रोकवा दिया...मैं उन्हें देखकर गाड़ी से उतरने लगा तो छूटते ही उन्होंने तंज किया जिससे पता चला कि बाबू साहब सारनाथ की ओर निकले हैं और घोड़ागाड़ी पर उनके साथ गोविंदवल्लभ पंत भी बैठे थे...''

महादेवी ने स्वाभाविक आवेग से पूछा, ''गोविंदवल्लभ जी भी काशी में पधारे हैं क्या?''

''हां! सप्ताह भर से तो यहीं है! हुकूमत को तो उनके अभियान का कत्तई कुछ पता नहीं होगा किंतु हमें तो पूरी जानकारी है...।'' विनोदशंकर व्यास ने अपनी आवाज को गोपन-भाव से नियंत्रित करते हुए बताया।

''हुकूमत को पता नहीं है... यानी वे इन दिनों किसी विशेष आंदोलनात्मक गतिविधियों में जुटे हैं क्या ?'' महादेवी की आंखों में सहमी हुई जिज्ञासा हुलक रही थी जिसे देख रायकृष्ण दास मुस्कुरा दिए।

''हां, क्यों नहीं! गोविंदवल्लभ तो असहयोग आंदोलन में जुट ही गए हैं! इसी के लिए उन्होंने कालिज छोड़ा और अब वे मेरठ की 'व्याकुल भारत नाटक-कंपनी' में भर्ती हो चुके हैं... इसी के निमित्त वे बार-बार काशी आ भी रहे हैं... बाबू साहब से उन्हें इस मामले में सहयोग-समर्थन लगातार मिल रहा है! असल में जनचेतना को प्रज्वलित करने व प्रचंड बनाने के लिए यह कंपनी



जयशंकर प्रसाद

देश में कुछ विशेष नाटकों का प्रयोग करना चाह रही है ताकि स्वतंत्रता के इस संग्राम को प्रभावी आकार दिया जा सके...'' विनोदशंकर व्यास ने समझाते हुए आगे बताया। ''...यह कपंनी पारसी नाटक कंपनियों के दूषित भाव-प्रभाव को तोड़ना चाहती है इसीलिए इसके समानांतर व विपरीत, सभी अर्थों में सार्थक-सोद्देश्य मंचनों को संभव बनाने के प्रयास में जुट गई है।...''

''यह तो बहुत अच्छी बात है।... मुझे यह सब जानकर संतोष का अनुभव हो रहा है..! '' महादेवी ने संजीदगी से उनकी बातों का अनुमोदन किया।

''... 'व्याकुल भारत नाटक-कपंनी' की टीम दिल्ली, मेरठ और लखनऊ होती हुई बनारस भी पहुंचेगी... गोविंदवल्लभ जी उसी की पृष्ठभूमि की रचना में जुटे हैं...'' विनोदशंकर व्यास ने आगे बताया।

चेखुरा भीतर से आया तो उसके हाथ में एक छलकता हुआ पीतल का कठौत था। सबने लगभग एक साथ उसे एक नजर देखा फिर चर्चा में मशगूल हो गए। कुछ पल वह खड़ा रहा। कठौत थामे, चुपचाप। उसने सबको मगन देखकर महादेवी के पांव के पास कठौत ले-जाकर रख दिया। उन्होंने देखते ही बात समझ ली और सिर हिलाकर मना करने लगीं। चल रही बातचीत में बाधा न पहुंचने देने का इशारा करती, उन्होंने चेखुरा को कठोती हटाने का सस्नेह संकेत दिया। जवाब में वह खिसककर नीचे फर्श पर ही जम गया और सबकी ओर ताकता हुआ चर्चाएं सुनने लगा।

''आगा हश्र कश्मीरी भला क्या तंज कर रहे थे भाई साहब? जरा बताइये तो इसका भी भेद

हम खोलें...।'' विनोद शंकर व्यास ने रायकृष्ण दास की ओर उन्मुख होते हुए पूछा।

महादेवी की जिज्ञासा गहरा गई और उसमें एकाग्रता का रंग टहक हो गया। रायकृष्ण दास ने बताया, ''...लंगड़ा हाफिज मस्जिद के पास उन्होंने मेरी घोड़ा-गाड़ी को रुकवाकर बहुत संजीदगी से मुझे बताया कि लगता है तुम्हारा साव आज कहीं लंबी सैर पर निकला है.. अपनी घोड़ा-गाड़ी पर कुछ खाने-पीने का इंतजाम भी रखे हुए था और साथ में किसी बाहरी मुच्छड़ नौजवान को भी बिठाये था... मेरी ही तरह लकदक सफेदी झाड़े था मुच्छड़ भी...लगता है यह साव के दरबार का नया दरबारी बढ़ा है.. यानि कि अब कुछ दिन यह भी नरियरी बाजार वाले दरबार की रौनक बढ़ाएगा. ..!'' वे मुस्कुराकर आगे बोले, ''...आगा हश्र कश्मीरी साहब की इस जरा-सी बात से ही मैं समझ गया कि गोविंदवल्लभ जी के ही साथ बाबूसाहब कहीं निकल गए हैं... और लंबी सैर का मतलब कि हद से हद सारनाथ गए होंगे और क्या!... और तो कहीं दूर जाने का कोई कार्यक्रम था ही नहीं!''

''बस!... आगा हश्र कश्मीरी मिले और मात्र यही चिनगारी छिटकाकर रह गए! नहीं ऐसा कैसे हो सकता है! ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि वे हममें से किसी से मिलें और चर्चा छेड़ने के बाद बगैर कोई बड़ा अंगारा उगले चले जाएं। !'' विनोदशंकर व्यास ने सिर को वृक्ष की तरह हिलाया।

''ऐ भाई! एक तो वह आदमी बहुत वरिष्ठ है.. दूसरे यह कि वह बाबू साहब के नये बनते रुतबे से चिढ़ा हुआ है.. तीसरे यह कि उसे जाने-अनजाने प्रतिदिन नरियरी बाजार में उसी गद्दी के सामने से अकेले हाथ में छड़ी डुलाते गुजरना पड़ता है जहां बाबूसाहब अपनी मंडली के साथ जमे रहते हैं... मिठाई-ठंडई और पान-पत्ती का दौर पर दौर चलता रहता है... ऐसे दौर पर दौर देख उसे दौरे पर दौरा आने लगता है! आसपास से गुजरता हुआ यह शख्स बाबूसाहब का रुतबा देख हर बार झुलसकर रह जाता है... ऐसे में वह कुछ न कुछ चिनगारी और राख तो उगला ही करेगा न! इसकी ज्यादा चर्चा करने की जरूरत नहीं है!...''

मौका देखकर चेखुरा ने कठौत को खिसका दिया और अचानक महादेवी के दोनों पांव उसके जल में डाल दिया। वह सकुचाती हुई शांत बैठी रहीं। विनोदशंकर व्यास ने उसकी ओर ताकते हुए पूछा, ''क्यों बेटे। अपना काम कर ही डाला न? बहुत पक्के निश्चय वाले बच्चे हो तुम!''

''बच्चा! क्या अब भी यह बच्चा ही है!'' रायकृष्ण दास ने हंसकर कहा।

''हां, कोई भी छोटा अपने बड़ों के आगे तो जीवन भर बच्चा ही रहता है!'' वे चेखुरा की ओर ताकते हुए आगे बोले, ''क्यों बेटे, कठौती में कैसा जल था?''

''चाहे जैसा भी था अब यह गंगाजल में बदल ही गया है!'' चेखुरा के स्वर में श्रद्धा भरी थी। वह आगे बोलता चला गया, ''निषादराज को तो अपने बजड़े को स्त्री हो जाने से बचाने का एक बहाना खोजना पड़ा था...उन्होंने अहिल्या का नाम लेकर कितना-कितना प्रपंच बांधा तब उन्हें मिला भगवान के चरण धोने का स्वर्णिम अवसर...! मैं कितना सौभाग्यशाली हूं...मुझे तो ज्ञान की महादेवी के चरण पखारने के लिए न किसी सच्चे-झूठे बहाने की आवश्यकता पड़ी न किसी छल-प्रपंच की!. ..फिर मैं भला क्यों चूकता!''

रायकृष्ण दास ने आंखें मूंदकर अपने अंदर अकस्मात छलछला आए आनंद-भावों में तृप्तिकर डुबकी लगाते हुए कहा, ''...यह दुर्लभ दृष्टि-अनुभूति और उसकी ऐसी विरल अभिव्यक्ति जयशंकर प्रसाद का कोई संगी-साथी ही प्राप्त-प्रदान कर सकता है!'' वे महादेवी की ओर उन्मुख होकर आगे बोले, ''तुम्हें एक बात मैं बता दूं..''

महादेवी ने ससंकोच जिज्ञासा से दृष्टि उठायी तो वे आगे बोले, ''.. तुम्हारे चरणों को पखार रहा यह लड़का भक्ति-मार्ग का नहीं शक्ति-मार्ग का धावक है!...''

''तात्पर्य ?''...

शांत मधुर स्वर में भी जिज्ञासा का तीव्र विद्युत-वेग।

''...यह चेखुरा ही है जिसने बाबूसाहब जैसे गुरु-गंभीर व्यक्ति को ग्रंथों-शास्त्रों के गगनचुंबी मनन-शिखर से नीचे उतारकर समकाल-संघर्ष की भूमि पर ला खड़ा किया है...।''

अपनी चर्चा बंद नहीं होती देख चेखुरा तमककर उठा और वहीं खड़ा हो गया। उसके मुख मंडल पर बालकों जैसी सकुचाहट और ठुनक थी, ''...अब मेरी बात क्यों होने लगी यहां पर... इस मामले को रोकिए और...''

विनोदशंकर व्यास ने फुलझड़ी छोड़ी, ''.. . काहे लजात हउवा! जौन-जौन करम करबऽ ओकर चरचा तऽ होखबे करी नऽ!... तोहार जे गुण अउर विशेषता हौ ओकर बात तऽ...''

वह झमकता पांव पटकता भीतर चला गया। रायकृष्ण दास ने अपनी बात को आगे बढ़ाया, ''. .. यह लड़का मामूली नहीं है... अंग्रेजों के विरुद्ध इसके सीने में ज्वालामुखी भरा हुआ है... क्रांतिकारियों से संपर्क रखता है और मौके पर उनकी ऐसी सहायता करता है कि इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता...!''

''अरे भैया, सीधी बात तो यह कि इस संग्राम का यह स्वयं एक लड़ाकू सिपाही है!'' विनोदशंकर व्यास ने अपनी ओर से जोड़ा और आगे बोले, ''... इसने बाबूसाहब जैसे अध्ययन-मननशील मनुष्य के मन में भी ऐसे भाव जगा दिए हैं कि अब वे भी बात-बात में अंग्रेजी शासन के प्रति चिनगारी छिटकाने लगे हैं...''

''मैं तो कहता हूं कि हमलोग अगर लगातार संपर्क में न रहें और बाबूसाहब को कुछ दिन चेखुरा के ही भरोसे छोड़ दें तो यह भी संभव है कि एक दिन जब यहां आएं तो समूचा दृश्य-परिदृश्य ही उलटा हुआ देखने को मिले...''

वे कहते-कहते रुके तो विनोदशंकर व्यास ने व्यग्रता दिखाते हुए कहा, ''...आप भैया, वाक्य अधूरा छोड़कर रुक जाते हैं तो जान हथेली पर आ जाती है... जिज्ञासा को ऐसे न छेड़ा कीजिये...''

रायकृष्ण दास ने मुस्कुराते हुए कहा, ''भई, कला-क्षेत्र का जीव हूं.. कला तो जिज्ञासा, भंगिमा, भाव और यहां तक कि मन के घावों तक को छेड़ने का ही काम करती है...!''

''देखिये बात को पूरा तो कीजिये...'' विनोदशंकर व्यास व्यग्र हो उठे। बहुत ध्यान से बातें सुन रही थीं महादेवी भी। उनकी ओर दृष्टि लाते हुए रायकृष्ण दास ने गंभीर मुद्रा बनाते हुए कहा, ''... कुछ दिन हम लोग बाबूसाहब को चेखुरा के भरोसे छोड़ दें तो यह हो सकता है कि एक अंतराल के बाद जब हम यहां आएं तो हिंदी के महाकवि जयशंकर प्रसाद हाथ में लेखनी पकड़े कुछ लिखते हुए नहीं, बल्कि कंधे पर बंदूक थामे कूदते दिख जाएं! यह दृश्य हमारे लिए ही नहीं पूरे हिंदी संसार के लिए कितना दर्दनाक होगा, क्या यह अब बताने की जरूरत रह गई है?''

एक साथ सभी ठठा पड़े। अब तक सकुचायी बैठी महादेवी हंसते-हंसते लहालोट हो गईं। दोनों के चुप हो जाने के बाद भी वह हंसते-हंसते परेशान-सी होती रहीं तो रायकृष्ण दास ने फिर मुंह खोला, ''वैसे बाबूसाहब का बंदूक थामे कूदना दृश्यगत दृष्टि से हमारे लिए कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं होगा...आप लोगों के लिए चाहे भले



ऐसा हो या न हो..."

विनोदशंकर व्यास ने फिर वैसी ही व्यग्रता से उनकी ओर देखा जिस पर ध्यान देते हुए उन्होंने तुरंत अपनी बात आगे पूरी की, "भाई जयशंकर प्रसाद तो बनारस से बाहर वालों के लिए न केवल और केवल लेखनीधारी सुकवि हैं...कोमलकांत पदावली के रचयिता! हम तो उन्हें अखाड़े में मुगदर भांजते और जोड़ा आजमाते ही अक्सर देखते हैं.. उन्हें लिखते हुए हमने भला कब देखा!...हम तो उन्हें जब देखते हैं पुष्टकाय पहलवान ही देखते हैं... तहमद और गमछे में...बाहों पर उभरी हुई दो छलकतीं मछलियां और एक समूचा भव्य आलोकित पाताल लोक छुपाये पृथ्वी जैसा सीना. ..मुगदरधारी को बंदूकधारी के रूप में देखने में भला कितना अंतर हुआ?"

महादेवी ने अपनी उलझन खोलते हुए कहा, "मैं भीतर ही भीतर अभी बहुत पछतावा महसूस कर रही हूं...।"

"पछतावा? क्यों...? भला किस बात के लिए?..."

"यही कि मैं अगर कुछ ही घंटे पहले यहां पहुंच गई होती उन दोनों महानुभावों के साथ मुझे भी सारनाथ जाने और वहां भारत के प्राचीन इतिहास की झलक पाने का दुर्लभ मौका मिल जाता! जयशंकर प्रसाद के साथ पुरावशेषों को देखने-समझने का अवसर तो दुर्लभ ही कहा जाएगा न!"

"सो तो है!...लेकिन आप ठहर जाइये बाबूसाहब से आग्रह करिएगा...वे कल भी आपको लेकर वहां जा ही सकते हैं..."रायकृष्ण दास ने ढांढस बंधाया।

इसी बीच, चेखुरा भीतर से आया तो इस बार उसके हाथ में बड़ी-सी एक थाली थी। पीतल की, मध्यम आकार वाली परात जैसी। खाद्य पदार्थों से भरी हुई। रायकृष्ण दास ने उसे देखते ही पूछा, "का इयार, ताजा मगदल बनल हौ काऽ?"

"बनल रही तऽ तजे नऽ रही? कहीं बसियो बनऽला काऽ?"

चेखुरा की बात पर फिर हंसी का स्रोत फूटा। रायकृष्ण दास भी देर तक हंसते रहे। अपने सामने इतनी बड़ी भरी थाली रखी जाती देख महादेवी बोलीं, "...इसके साथ भी कहीं निराला भैया वाला राज्यादेश ही तो नहीं नत्थी है?... - कि अतिथिदेव को अपने आगे प्रस्तुत संपूर्ण नैवेद्य ग्रहण करना ही होगा...नहीं तो...!"

सबके चेहरों पर फिर मुस्कान चमकी। चेखुरा ने हाथ जोड़कर कहा, "...आप पहले ग्रहण कर लें तो फिर यह हम सबके लिए यूजा का पवित्र प्रसाद बन जाएगा..."

"यह तो यों भी जयशंकर का प्रसाद है...।" महादेवी की वाणी से श्रद्धा भावना फैल रही थी।

"...आपके स्वीकार-संस्पर्श से यह महादेवी का प्रसाद हो जाएगा..." विनोदशंकर व्यास ने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़े विशिष्ट अंदाज में कहा तो वह बोलीं, "आप स्थान ग्रहण करें...यहां रायसाहब जैसे मेरे अग्रज भी हैं...जब मैं अपने अग्रज के घर में हूं तो मेरे साथ कृपया अतिथि वाला व्यवहार नहीं हो !...पहले राय साहब को...।"

रायकृष्ण दास कहां चूकने वाले थे, पलक झपकते दहला मारा, "बहन के लिए भाई का घर तो नितांत अपना है ही, बहन होने के नाते अतिथि-भाव पाने का उसका अनंत अधिकार भी सुरक्षित है!"

महादेवी ने सिर हिलाकर इस तर्क-युद्ध में अपनी हार स्वीकार कर ली! बोलीं, "...येनकेन प्रकार आखिर जीत पर तो भाइयों का ही अधिकार होना चाहिए न! चलिए स्वीकार है!..."

सारनाथ का विश्व प्रसिद्ध बौद्ध स्तंभ। गोविन्दवल्लभ पंत ने दृष्टि को क्रमशः ऊंचा करते हुए कहा, "बाबू साहब, यह स्तंभ तो जब बना होगा उस समय इसके साथ चाहे जो दृष्टिकोण जुड़ा रहा हो आज तो यह सचमुच बौद्ध धर्म की बुलंदी का सार्थक प्रतीक बन गया है!..."

जयशंकर प्रसाद ने कहा, "...धर्मों की बुलंदी! असल में लोग जिस तरह धर्मों को धारण कर रहे हैं इससे मुझे अब घनघोर चिंता होने लगी है!..."

गोविन्दवल्लभ पंत ने अपनी जिज्ञासु दृष्टि उनके मुखमंडल पर जमा दी। वे आगे बोले, "धर्म

को धारण करने का तब क्या अर्थ रह जाता है जब समाज के अच्छे-भले प्रमुख लोग तक उसकी शिक्षा को ही ठेंगे पर चढ़ाए फिर रहे हों...! प्रश्न यह भी है कि आखिर अपने उद्गम देश में बौद्ध धर्म की आधार भूमि क्यों खंधर गई?''

''इस पर तो मैं आपका ही दृष्टिकोण जानना चाहूंगा...।''

''मेरे दृष्टिकोण का मामला नहीं है! इस पर तो बार-बार मनन-मंथन होना चाहिए...बल्कि धर्म के संपूर्ण प्रश्न पर गहन विमर्श होना चाहिए...! किसी भी धर्म की शिक्षा को देख लीजिए... सबमें प्रेम, दया, सहिष्णुता, करुणा का संदेश निहित है लेकिन इनका पालन कहां किस अनुपात में हो रहा है! लोग धर्म परिवर्तन जब करते हैं तो मेरे लिए यह समझना कठिन हो जाता है कि वे ऐसा आखिर क्यों कर रहे हैं! भला वह ऐसा कौन धर्म है जहां उत्तम शिक्षा की कमी है! शब्दावली में भले कुछ अंतर दिख जाए, सबमें तो कमोबेश एक जैसी शिक्षा है! इसीलिए मुझे तो यह लगता है कि धर्म-परिवर्तन प्राय: हर बार गैर धार्मिक कारणों या किन्हीं विवशताओं के तहत ही संभव किया-कराया जाता है...।''

गोविन्दवल्लभ पंत ने गगनचुंबी स्तंभ को लक्ष्यकर पूछा, ''...यह स्तंभ वस्तुत: किस निमित्त बनवाया गया लगता है?''

जयशंकर प्रसाद ने कहा, ''... महात्मा बुद्ध उरुवेला से चलकर यहीं पहुंचे थे। यहीं उन्होंने पांच ब्राह्मण संन्यासियों को चुना और उन्हें अपना प्रथम उपदेश दिया! बौद्ध दर्शन में इसे 'धम्मचक्र प्रवर्तन' नाम से अभिहित किया जाता है। बौद्ध संघ में सर्वप्रथम प्रवेश यहीं से शुरू हुआ! एक यह बात आपके ध्यान में है कि नहीं?...''

''...कौन-सी बात?''

''अजातशत्रु ने अपने पिता मगध के सम्राट बिम्बसार की हत्या करके सत्ता प्राप्त की थी और साम्राज्यवादी नीति अपनाते हुए मगध की सीमा का विस्तार करते हुए काशी व वज्जि संघ पर अधिकार कर लिया था। अब विकट विरोधाभास देखिये- सत्ता पाने के लिए सम्राट पिता की हत्या करने वाला अजातशत्रु एक श्रद्धालु बौद्ध अनुयायी भी दिखने का प्रयास करता रहा! उसी ने 483 ईसा पूर्व अपनी राजधानी राजगृह की सप्तवर्णी गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन कराया था। इसमें भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को सुत्तपिटक व विनयपिटक के रूप में लिपिबद्ध किया गया था. ..'' जयशंकर प्रसाद ने समझाने वाले अंजदाज में आगे कहा, ''अब आप खुद देखिये कि ऐसे विरोधाभास सैकड़ों साल बाद आज भी कैसे भ्रम या भाव जगा रहे हैं! ...भाई, जो सत्ता के लिए अपने पिता तक की हत्या करने में भी नहीं हिचके उससे अंतत: कैसी नैतिकता की आशा की जा सकती है? ऐसा व्यक्ति भी अगर तमाम गोरखधंधों के साथ-साथ धर्म-भाव में भी डूबा दिख रहा हो तो आप स्वयं समझ लीजिये कि धर्म के नाम पर यह कैसा घोर घनचक्कर चलता रहा है! इसका तात्पर्य तो यही हुआ न कि धर्म शुरू से ही शासक वर्ग के लिए मुखौटा बनता आया है! प्रजा को भ्रम में डाले-उलझाये रखने का एक अचूक उपाय भर! ...यही सब देखकर मेरी धारणा इन दिनों काफी डगमगा रही है!''

''धारणा का डगमगाना वस्तुत: चिंतन के सतत् गतिशील होने का ही प्रमाण है! यह जब स्थिर हो जाए तो इसका अर्थ केवल और केवल यही होगा कि जल का प्रवाह ठहर गया है! प्रवाह रुक जाने पर एक अंतराल के बाद जल का सड़ना ही अवश्यंभावी है! विचार का भी यही गति-क्रम है! धारणा का हिलना-डुलना ही अच्छा है, यह अगर थम जाए तो इसका इकलौता अर्थ यही होगा कि डाल अब हरी नहीं रही! ...सूखकर डंठल में बदल गई! अपनी बात वे कह तो गए किंतु ज्यों ही यह ध्यान आया कि वे किससे बोल-बतिया रहे हैं, तत्काल स्वत: संकोच-भाव से भर गए गोविन्दवल्लभ पंत। इस द्रुत मनोभाव-परिवर्त्तन को एक झलक में सर्वांश ताड़ गए जयशंकर प्रसाद। बोले, ''...मैं आपसे सहमत हूं! सचमुच आपने बहुत सही बात बतायी...''

''हां! ...और मेरा साहस देखिये कि मैंने बिना किसी डर-भय के यह ज्ञान-प्रदर्शन स्वयं महाकवि जयशंकर प्रसाद के सामने किया! आपने यह भी देखा होगा कि यह जोखिम उठाते हुए न मेरी जबान लड़खड़ायी न देह थरथरायी! यह गुरु ज्ञान मैंने कैसे भले-भले दे डाला, देखा न आपने...!''

''...मेरे युवा मित्र, आपने बात-बात में बहुत रसीला-चुटीला व्यंग्य झलका डाला! मन प्रसन्न हो गया! इतिहास की धूल उड़ाता हुआ मैंने जो गाढ़ा ऊब उपस्थित कर दिया था, आपके वेगपूर्ण व्यंग्य के हास्य-भाव ने इसे एक झटके में उड़ा दिया!. ..भई वाह!...आनंद का अनुभव हुआ। इसका अर्थ तो यह कि आपमें राजनीतिक गुणों-रुचियों के अतिरिक्त लेखकीय मेधा-प्रतिभा-क्षमता भी निहित है! आपको कुछ लिखने का अभ्यास डालना चाहिए! समय नष्ट करना ठीक नहीं!...'' जयशंकर प्रसाद ने उत्साह जगाते हुए कुछ यों कहा कि उनका संकोच भाव क्षण भर में जाता रहा।

सरायगोवर्द्धन पहुंचते-पहुंचते अंधेरा घिर आया था। आहाते में गाड़ी के प्रवेश करते ही चेखुरा लपककर समाने आ गया, ''... प्रयाग से एक दीदी आयल हइन! महादेवी जी...।''

गाड़ी से जल्दी-जल्दी उतरते जयशंकर प्रसाद ने पूछा, ''कुछ जलपान वगैरह भइल कि ना?''

चिखुरा ने प्रतिवादी स्वर में कहा, ''हमरा इहो सिखावे के पड़ी का?''

भीतर पहुंचते ही उन्होंने सब पर एक-एक दृष्टि डाली और ध्यान से महादेवी को देखने लगे। सभी खड़े हो गए थे। महादेवी भी। जयशंकर प्रसाद ने आश्यर्च भाव प्रकट करते हुए कहा, ''...अच्छा तो महादेवी जो बड़े-बड़ों से सिर चकरा देने वाली कविताएं लिखती है वह अभी इती-सी है...?''

वह सकुचाते हुए समीप आकर अभिवादन के लिए झुकने लगीं तो जयशंकर प्रसाद ने तेज स्वर में बोलते हुए रोक दिया, ''नहीं! नहीं!...तुम्हें किसी के आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं, तुम तो स्वयं नन्ही वाग्देवी महादेवी हो...! लोगों को तो तुमसे आशीष चाहिए! चलो तुम आराम से वहां तख्त पर विराजो! तुम स्वयं को अतिथि कदापि नहीं समझना...यहां किसी औपचारिकता की कोई आवश्यकता नहीं... जैसे जहां जो मन वैसे रहो-करो!...मुझे अगर पता होता कि प्रयाग से मेरी छोटी बहना आ रही है तो मैं तुम्हें वहां बाहर उस दरवाजे पर खड़ा मिलता...तुम्हारे आने तक वहां से जरा भी नहीं हिलता!...होंठ बिचकाकर वे आगे बोले, ''सारनाथ चला गया था!... गोविन्दवल्लभ पंत आ गए हैं न! दो दिनों से वही रट लगाये हुए थे...मैं टालता चला आ रहा था!. ..कल शाम में अकस्मात तय हुआ कि चलकर घूम आया जाए!...''

तख्त पर बैठी महादेवी जयशंकर प्रसाद को विशिष्ट तन्मयता से देखने लगीं। अपलक और सविस्मय। महादेवी की आंखों में जैसे दृश्यबद्ध होने लगे जयशंकर प्रसाद। यह देख उन्होंने पूछा, ''क्या बात है मेरी किसी छपी तस्वीर से मेरा यह चेहरा नहीं मेल खा रहा है क्या?''

सभी हंसने लगे। महादेवी की एकाग्रता अक्षुण्ण बनी रही। जयशंकर प्रसाद ने आगे कहा, ''बहन, विश्वास करो यह तुम्हारा भाई ही है, कोई और नहीं!''

उनकी एकाग्रता अब भी अकम्प रही तो सभी गम्भीर हो गए। वह निर्निमेष जयशंकर प्रसाद को देखे जा रही थीं। दृष्टि में श्रद्धा-सम्मान भी झलक रहे थे और कुछ विरल देखने की गौरवानुभूति के छलकते हुए भाव भी। जयशंकर प्रसाद ने फिर टोका, "...अभी तक जब मैं यह समझ रहा था कि मेरी अनुजा व हिंदी की कवयित्री महादेवी मुझे पहली बार देख रही है तो मैं सामान्य हर्ष ही अनुभव कर रहा था किंतु जैसे ही यह ध्यान आया कि एक चित्रकार की आंखें मुझे निरख रही हैं, मुझे घबराहट होने लगी है..." सभी चुप। महादेवी की भाव-मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं। वे अपनी बात को आगे बढ़ाते चले गए, "...भई चित्रकार की आंखें तो कोई सामान्य निरीक्षण कर नहीं रही होंगी...! ...देखने का भी अपना गहन और वैविध्यपूर्ण विधान है! सबका देखना एक समान कहां होता है। पुष्प-प्रेमी गन्धद्रष्टा होता है। आंखों से तो वह मात्र झलक लेता है, जबकि ऐन देखने के समय उसकी आंखें मुंद जाती हैं और वह यह कार्य नासिका से लेने लगता है!...अर्थात् वह आकृतियों को गन्धों में देखता है! बनिक यानि द्रव्यद्रष्टा! उसे हर चेहरा सिक्कों में बंटा दिखता है! ...संगीतकार ध्वनिद्रष्टा है...वह कानों और हृदय से देखता है अर्थात् उसे हर बार हर जगह कटु-मधुर ध्वनि-तरंगें सूझती हैं! नायक सच्चा मुखद्रष्टा है...वह रूपाकार और सौंदर्य निरखता है!... कवि तो त्रिकालद्रष्टा हुआ... वह देखने का काम बाहरी आंखों से कम, मन-मस्तिष्क व ज्ञानचक्षु से अधिक लेता है... इसीलिए वह साधारण आकृति पर भी समय-संदर्भों के समग्र आगत-अनागत-विगत भाव देख-पढ़ लेता है! साधक भावयोगी ठहरा...उसे किसी भी मुखाकृति पर ध्यान-ज्ञान-योग की व्यग्र तलाश होती है!... और चित्रकार को! उसे तो हर दृश्य या मुखमण्डल रेखाओं और रंगों से सूझता है... जैसे आसमान-ढेर सारा ढरका घोला हुआ नीला रंग! कोई भी पेड़ हरे रंग का गाढ़ा लेप! झाड़ियां यानि गिजमिज रेखाओं का संजाल! चांदनी-शीतलता मिश्रित प्यारे-से रंग की बारिश! असल में चित्रकार कूंची से देखता है! ...तो अपनी बहना तो कवि भी है और चित्रकार भी। जब यह ज्यादा अंतराल तक लगातार मुझे देखे चली जा रही है तो इसका तात्पर्य ही यही कि उसकी चित्रकार आंखें मुझे आड़ी-तिरछी खंचित रेखाओं और रंगों के गहरे-उथले उतार-चढ़ावों में देख रही हैं..."

इस बार महादेवी के मुखमंडल पर संकोचमिश्रित मुस्कान आयी। जयशंकर प्रसाद ने उनके भावों पर ध्यान रखते हुए कहा, "चलो... अब यह विश्वास जमने लगा है कि मेरी बहना अब मुझे दृश्य में नहीं, बल्कि आकार-आकृति में बड़े भाई के रूप में देख रही है! -जान में जान आयी!...मैं तो अभी डर ही गया था कि महादेवी अब लेखनी की बजाय कहीं कूंची न मांग बैठें और कैनवस पर मेरा कोई चित्र न खिंचना शुरू हो जाए!"

सभी बैठ गए। जयशंकर प्रसाद सामने के दूसरे तख्त बैठे थे। सभी शांत। एक छोटे-से मौन अंतराल के बाद विनोदशंकर व्यास संयत स्वर में बोले, "महादेवी की कविताओं की हमलोग चर्चा करते नहीं अघाते ...कितना धाराप्रवाह सृजन कर रही हैं...जबकि मुझे भी आज ही पता चला कि अभी यह विद्यार्थिनी हैं! वेद इनका विषय है!"

जयशंकर प्रसाद बोले, "हां, मैंने भी अभी आकर जब पहली दृष्टि में इन्हें देखा तो मुझे आश्चर्य से अधिक हर्ष का अनुभव हुआ कि हिंदी की यह दुर्लभ प्रतिभा अभी कितनी छोटी है!"

विनोदशंकर व्यास ने कहा, "यह तो आज ही लौटने की जिद कर रही थीं किंतु हमलोगों ने बहुत विनती करके इन्हें रोका है!"

जयशंकर प्रसाद ने सामने दृष्टि उठायी जिसमें स्नेह के साथ ही अब विमर्श की तन्मयता झलकने लगी थी। वह बोलीं, "मुझे कल प्रयाग में कुछ जरूरी काम निबटाना है इसीलिए सोचकर चली थी कि आपके दर्शन कर कुछ ही अंतराल के बाद शाम वाली गाड़ी पकड़कर लौट जाऊंगी, लेकिन यहां आने पर... खैर, अब जब कि आप यहां चले आए हैं, मुझे अब मिलने के बाद प्रयाग के लिए लौट ही जाना चाहिए! अभी काफी देर भी है... मेरे लिए एक ट्रेन देर रात में मिलेगी, उसका सही समय पता कराना होगा... यह पौ फटने से पहले प्रयाग पहुंचा देगी!"

"हां, तो कोई बात नहीं। हमलोग रेलवे स्टेशन चलकर तुम्हें गाड़ी पर बिठाकर ही लौटेंगे! तब तक तुम चाहो तो भीतर जाकर आराम भी कर सकती हो या कुछ साहित्य-चर्चा भी कर ली जा सकती है!"

"नहीं! ठीक है! ...आराम करने आयी भी नहीं हूं! आपके आने से पहले यहां रायसाहब और व्यासजी ने इतना हंसा दिया है कि कोई थकान रही ही नहीं! लौटते समय रास्ते भर पर्याप्त ताजगी भी बनी रहने की पूरी सम्भावना है!" वह बोलकर चुप हो गईं और कुछ सोचने लगीं। जयशंकर प्रसाद बोले, "मैं भीतर से अभी आया...तब तक तुम उधर से कुछ पुस्तक-पत्रिकाएं उठाकर देखो-पलटो..."

विनोदशंकर व्यास तत्काल उठ खड़े हुए और आलमारी की ओर बढ़ गए। उन्होंने समाने दिखे 'इंदु' के दो अंक और 'कंकाल' की प्रति लाकर उनके समक्ष रख दी। कुछ और निकालने के लिए जब दुबारा दीवार की खुली आलमारी के पास पहुंच गए और अस्त-व्यस्त कागजात उकेरने लगे तो महादेवी बोलीं, "रहने दें! आप उद्यम न करें! आवश्यकता ही नहीं...मैं तब तक यह उपन्यास ('कंकाल') देखती हूं..."

रायकृष्ण दास अपनी जगह पर बैठे-बैठे मुस्कुराते रहे। महादेवी ने 'कंकाल' को खोला और बीच से खुले किसी पृष्ठ पर ही जैसे अंतर्धान हो गईं। वह उसमें ऐसी मगन हुईं कि सामने आकर बैठे जयशंकर प्रसाद का काफी अंतराल तक उन्हें जैसे पता ही नहीं चल सका। कुछ देर बाद जब उनका ध्यान गया तो झेंपती हुई बोलीं, "...कविता और नाटक की भूमि पर आपकी जो छवि बनती है वह आपके इस उपन्यास में कहीं दूर-दूर तक नहीं दिखती...क्यों? ऐसा क्यों?...ऐसा कदापि नहीं है कि मैंने इसे अभी यहीं उलट-पलटकर देखने के बाद यह प्रश्न पूछा है...आपके नाम पर यह प्रश्न मेरी जिज्ञासा के भंडार में अभी कुछ दिन पहले से ही सर्वोच्च स्थान पर सुरक्षित था..."

जयशंकर प्रसाद मौन ओढ़े बैठे थे। गाम्भीर्य की ओट में उनके मनोभाव अदृश्य रहे। महादेवी ने कुछ पल गौर से देखने के बाद पुस्तक के पृष्ठ फड़फड़ाते हुए आगे पूछा, "छायावाद का प्रयोगधर्मा कवि गहन भाव-शिखर की ओर का रास्ता बदलकर अब यथार्थ-भूमि तलाशने तराई की ओर तो नहीं उतरने लगा है? ... लगता है प्रेमचंद जी आपको इन दिनों अपनी ओर कुछ ज्यादा ही खींचने लगे हैं...कंकाल में गोस्वामी कृष्णदास का वह संवाद मुझे झकझोर गया है..." कहती हुई उन्होंने पुस्तक का संबंधित पृष्ठ खोल लिया और पढ़ने लगीं, "इसमें गोस्वामी कृष्णदास के मुख से आपने अद्भुत विचार व्यक्त किए हैं- पुरुषोत्तम ने वेदों के अतिवाद का उच्छेद किया बुद्धिवाद का प्रचार हुआ। *गीता* द्वारा धर्म की, विश्वात्मा की, आत्मवाद की विमल व्याख्या हुई। स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनि कहकर जो धर्माचरण के अनधिकारी समझे जाते थे, उन्हें धर्माचरण का अधिकार मिला। साम्य की महिमा उद्घोषित हुई। वह मानव जाति के इतिहास में महापर्व था। पशु और मनुष्य के भी

साम्य की घोषणा हुई। वह पूर्ण संस्कृति थी। उसके पहले भी वैसा नहीं हुआ और उसके बाद भी पूर्णता ग्रहण करने के लिए मानव शिक्षित न हो सके, क्यों कि सत्य को इतना समष्टि से ग्रहण करने के लिए कोई दूसरा पुरुषोत्तम नहीं हुआ। मानवता का सामंजस्य बने रहने की जो व्यवस्था उन्होंने की है, वह आगामी अनन्त दिवसों तक अक्षुण्ण रहेगी।...''

मौन जरा भी नहीं पिघला। महादेवी ने ध्यानपूर्वक जयशंकर प्रसाद की ओर देखते हुए कुछ अंतराल तक प्रतीक्षा की। रायकृष्ण दास और विनोदशंकर व्यास ऐसे चुप-स्थिर बैठे थे गोया वे आदमी नहीं, मूर्ति हों। महादेवी ने विनयी स्वर में पूछा, ''इन दिनों आप विशेष क्या लिख रहे हैं?''

जयशंकर प्रसाद ने कुछ इस तरह मुंह खोला गोया बहुत विवश होकर उन्हें बोलना पड़ रहा हो, ''सबसे पहले तो यह कि प्रेमचंद जी और मुझमें कोई रस्साकशी नहीं चल रही है! ऐसी-वैसी कोई बात कहीं रंचमात्र भी नहीं है! लेकिन कुछ लोग ऐसा बताते हुए तनाव का एक कृत्रिम माहौल बनाना चाह रहे हैं जो सिरे से गलत है! हर लिखने वाले की अपनी प्रेरणा-भूमि होती है और समाज या देशकाल के प्रति अपने विशिष्ट विचार व दृष्टिकोण! लिखते समय अपने वही-वही विचार व दृष्टिकोण आगे-आगे पृष्ठभूमि गढ़ते चलते हैं! हर कलाकार सुन्दर से सुन्दर और सार्थक रचना संभव करना चाहता है! हर लेखक का भी सपना एक सुन्दर समरस समाज रचना ही होता है! ऐसे में किन्हीं दो रचनाकारों में कोई बुनियादी वैचारिक मतभेद होना सम्भव ही नहीं। प्रेमचंद जिस श्रम व निष्ठा से साहित्य का काम कर रहे हैं इसका मोल आने वाली पीढ़ियां अवश्य समझेंगी! वैसे मैं और वे आजकल प्रतिदिन प्रातः दो से तीन घंटे एक साथ रहते हैं...।''

''प्रातः-प्रातः! ऐसा कैसे होता है?''

''वे उधर रामकटोरा से चलकर बेनियाबाग के मैदान में आते हैं और मैं इधर सरायगोवर्द्धन से निकलकर वहां पहुंचता हूं...हमलोग एक साथ बतियाते हुए टहलते हैं! डाक्टर हुबदार सिंह भी अक्सर मिल जाते हैं किंतु हमलोगों के विमर्श को देख कुछ ही देर में किनारा कर लेते हैं! जाते-जाते अपने विशेष स्वर में कह जाते हैं- आपलोग सुबह-सुबह विचार-मंथन कर तपती दुपहरी उपस्थित कर देते हैं! ...प्रातःकाल की ताजा हवाओं के साथ अपने-अपने ताजे विचार भी हम दोनों आपस में विनमित करते हैं! कभी वे मुझसे असहमत होते हैं, तो कभी मैं उनसे। कभी वे मुझे स्वीकारते हैं तो कभी मैं उन्हें। वैसे मैं यह स्वीकारूं कि प्रेमचंद ने सचमुच मुझे विचार के स्तर पर बहुत प्रभावित किया है...वैसे भी वे हमारे अग्रज हैं!..'' जयशंकर प्रसाद ने सम्मान व्यक्त करते हुए बात पूरी की।

चेखुरा ने अकस्मात् आकर बहुत मुलायमियत से पूछा, ''बाबूसाहब, दीदी के लिए भोजन में क्या बनेगा? मेरा मतलब कि वह रात के भोजन में क्या ग्रहण करना पसन्द करेंगी?''

जयशंकर प्रसाद उठते हुए मुस्कुराकर बोले, ''भाई, तुम भी विचित्र जन्तु हो! रुचि जानना चाहते हो दीदीजी का, पूछ रहे हो मुझसे! ...सीधे उन्हीं से क्यों नहीं पूछ लेते?''

चेखुरा झेंपते हुए महादेवी की ओर बढ़ा और जयशंकर प्रसाद उधर आलमारी की तरफ।

महादेवी ने बगैर उसके पूछे ही कहा, ''अलग से कुछ भी नहीं! जो घर में सबके लिए बन रहा हो उसी में मेरा भी कुछ हिस्सा बढ़ाकर बन जाए! बस, और क्या...!''

चेखुरा पीछे मुड़ा और भीतर चला गया। जयशंकर प्रसाद एक लम्बी-सी कॉपी लेकर अपनी जगह वापस आए। सभी चुप थे। वे बोले, ''...तुमने पूछा है कि मैं इन दिनों क्या विशेष लिख रहा हूं!...तो आजकल यही एक बड़ा काम शुरू किया है...।''

महादेवी तन्मय भाव से एक-एक क्षण को जैसे नेत्रों और मानस पटल पर अंकित करती चल रही थीं। वे आगे बोले, ''तुम तो वेद का विधिवत् अध्ययन कर रही हो...मनु-श्रद्धा के कथा-प्रसंगों से अवगत ही होगी...! आर्य साहित्य के जानकार लोगों को पता होगा कि मानव जाति के आदिपुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहासों में बिखरा पड़ा है। मैंने वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानते हुए यह एक महाकाव्य शुरू किया है- *कामायनी* ! तुम चूंकि वेद की छात्रा हो इसलिए तुम्हें ज्यादा कुछ पृष्ठभूमि बताने की आवश्यकता ही नहीं। इसका पहला 'चिन्ता' सर्ग मैंने पूरा कर लिया है!''

''हां, मुझ तक यह सूचना पहुंच चुकी है कि आप इन दिनों मनु-कामायनी को लेकर कुछ बड़ा सृजन कर रहे हैं! यह जानकर हम बहुत गद्गद् हैं! ...'' आवाज मधु की तरह गाढ़ी और मृदुल थी।

जयशंकर प्रसाद ने कॉपी को बगल में रखते हुए कहा, ''चलो, अच्छी बात है कि तुम्हें इसके बारे में पता है...''

''लेकिन इस विषय में मेरी एक गहरी जिज्ञासा है...''

''क्या?...पूछो...''

''इस देश में तो अनेक पौराणिक कथाएं विद्यमान हैं, अनेक ऐतिहासिक प्रसंग जनप्रचलित हैं, जिसमें से कुछ पर तो स्वयं आपने 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'जनमेजय का नागयज्ञ' सरीखे कई-कई यादगार नाटकों की रचना की है... फिर महाकाव्य के लिए आप ऐसी कथा को क्यों ले रहे हैं?''

''इस पर ज्यादा कुछ नहीं बस इतना ही कहूंगा कि मैं महाकाव्य के लिए एक ऐसा कथानक चाह रहा था जो जाति-धर्म-सम्प्रदाय के व्यूहों-विभाजनों से सर्वथा मुक्त हो और सबको अपना-सा जान पड़े! इसी दृष्टि से मुझे आदिपुरुष मनु की यह कथा सर्वाधिक अनुकूल लगी...''

महादेवी ने गहरे सम्मान के साथ किंतु निकट अधिकार जताते हुए कहा, ''... आपके श्रीमुख से इसके कुछ आरंभिक छंद सुनने का सौभाग्य हमें अभी मिल सकता है क्या? मुझे सुनने का बहुत मन है...आप सुना दीजिये...इससे मेरा बनारस आना सार्थक और चिरस्मरणीय हो जाएगा...''

जयशंकर प्रसाद ने महादेवी की ओर स्नेहिल दृष्टि से देखा फिर कॉपी को बगल से उठाकर खोल लिया और पढ़ने लगे- ''हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर...बैठ शिला की शीतल छांह... एक पुरुष भीगे नयनों से...देख रहा था प्रलय प्रवाह!...''

कमरे में सृष्टि का वह संकटग्रस्त प्रलय-काल साकार हो उठा था। भयावह अपार नील जलराशि उफन रही है। चारों तरफ केवल और केवल पानी! पृथ्वी लापता है। कहीं कुछ भी नहीं बचा है। हिमालय के थोड़ा-सा शेष ऊंचे शिखर-भाग पर बैठे हैं मनु...सजल नेत्रों से संपूर्ण विश्व की विनाशलीला का महादंश अकेले झेलते हुए ...उस शिखर से उन्हें नीचे केवल गरजता हुआ पगलाया सृष्टिखोर समुद्र दिख रहा है और ऊपर मूकदर्शक आकाश! ...

महादेवी स्वयं महाकवि के मुख से निर्माणाधीन *कामायनी* का प्रथम सर्ग सुनती हुई अभिभूत हैं। कभी नहीं भूलेंगी महाकवि का यह प्रथम दर्शन और बनारस की यह यात्रा! ❑

(राजकमल प्रकाशन से शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास का अंश)

संस्मरण

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है

यदि ध्यान से देखा जाए तो उनका पूरा जीवन ही संघर्ष का रहा है और उसे उन्होंने बहुत बहादुरी से जिया भी / अदम्य साहस था उनमें / कितनी उनकी कविताएं, भाषण हैं जिनसे लगता है कि कैसे चुनौतियों को स्वीकार करती थीं वे / प्रस्तुत है महादेवी जी के सुख-दुख और जीवन-संघर्ष के साक्षी रहे* स्व. रामजी पांडेय *की निजी अनुभूतियां

समय इतनी तेजी से भागता है, इस बात का अहसास महादेवी जी के न रहने के बाद इन वर्षों में जितना हुआ, इसके पहले कभी भी ऐसा नहीं लगा। उनको नहीं रहे इतने साल हो गए और लगता ही नहीं कि इतने दिन हो गए। लगता है अभी कल की ही तो बात है। विशाल वट वृक्ष जिसके गिरने की कोई संभावना नहीं होती वह भी अंधड़ के सामान्य झोंके में कभी-कभी धराशायी हो जाता है। महादेवी जी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। कोई संघातिक बीमारी नहीं थी कि जिससे यह लगता कि अब नहीं बचेंगी। हां, यह सच है कि इधर कमजोर हो गई थीं, स्पांडलाइटिस और अधिक रक्तचाप ने उन्हें भीतर ही भीतर जर्जर बना दिया था, फिर भी वे ऐसी चुपचाप चली जाएंगी, कभी सोचा नहीं। सारी की सारी बातें उनकी तबियत में अचानक गिरावट का आना, डाक्टरों का अथक परिश्रम कर दवा करना, आत्मीय लोगों की सेवा, मनौतियां, फिर उनका न रहना, रसूलबाद घाट ले जाना और अग्नि को समर्पित कर देना, आंखों के सामने घूमने लगती हैं और उनके साथ बिताए इतने दिनों की अनेकानेक स्मृतियां एक-एक करके याद आती हैं। टूटते हुए सामाजिक मूल्यों से दुखी होकर कई बार कहती थीं, अब जीने का मन नहीं होता। फिर भी जीवन के प्रति बड़ा मोह था उनका। उन्होंने लिखा है –

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है?
जा रहे जिस पथ से युग कल्प उसका छोर क्या है?

कई बार मौत से संघर्ष करते हुए मैंने उन्हें बहुत करीब से देखा है और उस पर उनकी विजय भी। सन 75 में उनके 'थायराइड' का ऑपरेशन हुआ तो उसमें कैंसर निकला। दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक डा. आत्मप्रकाश ने बहुत ही कुशलता से उसका ऑपरेशन करके उसे निकाल दिया और उसे निष्प्रभावी बनाने के लिए बाद में रेडियो आयोडीन पिलाई गई। यह सब क्यों हो रहा है? इस बात की जानकारी हम दो-चार लोगों के अलावा किसी को नहीं थी। वे बार-बार अबोध बच्चे की भांति पूछतीं, "ऑपरेशन के बाद सबके साथ तो ऐसा नहीं होता, फिर यह क्या कर रहे हैं?" मैं कहता डाक्टर का कहना है, ताकि आगे चलकर बोलने में कोई दिक्कत न हो। वे चुपचाप सुनतीं और परमसंतोषी बालक की भांति मान जातीं। वे मान तो जातीं लेकिन भीतर ही भीतर मुझे बहुत बेचैनी होती और एक अपराधबोध भी। मैं झूठ बोल रहा हूं और कहीं कुछ हो गया तो? मेरे मुरझाए चेहरे को देखकर उनकी भी आंखें नम हो जातीं, कोशिश तो वे यही करतीं कि मुझे उनकी छलछलायी आंखें न दिखें। कहतीं, "तुम क्यों परेशान हो रहे हो, अब तो हम ठीक हो रहे हैं।" दवा पिलाकर डॉक्टरों ने मुझे कमरे से बाहर कर दिया। डाक्टर-नर्स जो भी उनके कमरे में जाता एक विशेष प्रकार की मशीनी डिबिया लगाकर थोड़ी देर के लिए जाता और वापस आ जाता। बाहर ही बैठे मैं यह सब देखता रहा। शाम होते-होते उनकी गर्दन बहुत सूज गई और सांस लेने में भी वे कठिनाई का अनुभव करने लगीं। मैं अपने को रोक नहीं सका, डाक्टर मना कर रहा था कि दवा का दुष्प्रभाव तुम पर भी पड़ सकता है। मैंने कहा, मुझे कुछ भी नहीं होगा, और मैं चला गया और रात भर उनके सिरहाने बैठा रहा। मैं पहुंचा तो नाराज भी हुईं कि मैं क्यों आया और भावुक भी। थोड़ी देर बाद तकिए के नीचे रखा एक कागज निकालकर मुझे दिया उसमें लिखा था- "मेरे न रहने पर दुखी मत होना, दिल्ली में जैनेन्द्र जी, डा. नगेन्द्र, डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, जाजू जी और रमानाथ अवस्थी आदि साहित्यिक बंधुओं को ही सूचित करना। सरकार का एक भी फूल मेरे ऊपर मत चढ़ने देना।" उस कष्ट की स्थिति में भी उन्होंने कविताएं लिखीं –

आज वर दो यह तरी सौ आंधिया सह जाय

तथा

सृजन के विधाता कहो आज कैसे
कुशल अंगुलियों की प्रथा तोड़ दोगे?
अमर शिल्प अपना बना छोड़ दोगे?

यदि ध्यान से देखा जाए तो उनका पूरा जीवन ही संघर्ष का रहा है और उसे उन्होंने बहुत बहादुरी से जिया भी। अदम्य साहस था उनमें। कितनी उनकी कविताएं, भाषण हैं जिनसे लगता है कि कैसे चुनौतियों को स्वीकार करती थीं वे। चाहे आपातकाल में स्थानीय हिंदुस्तानी एकेडेमी में दिया गया यह भाषण हो- "आज सारा देश कारागार हो गया है और हम सबकी जुबान

---

* स्व. रामजी पांडेय (सुपुत्र स्व. गंगा प्रसाद पांडेय) का यह आलेख उनके पुत्र राजेश कुमार पांडेय के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।

में ताले लगे हुए हैं।'' या जयपुर के ऑथर्स गिल्ड समारोह में दिया गया भाषण हो – ''आज जीवन मूल्यों, नैतिक मूल्यों का संकट है। देश विघटन के कगार पर खड़ा है। लेखक, साहित्यकार ने सदैव समय की चुनौती को स्वीकार किया है, क्रांतिकारी का धर्म निभाया है आज भी उससे बड़ी अपेक्षा है।''

आज की राजनीति विक्षिप्त हो गई है और उसने हमें भी विक्षिप्त कर दिया है, यदि हम कवि, लेखक, साहित्यकार उनकी-सी (राजनीतिज्ञों-सी) न बोलें तो वे हमें पागलखाने में रख देंगे। दुनिया में पागल अधिक हो जाएं तो सीधे लोग पागलखाने में ही होंगे। आज देश में चरित्र का संकट है, पशुओं के लिए अभयारण्य बनाए जा रहे हैं और मनुष्यों के लिए भयारण्य बन रहे हैं। अब जो लोग राजनीति में हैं वे सोचें कि देश को एक रखने का कार्य लेखक, साहित्यकार करेगा। उसे साथ लेना होगा। उसका यह कर्तव्य है, धर्म है कि वह देश को एक रखे।

न जाने कितने भाषण, कितने लेख, कितनी कविताएं इसी तेवर की हैं। उनमें एक ज्वाला थी, जो निरंतर जलती रहती थी। परिणामत: बहुत से लोग उससे झुलसे भी और बहुत से लोग उससे प्रकाशित भी हुए। बिना किसी हिचक के वे अपनी बात जिस निर्भयता से कह देती थीं वह उनकी आस्था, विश्वास का ही परिचायक है।

पच्चीस-छब्बीस वर्ष उनके साथ रहने के बाद जिसमें वे मुझे छाया की भांति घेरे रहीं या मैं छाया की तरह उनके साथ लगा रहा, यह अनुभव किया है कि उनमें एक असाधारण ऊंचाई, एक विशेष प्रकार का बड़प्पन था। ऐसा नहीं कि उनमें कमियां नहीं थीं, बड़ी कमियां थीं जिससे उनके छोटेपन का रूप भी सामने आता था, फिर भी वे महान थीं, हिंदी की हिमालय थीं। मुझे ऐसा लगता है कि उनके भीतर का वह हिमालयी तत्व ही यह कविता लिखवा सका। यदि भीतर से आदमी खोखला हो तो ऐसा लिख पाना कठिन है –

हे चिर महान !
मेरे जीवन का आज मूक, तेरी छाया से हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छू ले, मन ले करुणा की थाह माप।
उर में पावस दृग में विहान।

हिमालय से यह तादात्म्य सामान्य बात नहीं है। उनमें एक विशेष प्रकार की उदारता थी। पैसों का अभाव भी उन्होंने झेला है। 'भारत भारती' और 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से पहले आर्थिक दृष्टि से वे संकट की स्थिति में रही हैं, लेकिन झुकी नहीं। उन्हें मिले पुरस्कारों को लेकर तरह-तरह की बातें की जाती हैं, किंतु उनके इतने नजदीक रहते हुए मैं तो जानता हूं कि कहां कितनी सच्चाई है। कभी किसी तरह का जोड़-तोड़ न तो पुरस्कार प्राप्त करने के लिए ही किया और न ही किन हाथों से मिले इसके लिए प्रयत्न किया। हां, उसे अस्वीकार नहीं किया और लेने भी गईं। 'भारत भारती' और 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार लेते समय उनके भाषण के अंश दे रहा हूं। 'भारत-भारती' पुरस्कार लेते समय कहा था – ''इंदिरा जी जब छोटी थीं तब भी उन्होंने बानर सेना बनाई थी और अब बड़ी होकर भी वे बड़े-बड़े बंदरों की सेना का संचालन कर रही हैं।'' सभा में सभी मौजूद थे– राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्री, सांसद, विधायक आदि। मैं तो इसे साहस की ही बात मानता हूं। सब ऐसा नहीं कह सकते।

'ज्ञानपीठ' पुरस्कार लेते समय उन्होंने कहा – ''मेरा विश्वास है, आज कवि और कविता की प्रासंगिकता अन्य युगों से अधिक है, क्योंकि कविता ही मानव मन की ऋतु बदल सकती है और वह भौतिक तथ्य को आत्मा के सत्य में परिवर्तित कर उसे सुंदरता के माध्यम से शिव तक पहुंचा सकती है। बिना स्नेह, समता, बंधुता और मानव गरिमा के मानव जाति का भविष्य केवल मरण का पर्व है। हर छोटे-बड़े, विकसित-अविकसित देश के कवि के समक्ष

इलाहाबाद में अपने निवास पर साहित्य प्रेमियों के साथ विचार–विमर्श में तल्लीन महादेवी



चित्र सौजन्य : अनिता गोपेश

जीवन की जो चुनौती है, उसे स्वीकार करके ही वह मानव जाति का मंगल-विधान कर सकेगा। इसे मैं सुखद संयोग ही मानती हूं कि अनेक वर्ष पहले विश्वबंधु बापू के पुण्य करों से मुझे तब हिंदी का सम्मानित पुरस्कार प्राप्त हुआ था, तब वे और हम सब अपनी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटेन से अहिंसक संघर्ष कर रहे थे और उसी देश की प्रधानमंत्री श्रीमती थैचर मित्र-भाव से मुझे सम्मानित कर रही हैं। हमारा संघर्ष कितना द्वेष, हिंसा आदि से रहित था यह उसी का प्रमाण है कि स्वतंत्र भारत और स्वतंत्र ब्रिटेन आज मित्रता के सूत्र में आबद्ध हैं। मेरी कामना अपनी आर्य वाणी में यही है- हमारी गति साथ हो, हमारी वाणी समान हो और हम एक-दूसरे के मन को जानें।''

सामाजिक, आर्थिक दबावों के कारण उनमें कुछ गांठें भी थीं, जो अंत तक रहीं फिर भी जीवन के मंगल विधान के लिए मनुष्य में संवेदन की जिस तरलता की विशेष आवश्यकता होती है वह थी, एक मादक, स्नेहिल और कोमल भाव था उनमें। यदि ऐसा न होता तो मैं नहीं मानता कि वे यह कविता लिख सकतीं -

मैं नीर भरी दुख की बदली,
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली।

इसमें उनके जीवन का दुख (करुणा) भी है और उदारता (स्नेह) भी। उनके जीवन को देखकर ही कविता में घटित होने की बात कह रहा हूं। किसी धुरंधर आलोचक की शास्त्रीय आस्था नहीं है यह, बल्कि उनके जीवन को बहुत करीब से देखने के आधार पर ही मैं ऐसा सोचता हूं। बरसकर मिट जाने का भाव उनकी बहुत बड़ी विशेषता थी। गुस्सा भी उनका क्षणिक होता था। जब हुई लगता था क्या कर डालेंगी और थोड़ी देर बाद एकदम सहज, आत्मीय। आप उनसे लाख नाराज हुआ करें, आपको उनसे बड़ी शिकायत रहा करें, लेकिन उनकी दृष्टि में ऐसी तरलता, ममता थी, स्पर्श में ऐसा बंधन, अपनापन था कि सब कुछ भूल जाना पड़ता था। मेरा खुद का जो अनुभव है वह तो अद्‌भुत है ही, किंतु और भी बहुत से नाराज, रूठे हुए लोगों को उनके सामने आते नम्र विनयी होते देखा है मैंने। गर्मी के महीनों में धरती में पड़ी दरारें अषाढ़ की पहली ही बारिश में जैसे सब पट जाती हैं कुछ-कुछ इसी प्रकार की थी उनकी दृष्टि और उनका स्पर्श।

एक बार संभवत: 70-71 में उनके दो हजार रुपये चोरी हो गए (वस्तुत: वे कहीं कागज में दब गए और बाद में मिल भी गए) मैं गांव में था। भाई लोगों ने ज्योतिषी से पूछकर मेरा नाम लगा दिया। घर से लौटा तो अजीब नाराजगी भरा महौल था, उनके पास गया पांव छुए तो कुछ बोली नहीं। बात मैं कुछ समझ नहीं सका और मुझे बहुत बुरा लगा। दूसरे ही दिन बद्री-केदार की यात्रा पर जाना था। घर से लौटने में देरी हो गई थी, सोचा शायद इसी कारण नाराज होंगी। फिर भी कुछ तो बोलना ही चाहिए था, यही सोचते हुए कमरे से बाहर आ गया। थोड़ी ही देर बाद नौकर ने रुपयों की चोरी वाली घटना को बताया और यह भी कि, अमुक बाबू ज्योतिषी के पास गए थे और उन्होंने आपका नाम बताया है। मुझे काटो तो खून नहीं। अजीब हालत हो गई मेरी। जिन लोगों का इसमें हाथ था वे तो इस बात के लिए बाबूजी के न रहने के बाद से ही प्रयत्नशील थे कि मैं महादेवी जी के साथ न रह सकूं, उन्हें यह अच्छा मौका मिल गया। मैंने निश्चय किया कि अब मैं यहां नहीं रहूंगा। दिन का खाना महादेवी जी ने अपने ही कमरे में मंगवा लिया और मैंने खाया ही नहीं। कुछ आवश्यक सामान साथ ले जाने के लिए बांधा, कुछ को दोस्तों



महादेवी वर्मा, निराला और इलाचंद्र जोशी

के यहां छोड़ने की बात सोची। (तब सामान अधिक था भी नहीं क्योंकि परिवार नहीं था) बाबूजी की ही पुस्तकों की कुछ अलमारियां और कुर्सी-मेज ही थी। मेरी इस तैयारी की खबर उनको लग गई, उनकी बेचैनी बढ़ गई। परोक्ष रूप से कई बार नौकर से कहलाया कि मैं उनसे मिल लूं, लेकिन मैं गया नहीं। जब लगभग चलने को ही हुआ तो बहुत ही दुखी मन से उनके पास यह कहने के लिए गया कि, ''कुछ सामान मैं अपने साथ लिए जा रहा हूं, चलकर देख लीजिए।'' इतना कहते-कहते मैं भी भावुक हो गया था, लेकिन अपनी पूरी ताकत से मेरा हाथ पकड़कर उन्होंने जो रोना शुरू किया तो मैं हक्का-बक्का ही रह गया। लगभग डेढ़-दो घंटे हम दोनों उसी तरह बैठे रहे। न वे कुछ बोलीं न मैं। इतनी देर अबोले बैठने के बाद जब मेरे हाथ को उन्होंने छोड़ा तो मैं फिर वापस आने को हुआ, फिर मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा, ''मैं तुम्हारी मां ही नहीं, दादी भी हूं, मुझसे गलती हुई जो मैंने उन लोगों की बात मानकर तुम्हारे मन को दुखाया, तुम कहीं नहीं जाओगे। तुम्हें बसंत (मेरे बाबूजी श्री गंगा प्रसाद पांडेय को वे इसी नाम से बुलाती थीं) की कसम!'' हाथ खींचकर अपनी गोदी में लिटा लिया और बड़ी देर तक फिर सिसकियां भरती रहीं। किन्हीं-किन्हीं मौकों पर वे ऐसी द्रवित होती थीं, अपनी वात्सल्य भरी ममता में ऐसा बांधती थीं कि आपका कोई वश ही नहीं रह जाता था। कितनी ऐसी घटनाएं हैं, जबकि उनके आंचल का शीतल स्पर्श पाकर मन की सारी नाराजगी घुल जाती थी। लोग कहते हैं, बड़े लोग कान के कच्चे होते हैं। वे भी थीं और कई बार दूसरों से सुनी हुई बात पर बिना यह सोचे कि इसमें सच्चाई कितनी है, मान भी लेती थीं। उनके साथ रहते हुए मेरे बहुत से खट्टे-मीठे अनुभव हैं, जैसा कि हर बड़े आदमी के साथ होता है, क्योंकि बहुत तपना पड़ता है। खूब तपा हूं मैं और उस तपन का सुखद परिणाम भी खूब मिला- भरपूर।

उनके प्रति ये मेरी अपनी अनुभूतियां हैं- एकदम निजी। मैं जो कुछ भी हूं उसमें उनका बड़ा हाथ है। उनकी आशीषपूर्ण स्नेह-छाया के कारण मैंने इतना कुछ पाया है जो बड़ों-बड़ों को नसीब नहीं होता। आज वे नहीं हैं, लेकिन मेरा विश्वास है कि उनकी ममता, उनका आशीर्वाद मेरे साथ है। उनकी स्मृति को मेरा अनंत प्रणाम। ❑



महादेवी जी ने कन्यादान की रस्म निभाई

यश मालवीय

मेरे सामने अपने विवाह का निमंत्रण पत्र खुला रखा है। महादेवी जी की पंक्तियां झिलमिला रही हैं। इसी बीते जून में मेरी शादी के बीस वर्ष पूरे हुए हैं। और यह महादेवी जन्मशती वर्ष चल रहा है, मन उनकी यादों के सघन वन में कहीं खोया जा रहा है।

कार्ड पर उन्होंने लिखा था–

''सौभाग्य कांक्षिणी आरती तथा आयुष्मान यश के शुभ परिणय से हमारे दो आत्मीय साहित्यिक परिवार एक हो रहे हैं। उनके दीर्घ, सुखी तथा कर्मनिष्ठ दाम्पत्य जीवन के लिए हमारी हार्दिक शुभकामनाएं हैं।''

– महादेवी

एक ओर वह कवि पिता उमाकांत मालवीय को याद कर रही थीं, तो दूसरी ओर अपने प्रिय समालोचक स्वर्गीय गंगा प्रसाद पांडेय को याद करते उनकी आंखें डबडबायी जा रही थीं। गंगा प्रसाद जी के पुत्र और उनके पुत्रवत सहायक डा. रामजी पांडेय भी उनके इर्द-गिर्द डोल रहे थे। कहने को वह आरती के पिता थे पर कन्यादान की रस्म महादेवी जी ने ही निभायी थी। आरती के बाबा ने ही सबसे पहले महादेवी जी को 'महीयसी' और निराला जी को 'महाप्राण' विशेषण से जोड़ा था, जो कालांतर में इन विभूतियों के नाम का ही हिस्सा हो गए।

महादेवी जी भावुक हुई जा रही थीं। *अतीत के चलचित्र* सहेज रही थीं। *पथ के साथियों* को याद कर रही थीं, *शृंखला की कड़ियां* सहेज रही थीं, कह रही थीं–

''उमाकांत हमको दीदी कहता था, गुड़िया (आरती) दादी कहती है, अब बताओ दूल्हे से मेरा क्या रिश्ता हुआ, वह हमें क्या कहेगा?''

शाम से ही बेचैन थीं। डा. रामजी से कह रही थीं, ''दूल्हा जिस गेट से आएगा, उसी तरफ मेरी कुर्सी लगा दो।''

शहर में कर्फ्यू था। घोड़ी वाला, शहनाई, बिजली, बैंड बाजे वाले सभी हमारे मुस्लिम भाई थे। उनके बिना शादी संपूर्ण उत्सवता के साथ संभव न थी। श्वसुर जी ने बिस्मिल्ला खां साहब का शहनाई वाला कैसेट लगा दिया था। शहनाई का मंगलवाद्य अपनी मधुरता में गूंज रहा था कि अचानक ही महादेवी जी गंभीर हो गयीं, बोलीं, ''बिस्मिल्ला खां साहब की तो मैं भी भक्त हूं। उन्होंने हाशिए पर पड़े इस वाद्य को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलायी, पर दृष्टि का उत्सव तो तभी संभव होगा जब शहनाई वाले दरवाजे पर आएं और झूमकर शहनाई बजाएं।''

पांडेय जी को भरे कर्फ्यू में प्रशासन से पास लेकर शहनाई वालों को शहर के तनावग्रस्त इलाके चौक नरवास कोने से बुलवाना पड़ा था। शहनाई वालों के आ जाने पर बच्चों की तरह खुश हुई थीं। नेग और निछावर में घर की बड़ी-बूढ़ी पुरखिन और गृहस्थिन की तरह आगे-आगे थीं। महादेवी जी का दूसरा ही रूप सामने आ रहा था। लग रहा था जैसे वह अपने कविता के एकांत से बाहर आ गई हैं और पूरी तरह से पारिवारिक एवं घरेलू आभा से दीप्त हो उठी हैं। वह आरती के हाथ में रची मेंहदी निहार रही थीं और कह रही थीं–

''गुड़िया के हाथों में बड़ी चटख मेंहदी रची है, उसे ससुराल वाले बहुत चाहेंगे।''

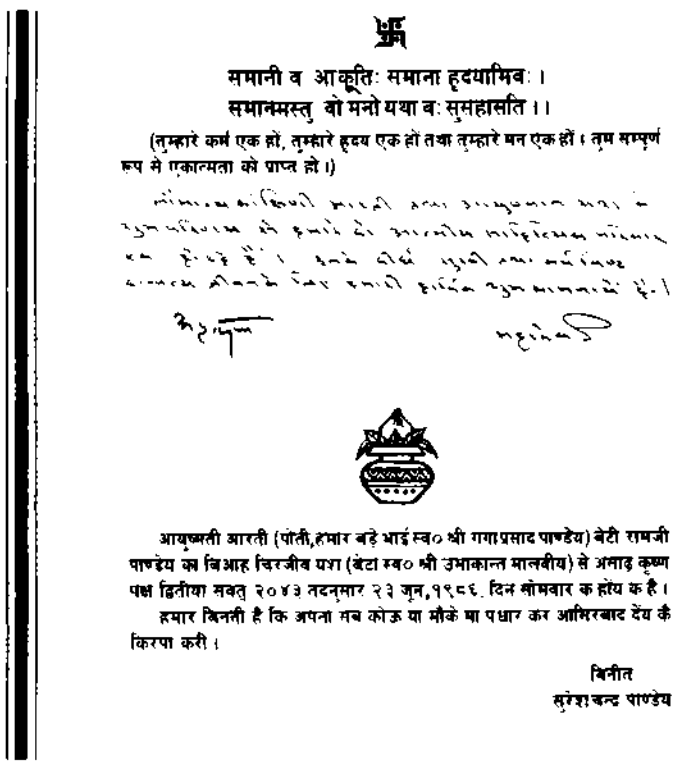
मेरी सास रानी बहू के साथ वह 'बन्नी बन्ना' गा रही थीं। 'नीर भरी दुख की बदली' आज घर भर पर खुद ही खुशी के बादल उठा रही थी। उनकी उत्सवधर्मिता ने मेरे विवाह समारोह को अविस्मरणीय बना दिया था। उनका हाथ मेरे सिर पर था, लग रहा था जैसे एक पूरी सदी का हाथ मेरे सिर पर था, वह एक-एक बाराती से खाना-पीना पूछ रही थीं। विवाह समारोह क्या था, साहित्यिक कुम्भ जैसा हो गया था। डा. रघुवंश, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकांत वर्मा, अमृत राय, केशव चन्द्र वर्मा, शकुंतला सिरोठिया, कैलाश गौतम आदि विभूतियों के ठहाके गूंज रहे थे। जयमाल देखने को उमड़ी भीड़ महादेवी जी की तरफ से होकर आ रही थी।

महादेवी जी के आशीष मंडप में सारी वैवाहिक रस्में सम्पन्न हो चुकी थीं। आसमान सिलेटी हो चला था। विदाई के क्षण नजदीक आ रहे थे। महीयसी

की आंखें रह-रह सावन भादों हो रही थीं। उन्होंने ही दोनों परिवारों को जाति-बंधन से मुक्त होने का पाठ पढ़ाया था। आरती का परिवार सरयूपारीण था, हमारा परिवार महामना मदन मोहन मालवीय के परिवार से जुड़ता था। उन्होंने ही कहा था, ''मनुष्य, मनुष्य होता है, वह गंगापारीण या सरयूपारीण नहीं होता। वहीं विचारों में दृढ़ महादेवी जी की आंखों से आज एक निर्झर फूट रहा था। वह सीता और शकुंतला की विदाई याद कर रही थीं। याद आ रही थीं 'विदा' की पंक्तियां :

आज विदा होगी शकुंतला, सांच हृदय आता है भर-भर
दृष्टि हुई धुंधली चिंता से रुद्ध अश्रु से कंठ रुद्ध स्वर।

''बेटा! रोना नहीं, उदास नहीं होना। तुम्हें बहुत अच्छा घर और वर मिला।'' महादेवी जी ने खुद रोते हुए ही आरती को समझाया था।



ॐ

समानी व आकूतिः समाना हृदयानिवः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

(तुम्हारे कर्म एक हों, तुम्हारे हृदय एक हों तथा तुम्हारे मन एक हों। तुम सम्पूर्ण रूप से एकात्मता को प्राप्त हो।)

आयुष्मती आरती (पोती,हमार बड़े भाई स्व० श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय) बेटी रामजी पाण्डेय का बिआह चिरजीव यश (बेटा स्व० श्री उमाकान्त मालवीय) से अषाढ़ कृष्ण पक्ष द्वितीया सवत् २०४३ तदनुसार २३ जून,१९८६ दिन सोमवार के होय के है।

हमार बिनती है कि अपना सब कोऊ या मौके मा पधार कर आशिरवाद देय कै किरपा करी।

विनीत
सुरेशचन्द्र पाण्डेय

स्वर्गीय रामजी पांडेय की पुत्री आरती और स्वर्गीय उमाकांत मालवीय के पुत्र यश मालवीय के विवाह का निमंत्रण पत्र

कम ऐसा होता है कि विदाई में दूल्हा भी रो रहा हो। ऐसा ही कुछ हो रहा था। इतने बड़े वट वृक्ष को रोते देख, मेरी आंखें भी भीग रही थीं, उन्हीं की पंक्तियां साकार हो रही थीं :

सब आंखों के आंसू उजले
सबके सपनों में सत्य पला।

मेरे विवाह के बाद लगभग डेढ़ वर्ष महादेवी जी का साथ और रहा। एक बार वह दोपहर में आराम कर रही थीं, मैं अपने सास-ससुर से मिलकर लौट आया। जब उन्हें पता चला तो बेतरह नाराज हुईं। ''कलजुगी लड़का है भाई! सास-ससुर से मिलकर चला गया। हम कौन होते हैं, हमसे क्यों मिलेगा?''

जब मैंने उनसे माफी मांगी और सफाई दी कि आप सो रही थीं, तो बिफर पड़ी थीं, ''सो ही रहे थे, कोई मर तो नहीं गए थे।''

एक बार होली में ठंडई की तरंग में उनके अशोक नगर स्थित आवास पर जाना भी हुआ था। किसी बात पर हंसी आ गयी थी और रोके नहीं रुक रही थी, उन्होंने हंसने की वजह पूछी तो और तेज हंसी आ गयी थी। चेहरा लाल, हरे, नीले, पीले रंगों से पुता था। कहीं-कहीं वार्निश और काले रंग के छींटे भी थे। चेहरा क्या था, एकदम रंग-बिरंगी पतंग जैसा हो गया था। महादेवी जी ने चुटकी ली थी।

''जाना होता लड़के का यह रंग रूप है तो काहे अपनी लड़की व्याही होती?''

मेरे बेटे सौम्य ने भी उनकी गोद में किलकारी भरने का सुख पाया है। मुझे याद है आरती परिवार पथ पर थी। उसे लेकर जन्माष्टमी पर उनके घर गया था। जन्माष्टमी पर आरती ही उनके घर पर झांकी सजाती थी। आरती को उन्होंने दादी मां की तरह समझाया था, ''बेटा! जरा भी परेशान नहीं होना, डरना नहीं। लड़कियां तो खुद बीमार बनकर पड़ जाती हैं। मां बनना तो स्वयं में एक उत्सव है, प्रसव एक सहज नैसर्गिक प्रक्रिया है। हौसले से काम लेना।''

बेटा होने पर उनका संदेश आया था, ''भाई! हम तो परदादी बन गए, हमारे तो पंख लग गए।''

उनको इस तरह से घर-परिवार से जुड़ते देखना, आम के मौसम में आम का अचार डालना, नीबू-नारंगी का खट्टा-मीठा स्वाद पसंद करना। कभी बड़ी मुंगौड़ी, तो कभी कचौड़ी-पकौड़ी से परिवार को सहज स्नेह से जोड़ना, आज बहुत याद आता है।

महादेवी जी को याद करता हूं तो लगता है जैसे अपनी समूची परम्परा, विरासत और मूल्यबोध को याद कर रहा हूं। उनका स्मरण जीवन और कविता की लय को याद करने जैसा है। आज महादेवी जी होतीं तो पूरे सौ बरस की होतीं। यह उनकी ही जिजीविषा थी कि 'इकला चलो रे' की तर्ज पर कवींद्र रवींद्र की तरह कह सकीं-

पंथ रहने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला।

प्राण को अकेला और पंथ को अपरिचित रहने देकर उन्होंने हमारे समय और समाज को जो दिया है, उसे भुलाने में सदियां लगेंगी।

उनके जन्मशताब्दी वर्ष पर उन्हीं के गीत-पंक्तियों से उन्हें अपने प्रणाम देता हूं :

यह मन्दिर का दीप
इसे नीरव जलने दो
रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा स्वर
गये आरती बेला को शत-शत लय से भर
जब था कल कंठों का मेला
विहंसे उपल तिमिर था खेला
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो। ❑

स्त्री के सामाजिक इतिहास लेखन के कुछ स्रोत

यह लेख 1942 ई. में प्रकाशित महादेवी वर्मा की वैचारिक पुस्तक 'शृंखला की कड़ियां' पर केंद्रित है। यह कहना मुश्किल है कि आज स्त्री समाज को लेकर जो बहसें हो रही हैं, उसमें इस पुस्तक की क्रांतिकारी भूमिका क्या है; पर इतना सच है कि 'शृंखला की कड़ियां' हिंदी में 1857 से 1947 के बीच स्त्री की जो सामाजिक स्थिति है, उस पर विचार करने के अनेक संदर्भ प्रस्तावित करती है, कुछ हद तक स्त्री के सामाजिक इतिहास लेखन में मदद भी। महादेवी के नारी विषयक चिंतन पर **देवेंद्र चौबे**

यह एक अहम सवाल है कि आधुनिक हिंदी में स्त्री-संबंधी बहस, चिंतन या लेखन की जो तस्वीर बनती है वह 1967 में प्रकाशित कृष्णा सोबती के उपन्यास (या लंबी कहानी) *मित्रो मरजानी* की देन है अथवा उसकी कुछ निर्मितियां महादेवी वर्मा की *शृंखला की कड़ियां* (1942) या उसके पूर्व एक अज्ञात हिंदू औरत (माई भगवती?) कृत *सीमंतनी उपदेश* (1882) में भी देखा जा सकता है, कारण 1967 के पूर्व हिंदी में स्त्री संबंधी चिंतन की जो तस्वीरें हैं, वे बाद की स्थितियों से बिल्कुल भिन्न हैं। वह इस अर्थ में कि सातवें दशक या उसके बाद का विमर्श जहां भारतीय समाज की 'वर्ण' केंद्रित सीमाओं का लगभग अतिक्रमण करते हुए एक आधुनिक एवं पुरुष से परे तथा उसके समानांतर स्त्री की एक ताकतवर छवि गढ़ता है, वहां पूर्व का विमर्श (विचार) वर्ण की सीमाओं के विस्तार और अधिक खुलापन की मांग करता है। महादेवी वर्मा का लेखन तो कई मामलों में स्त्री की सामाजिक एवं आर्थिक स्वाधीनता की मांग करते हुए तत्कालीन वैचारिक बहसों की सीमाओं को भी बतलाता है।

कल्पना कीजिए, महादेवी वर्मा का जो लेखन काल है उस दौर में हिंदी के बड़े-बड़े लेखक और विचारक मौजूद हैं। खासकर छायावाद के जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत सहित कथाकार प्रेमचंद, आलोचक रामचंद्र शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि जैसे लेखक हिंदी लेखन के सर्जनात्मक एवं वैचारिक संदर्भ एवं परिपेक्ष्य को ठोस आधार प्रदान करते हैं, पर यदि आप महादेवी वर्मा को छोड़ दें तो कोई दूसरी बड़ी स्त्री लेखिका इस दौर में नहीं दिखलाई पड़ती है जो स्त्री के सवाल को एक बड़े सवाल के रूप में प्रस्तुत करे। और महादेवी वर्मा की बात करें तो उनकी छवि भी एक दुखिनी स्त्री के रूप में स्थापित कर दी गई है।

प्रो. मैनेजर पांडेय के शब्दों में, "यह ठीक है कि उनकी कविता में दुख है, वेदना है, निराशा है, आंसू हैं, अंतर्मुखता है और अभिव्यक्ति शैली में परोक्ष की प्रधानता भी है, पर साथ ही वहां असंतोष है, आक्रोश है और संघर्ष की चेतना भी। आलोचकों ने उनके आंसूओं पर ध्यान दिया है, लेकिन उनके आक्रोश पर नहीं।...कुछ आलोचकों ने अपनी प्रतिभा का कमाल दिखाते हुए महादेवी वर्मा की कविता में दुख के अनुभव की अभिव्यक्ति को दुखवाद बना दिया है तो कुछ दूसरों ने उन्हें 'एकाकिनी बरसात' या 'नीर भरी दुख की बदली' घोषित कर दिया है।" (*अनभै सांचा*, पृ. 178)

महादेवी वर्मा की यह वही छवि है जिसे हिंदी साहित्य और समाज पिछले कई दशकों से ढोता आ रहा है। यदि कभी इस छवि को बदलने की कोशिश हुई भी तो बुजुर्ग और प्रतिबद्ध आलोचकों ने नये आलोचकों के बारे में यह टिप्पणी करके उनका मजाक बनाना शुरू कर दिया कि "देखिए, अब इन्होंने महादेवी वर्मा के यहां भी स्त्री विमर्श ढूंढना शुरू कर दिया। कुछ दिन बाद ये प्रेमचंद के यहां दलित विमर्श ढूंढेंगे और एक समय ऐसा आयेगा कि इन्हें कबीर दलित विमर्श के और मीराबाई स्त्री विमर्श के लेखक नजर आयेंगे।" नयी आलोचना के बारे में ऐसी टिप्पणियां करना आम बात है।

जब रणजीत गुहा जैसे इतिहासकारों ने अस्सी के दशक में आर्थिक इतिहास (राजनीतिक भी) के समानांतर सांस्कृतिक इतिहास के प्रसंग में जब संघर्षों का इतिहास लिखना शुरू किया था तथा आम जन को इतिहास के नायक के रूप में स्थापित करना; तब भी ऐसी ही बातें होती थीं। यहां तक कि मुख्यधारा के इतिहासकारों ने उन लेखनों को इतिहास मानने से ही इंकार कर दिया था। गनीमत मानिए कि बाद में ज्ञानेंद्र पांडेय, शाहिद अमीन, पार्थ चटर्जी, गौतम भद्र आदि सहित उमा चक्रवर्ती जैसी चिंतकों-विचारकों ने निम्नवर्गीय समाज, खासकर किसानों एवं स्त्रियों के संघर्ष का इतिहास लिखकर सामाजिक इतिहास लेखन की धारा को मजबूती प्रदान किया। आज उन पर हमले हो रहे हैं, पर अब निम्नवर्गीय समाज के इतिहास की बातें होने लगी हैं और वह बहस एवं विचार के केंद्र में है तथा बद्रीनारायण, हितेंद्र पटेल, रश्मि चौधरी, संयुक्ता दासगुप्ता जैसे अनेक नये लेखक इस दिशा में गंभीरता के साथ काम कर रहे हैं।

दरअसल इन सारी चर्चाओं का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि क्या, महादेवी वर्मा के स्त्री संबंधी लेखन के आधार पर हिंदी प्रदेश की स्त्रियों उनके सामाजिक संघर्षों एवं द्वंद्वों (वैचारिक) का इतिहास लिखा जा सकता है अथवा नहीं या वह किसी हद तक उसमें मदद कर सकता है? यह कोई निश्चित राय नहीं है; पर एक प्रस्ताव है, जिस पर हम विचार करेंगे। कारण *शृंखला की कड़ियां* में महादेवी वर्मा स्त्री संबंधी जिन मुद्दों को उठाती हैं उनमें सामाजिक पराधीनता, सांस्कृतिक दबाव एवं स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न महत्वपूर्ण है। जाहिर है, स्त्री जीवन के ये जरूरी सवाल हैं जिसको लेकर स्त्री समाज की जिंदगी एवं इसकी विचारधारा को समझा जा सकता है।

महादेवी वर्मा की पुस्तक 'शृंखला की कड़ियां' स्त्री समाज की समस्याओं पर विचार के बहाने उन सदर्भों और संकेतों का सामाजिक रूप प्रस्तुत करती है जिनसे स्त्री समाज के अंदर हो रहे परिवर्तन और विकास की प्रक्रियाओं को समझा जा सकता है।...

यह गौरतलब है कि सामाजिक इतिहास लेखन में आमतौर से भौतिक संदर्भों के बदले सांस्कृतिक अध्ययन महत्वपूर्ण हो उठता है। उदाहरण के लिए, इतिहासकार रणजीत गुहा ने *एलिमेंटरी एस्पेक्ट्स ऑफ पीजेंट इसर्जेंसी इन कोलोनियल इंडिया (1983)* में इतिहास लेखन की प्रक्रिया में सांस्कृतिक संदर्भों की महत्ता की तरफ संकेत करते हुए लिखा है कि "मैं यह जानना चाहता हूं कि वह क्या है जो हिंसा भड़काता है। जब कोई किसान जमींदार के चबूतरे के सामने से छाता लगाकर गुजरता है तो इसे अपमान समझा जाता है और वह हिंसा को भड़काता है। या फिर जब नीची जाति का कोई आदमी अपनी खटिया पर बैठा होता है और जमींदार के आने पर उससे खड़ा होने को कहा जाता है, यह भी तो अपमान ही है।" रणजीत गुहा लिखते हैं कि "मैं इन सबको नोट करता हूं।" तथा तब उन्हें महसूस होता है कि "अपमान कैसे हिंसा में तब्दील हो जाता है।" क्यों? क्योंकि "यह हिंसा का ही एक प्रकार है।" अथार्त भारतीय समाज के प्रसंग में निम्नवर्गीय समाज के इतिहास लेखन का एक अर्थ यह भी है कि लेखन की प्रक्रिया में संबंधित समाज के अंदर मौजूद उत्पीड़न, हिंसा और अपमान के रूपों को भी समझया जाए। बिना इन्हें समझे निम्नवर्गीय समाज और उसके संघर्ष का इतिहास लिखना असंभव है।

दरअसल महादेवी वर्मा की *शृंखला की कड़ियां* स्त्री समाज की समस्याओं पर विचार के बहाने उन सदर्भों और संकेतों का सामाजिक रूप प्रस्तुत करती है जिनसे स्त्री समाज के अंदर हो रहे परिवर्तन और विकास की प्रक्रियाओं को समझा जा सकता है। सबसे पहले महादेवी वर्मा के लेखन में सामाजिक पराधीनता के सवाल को देखें। हमारी *शृंखला की कड़ियां* में महादेवी वर्मा ने लिखा है कि स्त्री "पवित्र देव मंदिर की अधिष्ठात्री देवी भी बन चुकी है और अपने गृह के मलिन कोने की बन्दिनी भी।" अर्थात भारतीय समाज के प्रसंग में एक स्त्री का जीवन दो तरह की पराधीनता के प्रभाव में है। देवी के रूप में और परिवार के अंदर पुत्री, पत्नी और मां के रूप में। एक स्त्री के ऊपर वह सामाजिक और सांस्कृतिक दबाव कितना गहरा एवं ऐतिहासिक है, उसे मैत्रेयी के प्रसंग से समझा जा सकता है।

आज जब स्त्री मुक्ति के प्रसंग पर बहसें होती हैं, तब परंपरा के पक्षधर यह कहकर भारतीय परंपरा में स्त्री की स्वाधीनता और अधिकार की पक्षधरता की बातें करते हैं कि मैत्रेयी जैसी स्वतंत्र स्त्री भी परंपरा में है। उसी मैत्रेयी की सामाजिक स्थिति पर विचार करते हुए महादेवी वर्मा ने लिखा है कि "गृह की वस्तुमात्र समझी जानेवाली स्त्री ने कभी जीवन को कितनी गंभीरतामयी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया था।" पर उसे प्रत्युत्तर में क्या मिला? इस प्रसंग में महादेवी वर्मा ऋषि याज्ञवल्क्य के उस कथन का उल्लेख करती हैं जो वन प्रस्थान के समय वह मैत्रेयी से कहते हैं, "धन से तुम सुखी हो सकोगी, अमर नहीं।" यानी कि स्त्री को लालची धन बनाता है। पुरुष उस धन के सहारे ही उस पर प्रभुत्व स्थापित करता है। पर कहीं-न-कहीं मसला उस सामाजिक पराधीनता का है जिसे भारतीय समाज में स्त्रियां पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण ग्रहण करने को बाध्य होती हैं। उससे मुक्ति कैसे संभव है?

महादेवी वर्मा मानती हैं कि भारतीय समाज एवं परंपरा के इतिहास में मैत्रेयी, सती गोपा, सीता, द्रोपदी आदि जैसी स्त्रियां हैं जो, या तो पुरुष सत्ता को चुनौती देती हैं अथवा उनके समानांतर खड़ा होने की कोशिश करती हैं पर सवाल है क्या समाज उनके उस रूप को स्वीकार कर पाता है? हमारी *शृंखला की कड़ियां* के दूसरे हिस्से में पितृसत्तात्मक समाज की गतिशीलता और उसकी नियत का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है कि "आज भी जब सारा गतिशील संसार निरंतर परिवर्तन की अनिवार्यता प्रमाणित कर रहा है, स्त्रियों के जीवन को काट-छांटकर उसी सांचे के बराबर बनाने का प्रयत्न हो रहा है जो प्राचीनतम युग में ढाला गया था। प्राचीनता की पूजा बुरी नहीं, उसकी दृढ़ नींव पर नवीनता की भित्ति खड़ी करना भी श्रेयस्कर है, परंतु उसकी दुहाई देकर जीवन को संकीर्णतम बनाते जाना और विकास के मार्ग को चारों ओर से रुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्ति पर समाधि बना देने से भी अधिक क्रूर और विचारहीन कार्य है।"

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था की यह वही ऐतिहासिक संस्कृति है, जिसे स्त्री पर हो रहे सांस्कृति दबाव के रूप में महादेवी वर्मा देखती हैं। वह मानती हैं कि इस प्रकार के सांस्कृतिक दबाव की प्रक्रिया को तब तक नहीं समझा जा सकता है जब तक कि भारतीय समाज में 'स्त्री' को गुलाम बनाने वाली व्यवस्था का वास्तविक विश्लेषण नहीं किया जाए। भारतीय समाज में ऐसी व्यवस्थाएं क्या हैं ? जो स्त्री को गुलाम बनाती हैं ? उसकी निर्मिति कैसे होती है? उसके उदय की ऐतिहासिक स्थितियां क्या हैं ? तथा किन सांस्कृतिक संबंधों के दबाओं के तहत ताकत प्राप्त करते हुए इतिहास में वह जगह बनाता है? अगर इन संदर्भों को महादेवी वर्मा के साहित्य में तलाश जाए तो अनेक संदर्भों में से एक 'स्वामित्व' के क्रूर बंधन का वह उल्लेख करती हैं। 'स्वामित्व' का यह क्रूर बंधन उस सामंतवादी व्यवस्था की देन है जहां पर एक विशेष समाज (दलित और स्त्री) को 'गुलाम' की तरह देखने की प्रकृति रही है। 'स्त्री' और 'दलित' के रूप में अपनी विशेष पहचान बना चुका यह समाज मुख्यधारा में कहने को तो स्वतंत्र होता है पर आर्थिक आत्मनिर्भरता के अभाव में कई प्रकार की बेड़ियों में जकड़ा होता है।

निम्नवर्गीय इतिहास के प्रसंग में नीची जाति के जिस अपमान की तरफ रणजीत गुहा अपने इतिहास लेखन में संकेत करते हैं, स्त्रियां वैसी ही अपमानजनक स्थितियों की शिकार निरंतर होती रहती है। अगर कोई 'स्त्री' किसी जगह पर बैठी हुई है और पुरुष, जो उसका 'स्वामी' होता है, तो उसके आगमन पर उसे उस स्थान से बेदखल होना पड़ता है। 'अपमान' का यह वही भाव है जिसे स्त्रियां महसूस करती आयी हैं तथा जिसके खिलाफ आधुनिक

स्त्रियों ने प्रतिरोध का स्वर बुलंद किया है।

महादेवी वर्मा माननी हैं कि 'स्वामित्व' का यह भाव हिंदू समाज की पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों के नैतिक पतन का सबसे बड़ा कारण है जिसे 'विवाह' जैसी पवित्र संस्था स्थायीत्व का भाव प्रदान करती है। यद्यपि वह 'विवाह' को एक पवित्र संस्था मानती है, लेकिन साथ-ही-साथ इस बात उल्लेख भी करती हैं कि यह सिर्फ मनुष्य जाति की असभ्यता की ही सबसे 'प्राचीन प्रथा' नहीं है, बल्कि यह पुरुष को 'स्वामित्व' एवं स्त्री को 'गुलामी' की संस्कृति प्रदान कर उनके (स्त्री) उत्पीड़न का स्थायी अधिकार दे देता है : ''विवाह मनुष्य जाति की असभ्यता की भी सबसे प्राचीन प्रथा है और सभ्यता की भी, परंतु उसको सामाजिक के साथ-साथ नैतिक और धार्मिक बंधन बनाने के लिए अधिक परिष्कृत करना होगा। इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है।''

एक स्त्री के ऊपर यह वही सांस्कृतिक उत्पीड़न का दबाव है जिसके खिलाफ महादेवी वर्मा *शृंखला की कड़ियां* में प्रतिरोध दर्ज करती हैं एवं मुक्ति की राहों का निर्माण भी।

महादेवी वर्मा अपने लेखन में स्त्री जीवन के जिस तीसरे मुद्दे को बहस के केंद्र में खड़ा करती हैं वह है स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न। यह सवाल स्त्री की स्वाधीनता से भी जुड़ा हुआ है। साथ ही, यह एक बड़ा प्रश्न भी है। ध्यातव्य है कि सामाजिक इतिहास लेखन की प्रक्रिया में इस प्रकार के आर्थिक प्रसंगों से बचने की कोशिश दिखलाई पड़ती है। परंतु महादेवी वर्मा जब स्त्री के अर्थ-स्वातंत्र्य पर विचार करती हैं, तो उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों एवं दबावों को भी विचार के केंद्र में लाती हैं जिनके चलते स्त्री को अर्थ तंत्र से बाहर जाना पड़ता है। एक तरह से समाज में स्त्री की आर्थिक पराधीनता का कारण भी वह स्त्री का एक 'स्त्री' के रूप में पहचान न होने के बदले; पुत्री, पत्नी और माता के रूपों में छवि बनाना भी मानती हैं। स्त्री की इस छवि का उल्लेख करते हुए वह लिखती हैं कि ''एक ओर सामाजिक व्यवस्थाओं ने स्त्री को अधिकार देने में पुरुष की सुविधा का विशेष ध्यान रखा है, दूसरी ओर उसकी आर्थिक स्थिति भी परावलंबन से रहित नहीं रही।...स्त्री पुत्री, पत्नी, माता आदि सभी रूपों में आर्थिक दृष्टि से कितनी परमुखापेक्षिणी दोनों ही में बहुत कुछ कहा जा सकता है और कहा जाता रहा है। आर्थिक दृष्टि से स्त्री की जो स्थिति प्राचीन समाज में थी, उसमें अब तक परिवर्तन नहीं हो सका, यह विचित्र सत्य है।''

सवाल है, स्त्री की आज भी यह स्थिति क्यों है ? क्या विवाह इसका सबसे बड़ा कारण है अथवा कुछ और? यद्यपि महादेवी वर्मा लिखती हैं कि ''पुत्र पिता की समस्त संपत्ति का अधिकारी होता था, परंतु कन्या को विवाह के अवसर पर प्राप्त होने वाले यौतुक के अतिरिक्त और कुछ देने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई।'' यानी कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में संपत्ति का उत्तराधिकारी सिर्फ पुरुष ही होता है। इसीलिए यदि स्त्री को संपत्ति का कोई भी अंश चाहिए तो उसके लिए इसे किसी की पुत्री, पत्नी अथवा माता बनना होता है। बिना इस सांस्कृतिक संबंध के स्त्री को संपत्ति के अधिकार से वंचित रहना पड़ता है।

महादेवी वर्मा इस संदर्भ में स्त्री-पुरुष के 'वैवाहिक संबंध' को एक केंद्रीय कारक मानती हैं। वह लिखती हैं कि ''स्त्री को इस प्रकार पिता की संपत्ति से वंचित करने में क्या उद्देश्य रहा, यह कहना कठिन है। यह भी संभव है कि स्त्री के निकट वैवाहिक जीवन को अनिवार्य रखने के लिए ऐसी व्यवस्था की गई हो...।'' पर सवाल है, जिस आधुनिक युग की लोकतांत्रिक व्यवस्था में हम सब रह रहे हैं, व्यावहारिक रूप से वहां अब भी 'स्त्री' पिता की संपत्ति की अधिकारी नहीं है। खासकर यदि उस संपत्ति का संबंध 'भूमि' के साथ है तो हरगिज नहीं।

हमारी सामाजिक व्यवस्था में 'भूमि' और उसका बंटवारा संपत्ति पर अधिकार का वह स्थायी कारक है, जिससे अति आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं आज भी जूझ रही हैं। सदियों से इस भूमि पर आधिपत्य के लिए संघर्ष होते रहे हैं।

कहना न होगा कि भूमि (संपत्ति) को लेकर हो रहे संघर्ष की इस प्रक्रिया में दलित (शूद्र) और स्त्रियां हमेशा हाशिये पर रही हैं। उन्हें इन पर कभी अधिकार मिला ही नहीं। खासकर स्त्रियों को तो भूमि पर अधिकार के लिए हमेशा पुरुषों का आश्रय लेना पड़ा। कभी पुत्री के रूप में, तो कभी पत्नी, तो कभी माता के रूप में। वह भूमि, जो 'स्त्री' को समस्त प्रकार के सुख और संपूर्ण सुविधाएं प्रदान कर सकती थी, उसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री को कभी सौंपा ही नहीं। क्यों ? इसका उत्तर देते हुए महादेवी वर्मा ने पुरुष समाज की उस मानसिकता की तरफ संकेत किया है जो स्त्री के स्वंतत्र वजूद को सदियों से दरकिनार करता रहा है :

''पिता, पति, पुत्र तथा अन्य संबंधियों के रूप में पुरुष स्त्री का सदा ही भरण-पोषण कर सकता था, इसलिए उसकी आर्थिक स्थिति पर विचार करने की किसी ने आवश्यकता ही न समझी।'' और जाहिर है, यह सब अनजाने ही नहीं हुआ है। बल्कि महादेवी वर्मा के ही शब्दों में, ''किसी भी शास्त्रकार ने पुरुष से भिन्न करके उसकी समस्या को नहीं देखा।'' यद्यपि वह मानती हैं कि ''समाज में पूर्ण स्वतंत्र तो कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि सापेक्षता ही सामाजिक संबंध का मूल है।'' परंतु सच यह भी है कि पारंपरिक समाज ने स्त्री की दशा ऐसी बना दी कि ''उसे प्रत्येक पग पर प्रत्येक सांस के साथ पुरुष से सहायता की भिक्षा मांगते हुए चलना पड़ता है।''

पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था (पितृसत्तात्मक) में स्त्री की यह वही छवि है जिसके खिलाफ महादेवी वर्मा आवाज उठाती हैं एवं स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य के सवाल पर विचार करते हुए एक ऐसी व्यवस्था की मांग करती हैं जिसमें स्त्रियां, पुरुष से भिन्न अपनी अलग हैसियत कायम कर सकें: ''उनके कार्यक्षेत्र की भिन्नता तो आश्वयक ही नहीं, अनिवार्य है।'' 'उनके कार्यक्षेत्र' यानी कि 'स्त्री' के भी कुछ कार्यक्षेत्र होते हैं। वह क्या है या क्या हो सकता है- इसकी तरफ पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था के नियंताओं का ध्यान कभी गया ही नहीं। परिणाम यह हुआ कि स्त्री की स्वाधीनता के वे सारे रास्ते धीरे-धीरे बंद होते गए जो उन्हें पुरुष से भिन्न 'स्त्री' के रूप में सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में स्थापित कर सकें।

महादेवी वर्मा स्त्री की इस दशा के लिए संपत्ति के असंगत और अनियंत्रित विभाजन को जिम्मेदार मानती हैं : ''समाज ने स्त्री के संबंध में अर्थ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर संपन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है।'' जाहिर है, 'अर्थ' के इस प्रकार के असमान विभाजन का मतलब कहीं-न-कहीं 'स्त्री'

शेष पृष्ठ 56 पर जारी

संस्मरण

एक शाम महादेवी के नाम

मेरे खानदान में लड़कियों को जन्म लेते ही मार देते थे / कई पीढ़ियों से लड़की नहीं पली थी / इसलिए जब मेरा जन्म हुआ तो दादा का मन चाहा कि पाला जाये / महत्ता देने के लिए नाम महादेवी रखा गया / बड़े लाड़–प्यार से लड़कों की तरह पालन–पोषण हुआ / मां हिंदी पढ़ी थीं, धार्मिक वृत्ति की थीं / सत्ताइस वर्ष पूर्व महादेवी वर्मा द्वारा सुनाए गए कुछ रोचक संस्मरणों को प्रस्तुत कर रही हैं **माजदा असद**

बात है सन 1980 मार्च की। एन.सी.ई.आर.टी. से एक निमंत्रण पत्र मिला – "इलाहाबाद में बाल-पुस्तक सूची की एक कार्य गोष्ठी है उसमें भाग लें।" इलाहाबाद के नाम में दो आकर्षण थे। संगम और महादेवी। बड़ा आकर्षण महादेवी जी थीं, उन से मैं पहले भी कई बार मिल चुकी थी। उनके दर्शन और लंबी मुलाकात की सुविधा इलाहाबाद में ही संभव थी। मैं गोष्ठी में भाग लेने इलाहाबाद पहुंच गई। 25.3.80 की सुबह मैंने महादेवी को 2122 नं. पर फोन किया। गीता ने फोन उठाया। मैंने कहा, "माजदा असद बोल रही हूं, महादेवी जी से बात करनी है।" गीता ने कहा, "वह तो डाक्टर के यहां गई हुई हैं आप काम बताइए।" मैंने जबाब दिया, "काम तो कोई नहीं है। दिल्ली से आयी हूं, महादेवी जी से मिलना चाहती हूं।" गीता बोली, "आप शाम को पांच बजे आ जाएं।" मैं फोन करके गोष्ठी में आई। सबको बताया कि महादेवी से मिलने का समय तय हो गया है। शाम को वहां चलना है।

दिल्ली से आए हुए डा. श्याम सिंह शशि, डा. मंजुला शर्मा, डा. इन्द्रसेन शर्मा, डा. जयपाल तरंग, बड़ौत से आए डा. इन्द्र सेन शर्मा, डा. ए.सी. शर्मा, चंडीगढ़ की श्रीमती अमरजीत कौर पसरंजा और मैं, हमारा काफ़िला संस्थान से सवा चार बजे बाहर निकला। इलाहाबाद जैसे बड़े शहर में उस जगह रिक्शा का अकाल पड़ गया। एक रिक्शावाला मिला। उसने अशोक नगर जाने के तीन रुपये मांगे। रेट था एक रुपया पचास पैसे। दो रुपये पर समझौता हो गया। एक रिक्शा और बैठने वाले आठ। दस मिनट इंतजार के बाद चार रिक्शा इकट्ठे हुए। हम सब उसमें बैठे और महादेवी के घर की तरफ चले।

इलाहाबाद की लंबी-चौड़ी सड़क पर भीड़भाड़ नहीं थी। चलने वाले लोग हमें अंजान निगाहों से देख रहे थे। पहचानने की कोशिश कर रहे थे। कई सड़कों और चौराहों को पार करते हुए हम लोग अशोक नगर के निकट पहुंचे। मन में ख्याल था कि इलाहाबाद का हर आदमी महादेवी को जानता होगा। केवल एक रिक्शावाले ने उनका और सुभद्राकुमारी चौहान का नाम सुना था। बचपन में कुछ रचनाएं भी पढ़ी थीं; लेकिन घर का पता उसे भी मालूम नहीं था। उसने इतने सारे लोगों को उनसे मिलने का इच्छुक देखकर उनके दर्शन करने की इच्छा अभिव्यक्त की। दो-चार चौराहे पार करने और दो-चार लोगों से पूछने के बाद महादेवी जी के घर का सही पता मिला।

हम लोग एक बड़ी-सी शांत कोठी के सामने थे। वहां बहुत बड़े-बड़े पेड़ थे। बहुत से पौधे हिल रहे थे और लताएं लहरा रही थीं। घास पर बिखरे हुए सूखे पत्ते वातावरण को प्राकृतिक और रम्य बना रहे थे। प्रकृति की यह छटा मन को मोह रही थी। महादेवी की कविता की तरह पास में एक छोटा-सा लड़का गेंद खेल रहा था। गीता ने आकर हम लोगों का स्वागत किया। बाहरी बरामदे में जहां बहुत-सी कुर्सियां और एक तख्त पड़ा था, बैठने के लिए कहा। एक बहुत बूढ़ी महिला मिलीं, वह महादेवी के लिए खाना बनाती थीं। उनसे दुआ-सलाम हुआ। उनके यहां एक बूढ़े नौकर के भी दर्शन हुए। गीता ने बताया कल ही महादेवी जी दिल्ली से आयी हैं। तबियत ठीक नहीं है। अभी दवा खायी हैं। थोड़ी देर में आ रही हैं। बरामदे के सामने दीवार पर एक सुंदर प्रतिमा खुदी हुई थी। तख्त दीवार से लगा था। दीवार की खिड़की में से महादेवी की पूजा का कमरा दिखाई दे रहा था जो बहुत सलीके से सजा था।

थोड़ी देर में महादेवी जी आईं। उन्होंने सफेद कलफदार नीली किनारी वाली खदर की साड़ी पहन रखी थी। तख्त के पास रखी हुई कुर्सी पर आकर बैठ गयीं। हम सब उनके सम्मान में खड़े हो गए। उनके बैठने के बाद ही सब ने अपना-अपना आसन ग्रहण किया। मैंने सब का परिचय कराया। डा. श्यामसिंह शशि ने अपना कविता संग्रह पेश किया। महादेवी जी ने उसके कुछ पन्ने पलटे तो 'बेवकूफ' कविता शीर्षक निकल आया। हंसते हुए महादेवी जी बोलीं, "कविता बेवकूफ या कवि बेवकूफ"। बेवकूफ शब्द को लेकर डा. शशि के साथ काफी मजाक हुआ। डा. शशि ने कहा, "कविता बेवकूफ है कवि नहीं"। महादेवी बोलीं, "सरस्वती कभी बेवकूफ नहीं होती।" डा. शशि ने उनसे पूछा, "आज की कविता के बारे में आपका क्या ख्याल है?" हंसते हुए वह बोलीं, "अस्पताल है अस्पताल, जिसमें तरह-तरह के इंजक्शन टेरामाइसीन आदि लगते रहते हैं।"

डा. शशि ने कहा, "अपने बचपन की कोई घटना सुनाइये।" कुछ पिछली यादों में डूबते हुए वह बोलीं, "मेरे परिवार की कई पुश्तें जंग करते-करते बीतीं। वाजिद अली शाह के जमाने में या उससे भी पहले मेरे दादा के दादा भी देश के लिए लड़ते-लड़ते शहीद हुए। मेरे पिता ने अंग्रेजी में एम.ए. किया और एल.एल.बी.। जब वकालत शुरू की तो एक आदमी अपना केस लेकर आया। पिता जी बोले, "सच-सच बताओ सच क्या है?" उसने कहा, "बात तो झूठ है लेकिन मैं गवाह ले आऊंगा।" पिता जी गुस्से



महादेवी वर्मा के साथ
लेखिका डा. माजदा असद

से डंडा उठा लाये कि झूठ बुलवाता है''। फिर दादा से बोले, ''बाबा मैं वकालत नहीं करूंगा।'' इंदौर में प्रिंसपल हो गए।

मेरे खानदान में लड़कियों को जन्म लेते ही मार देते थे। कई पीढ़ियों से लड़की नहीं पली थी। इसलिए जब मेरा जन्म हुआ तो दादा का मन चाहा कि पाला जाये। महत्ता देने के लिए नाम महादेवी रखा गया। बड़े लाड़-प्यार से लड़कों की तरह पालन-पोषण हुआ। मां हिंदी पढ़ी थीं, धार्मिक वृत्ति की थीं। उनके असर से हिंदी से प्रेम हुआ। पंडित जी समस्या पूर्ति देकर चले जाते थे। दिनभर उसे जोड़कर ब्रजभाषा में कविता बनाते। दद्दा (मैथिली शरण गुप्त) मिले तो उनके प्रभाव से *अहो कहो कविता* लिखी।'' यह कहकर महादेवी जी बहुत जोर से हंसी।

फिर बोलीं, ''उस समय हम त्याग की भावना से लिखते थे। कवि सम्मेलनों में समस्यापूर्ति होती थी या विषय मिल जाता था। एक दफा बापू पर कविता लिखी और गोष्ठी में सुनाई। कविता पुरस्कृत हुई। उस पर चांदी की कटोरी इनाम में मिली। बापू आए आनंद भवन में। हमने उन्हें बताया, ''बापू आप पर कविता लिखी उस पर हमें चांदी की कटोरी इनाम में मिली है। बापू बोले, ''कहां है कटोरी? हमने उन्हें कटोरी दिखाई। बोले ''मुझे दोगी?'' मैं मना नहीं कर सकी, कटोरी उन्हें दे दी। कटोरी जाने का अफसोस नहीं था। अफसोस इस बात का था कि बापू ने कविता नहीं सुनी। सुभद्रा कुमारी चौहान ने कहा था कि चावल की खीर पकाओ इस कटोरी में खाएंगे। जब वह आईं तो उन्होंने खूब छेड़ा। बोलीं, ''खीर तो पकाओ, चांदी की कटोरी में न सही कांसे की कटोरी में खा लेंगे मगर तुम दही किस चीज में खाओगी?''

''फिर कहीं कवि सम्मेलन हुआ। मैं अध्यक्ष थी, मैंने बापू से पूछा, ''मैं अध्यक्षता कर रही हूं आप आएंगे?'' उन्होंने कहा, ''जो रुपये मिलेंगे दोगी?'' मैंने कहा, ''क्यों दूं?'' तो बापू बोले, ''अब तुम चालाक हो गई हो।'' बापू के संबंध में बताते हुए उन्होंने कहा, ''सभा समाप्त होने पर बापू अंजलि बनाकर लोगों केण बीच से चलते थे। स्त्रियां उसमें अपने गहने, चूड़ियां आदि उतारकर रख देती थीं। अंजलि भर जाने पर बापू उन चीजों को वहीं डालकर आगे अंजलि बनाकर चल देते थे। वे महान लोगों में थे, उन्होंने अपने कातिल को भी क्षमा कर दिया। आज नेताओं में वह बात कहां ? सत्ता के लिए एक-दूसरे के शत्रु बने हुए हैं।''

''माखन लाल चतुर्वेदी से देश के स्वतंत्र होने के बाद कहा गया कि आप मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री बन जाएं। उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। आज के लेखकों में कहां है वह त्याग? मैथिलीशरण गुप्त जी के एक साथ चारों भाई जेल गए। घर में मुंशी अजमेरी को छोड़ा अपने किसी रिश्तेदार को नहीं। वह व्यक्ति तख्त पर बैठे घर की बहू-बेटियों की हिफाजत करते रहते। वह जमाना ही कुछ और था। अब तो बस हर तरफ स्वार्थ है। मोह है। जब तक आदमी मोह नहीं छोड़ता, कुछ नहीं पा सकता।''

किसी ने पूछा, ''आप अब भी काम करती हैं।'' वह बोलीं, ''मैं आज भी विद्यापीठ में पढ़ाने जाती हूं। वहां की लड़कियां अब भी *कामायनी* और *निराला* मुझसे पढ़ना चाहती हैं। मैं तिहत्तर वर्ष की हो चुकी हूं लेकिन अभी भी खूब काम करती हूं। मेरे स्वास्थ्य की चिंता मुझसे ज्यादा यहां के डाक्टरों को होती है। उन्होंने मुझे कह-कहकर दिल्ली भेजा कि मैं वहां अपना चैकअप कराऊं। वहां दिखाया तो पता चला कि सब ठीक है।''

इसी बीच उनकी बचपन की एक सहेली और लखनऊ के कोई कवि आ चुके थे। हम सब मंत्रमुग्ध-से उनकी बातें सुन रहे थे। समय का ध्यान ही नहीं रहा। संध्या रात्रि बनने की तैयारी में लगी थी। शाम ढलने लगी थी। हमने उन से विदा ली। बाहर निकले तो रिक्शा नहीं मिला। मौसम अच्छा था। कुछ महादेवी जी के व्यक्तित्व का प्रभाव था। उमंग में भरे सब पैदल चल पड़े। चलते-चलते सिविल लाइन तक आ गए। वहां से रिक्शा ली और इंस्टीट्यूट पहुंचे। रात अपनी पूरी रोशनी के साथ चांद से इठखेलियां करने में लगी थी।❑

ज्वाला पर्व भी मनाती थीं महादेवी

बापू की अस्थियों को संजीवनी बताकार स्नेह की लिपियों को दलित की उद्दाम शक्ति मानने वाली महादेवी युग–युगांतर के लिए बापू के संपूर्ण जीवन–दर्शन में व्याप्त वैष्णव जन द्वारा पराई पीर को जानने की ओर संकेत करती हैं। महादेवी के लेखन के विभिन्न आयामों पर रोशनी डाल रहे हैं **शेरजंग गर्ग**

छायावाद की अविस्मरणीय कवयित्री महादेवी वेदना, पीड़ा, करुणा की त्रिमूर्ति के रूप में विश्वव्यापी ख्याति पा चुकी हैं। यों उनके प्रेरक, तेजस्वी, दृढ़ एवं अपराजेय व्यक्तित्व की छवियां उनके कवित्व में भी यत्र-तत्र दृष्टिगत हो जाती हैं। महादेवी के प्राय: अन्य परिचित रूप पर विचार करते समय मुझे सन 63 की एक अविस्मरणीय संध्या याद आ रही है।

उस दिन महादेवी जी राष्ट्रपति भवन में सम्मानित हुई थीं। शाम को तत्कालीन केंद्रीय मंत्री एवं काव्यमुग्ध श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा की कोठी के लॉन में एक काव्य संध्या का आयोजन था। इस आयोजन में सर्वश्री दिनकर, बच्चन, शिवमंगल सिंह सुमन, रामावतार त्यागी, वीरेन्द्र मिश्र, देवराज दिनेश जैसी काव्य विभूतियां मौजूद थीं। स्वयं महादेवी जी तो थीं ही। ज्यों ही पंडित जवाहर लाल नेहरू खराम-खराम मंच की ओर अग्रसर हुए, तमाम उपस्थितों की निगाहें उन पर जम गईं। उस समय काव्य पाठ प्रस्तुत करते हुए शिवमंगल सिंह सुमन इतने भाव-विभोर हो गए कि पंडित जी को देखते ही अपनी ये पंक्तियां नेहरू को संबोधित करते हुए सुनाने लगे – ''तुम बूढ़े तो हमें बदलनी यौवन की परिभाषा।'' सारा लॉन तालियों के शोर में डूब गया।

जब सुमन जी ने अपना काव्य पाठ समाप्त किया तो कुछ समय के लिए आयोजन में पधारे पंडित जी बोलने के लिए माइक के पास आए। अपने विशिष्ट मोहक अंदाज में पंडित जी ने कहा – मैं तो यहां महादेवी जी से मिलने, उन्हें देखने आया था। पर अब कहूं तो क्या कहूं ? देख रहा हूं कि वे तो इस वक्त बड़े जोरों पर हैं।'' कहने को पंडित जी कह तो गए। मगर ये शब्द सुनते ही समूचा जनसमूह हंसी की हिलोरों में डूब गया। और दृश्य लगभग ऐसा हो गया कि हंसी की लहरें एक ओर से उठतीं तो दूसरे छोर पर पहुंचकर कुछ ऐसे लौटतीं मानो समुद्र में ज्वार आ गया हो। सचमुच उस दृश्य को शब्दों में बांधना बहुत-बहुत मुश्किल है। हंसी और ठहाकों के उस तूफान में पंडितजी अवाक् और विस्मय विमुग्ध-से खड़े रह गए। आगे बोलना उनके लिए कठिन हो गया। फिर एक भोलेभाले शिशु के समान झेंपते-शरमाते हुए मंच से नीचे उतर गए।

आज से लगभग पैंतालीस वर्ष पूर्व जिन आंखों ने यह दृश्य देखा था, उनमें उसका संपूर्ण सौंदर्य और रोमांच आज भी वैसा-का-वैसा बसा हुआ है। कहना होगा कि यह सब महादेवी जी के कारण ही संभव हुआ था। वे वहां न होतीं तो यह दृश्य उपस्थित होने का कारण कैसे बनता?

महादेवी जी उस समय भी जोरों पर थीं और उससे पहले और बाद भी हमेशा जोरों पर रहीं। हर वैचारिक मोर्चे पर महादेवी जी की ऊर्जा देखते ही बनती थी। आठवें दशक में जयपुर पुस्तक मेले के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कवि सम्मेलनों में उभर आए फूहड़पन, सस्तेपन और निवृत्त मानसिकता की स्थितियों को आड़े हाथों लिया था। उनकी नाराजगी से समस्त साहित्यिक दुनिया में हड़कम्प मच गया था। महीनों तक इस संबंध में प्रतिक्रियाएं देखने में आई थीं। इसी प्रकार अनेकानेक मानवीय विसंगतियों, सामाजिक विषमताओं, व्यक्तिगत कुंठाओं के प्रति कोमलता, वेदना, राग और अनुराग की यह कवयित्री प्राय: अपने तीखे तेवरों का परिचय देती रहती थीं।

कहना होगा कि महीयसी महादेवी मात्र दुख-दर्द, आत्मानुभूति की ही महान कवयित्री नहीं थीं, अपितु परदुखकातरता, कवि के अतिरिक्त समष्टि के सरोकारों से दो-चार होना उनका स्वभाव था। उनके संस्मरणों एवं रेखाचित्रों में उकेर गए गहरे मानवीय संदर्भ उनकी संवेदनशीलता का पुष्ट प्रमाण हैं, जिसे किसी प्रकार की व्याख्या अथवा टीका की दरकार नहीं।

महादेवी के राष्ट्रव्यापी, विश्वव्यापी एवं साहित्यव्यापी सरोकारों का अवलोकन करें तो उनके कई गीत सहज ही सामने आकर खड़े हो जाते हैं। कवींद्र रवींद्र के महाप्रस्थान पर रचित महादेवी का यह गीत सार्वभौमिक संवेदना का उत्कृष्ट उदाहरण है :

यह विदा वेला!
अर्चना-सी आरती-सी यह विदा वेला

* * *

वह चला जिसके पगों ने शूल-फूल बना समेटे
वह चला जिसके दृगों ने सत्य करकर स्वप्न भेंटे
पुलक से क्षण-क्षण बसाए सांस से कण-कण मिलाए
अमर अंकुर साध के चिर व्याप्त के मरु में उगाए
अंक जिसके रह गए बन दीपकों का एक मेला
आज दीपाली हुई उसकी विदा-वेला अमर वेला।

गुरुदेव की मरण-वेला को 'अमर वेला' मानने वाली महादेवी पीड़ा के क्षणों को साहस और धैर्य के क्षण बनाकर नई ऊर्जा को जगाने का काम



हिंदी साहित्य की तीन महान विभूतियां डा. रामकुमार वर्मा, अज्ञेय और महादेवी वर्मा
चित्र महेन्द्र राजा जैन के सौजन्य से

करती हैं। इसी प्रकार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के देहावसान पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए 'बापू को प्रणाम' कविता में महादेवी बापू को धरा का अमर सुत संबोधित करके कहती हैं :

हे धरा के अमर सुत तुमको अशेष प्रणाम !
जीवन के अजस्र प्रणाम !
मानव के अनंत प्रणाम !
* * *
शेष शोणित-बिंदु नत भू-भाल पर है दीप्त टीका
यह शिराएं शीर्ण रसमय कर रहीं स्पंदन सभी का,
ये सृजनजीवी, वरण से मृत्यु के कैसे बनी हैं ?
चिर सजीव दधीचि! तेरी अस्थियां संजीवनी हैं
स्नेह की लिपियां दमित की शक्तियां उद्दाम !
इच्छाबंध युक्त! प्रणाम !

बापू की अस्थियों को संजीवनी बताकार स्नेह की लिपियों को दलित की उद्दाम शक्ति मानने वाली महादेवी युग-युगांतर के लिए बापू के संपूर्ण जीवन-दर्शन में व्याप्त वैष्णव जन द्वारा पराई पीर को जानने की ओर संकेत करती हैं।

दुखवाद की चितेरी के रूप में विश्वविख्यात महादेवी के चुनौतियों को चुनौती देने वाले, स्वपीड़ा को भुलाकर जन-जन की पीड़ा, राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ने और जागरण की अलख जगाने के अनेक उदाहरण उनकी कम चर्चित कविताओं में प्राय: मिल जाते हैं।

इतना ही नहीं, महादेवी जी ने अपने दाम्पत्य जीवन की टूटन में भी खुद को मजबूत बनाए रखा। महादेवी जी के जीवन की वह घटना सचमुच विलक्षण है जिसमें वे डाक्टर वर्मा से अलग होने के बाद दिल्ली में उनके घर जाती हैं और उनका घर देखकर उसे कबूतरों का दड़बा बताकर उपहास करती हैं और डाक्टर वर्मा मंद-मंद मुस्कराते रहते हैं। यही दृढ़ता थी जिसने महादेवी को महीयसी भी बना दिया।

महादेवी की पूर्व प्रतिष्ठित छवि के विपरीत उनकी अनेक कविताएं उन्हें ऊर्जा, प्रतिरोध, आत्म विश्वास, विद्रोह और यथार्थ की कठोर भूमि पर दृढ़तापूर्वक चलने-बढ़ने की घोषणा करती प्रतीत होती हैं। अनेक काव्य पंक्तियां कहती हैं कि नितांत दुख, पीड़ा की स्थितियों में भी न कविता कभी निराश होती है और न कभी नैराश्य का संदेश देती है। आइए, देखते हैं ऐसी कतिपय काव्य पंक्तियां :

दीपक अब रजनी जाती रे!
जिनके पाषाणी शापों के
तूने जलजल बंध गलाए
रंगों की मूठें तारों के
खील वारती आन दिशाएं
तेरी खोयी सांस दिया बन
भू से नभ तक लहराती रे !
* * *
तुम तो हारे नहीं
तुम्हारा मन क्यों हारा है?
कहते हैं ये शूल चरण में रिंधकर हम आए
किंतु चुभें अब कैसे जब सब दंशन टूट गए
कहते हैं पाषाण रक्त के धब्बे हैं हम पर
छाले पर धोएं कैसे जब पीछे छूट गए !
यात्री का अनुसरण करें
इसका न सहारा है!
तुम्हारा मन क्यों हारा है?
* * *
नहीं हलाहल शेष तरल ज्वाला से
अब प्याला भरती हूं
विष तो मैंने पिया, सभी को व्यापी नील कंठता मेरी,
घेरे नील, ज्वार, गगन को बांधे भू को छांह अंधेरी,
सपने जमकर आज हो गए चलती-फिरती नील शिलाएं
आज अमरता के पथ को मैं
जलकर उजियाला करती हूं!

ये और ऐसी अनेक काव्य पंक्तियां सैकड़ों की संख्या में हैं जो जिजीविषा, कर्मठता के साथ-साथ निरंतर जूझते रहने की वांछा का बखान करती हैं। संभवत: यही महादेवी की काव्य क्षमता की समग्रता का प्रमाण है जो उनकी अनुभूतियों को सार्वजनीन एवं अभिव्यक्तियों को सर्वस्वीकार्य बनाती हैं। ❑

महादेवी की काव्य चेतना

महादेवी के लिए कविता का अर्थ करुणा का गीत ही बना रहा / परवर्ती कवियों में जो कविता के प्रयोगवादी–प्रगतिशील और जन चेतनाधर्मी आंदोलन चले महादेवी इन सबसे प्रभावित नहीं हुईं / उन्होंने साहित्य संसद की भी स्थापना की परंतु अपनी टेक कभी नहीं छोड़ी / अपने गीत हमेशा गुनगुनाती रहीं और नई पीढ़ी के गीतकारों को प्रेरणा देती रहीं / महादेवी के रचनाकर्म पर **भारतेन्दु मिश्र**

छायावादी युग अब नहीं रहा। माया की छाया में चलते हुए लोक और परलोक सुधारने की चिंता करने वाला वह काव्य समय भी नहीं रहा। प्रसाद-पंत-निराला और महादेवी भी अब नहीं हैं। यह वर्ष महादेवी वर्मा की जन्मशती के रूप में मनाया जा रहा है। अत: आवश्यक है कि हम ऐसी युगप्रवर्तक कवयित्री और लेखिका का स्मरण करें। यह भी देखने की आवश्यकता है कि महादेवी वर्मा की रचनाओं का प्रदेय किस रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

दुख और करुणा कविता का मूल तत्व है। सदियों से प्राय: दुनिया की सभी भाषाओं में दुख और दुखजन्य व्यंजना ही कविता के मूल में उभरती रही है। महीयसी महादेवी वर्मा दुख और करुणा की बड़ी कवयित्री हैं। उनके गीतों में विरह दग्ध नारी की वेदना बड़े प्रबल ढंग से मुखर होती है। यही कारण है कि आधुनिक आलोचकों ने महादेवी जी को आधुनिक मीरा की संज्ञा दी। रुदन-प्रलाप-जड़ता-मरण आदि विरह की प्राय: सभी दशाएं महादेवी के गीतों में साफ तौर से लक्षित की जा सकती हैं। करुणा और पीड़ा ही उनके साहित्य का स्थायी भाव कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। उनके संस्मरणों में भी अतिश्रद्धा-आदर-प्रेम और दया आदि भाव ही केंद्रीय भूमिका में उभरते हैं। चाहे प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेंद्र प्रसाद जी पर उनका संस्मरण हो या 'गौरा', 'सोना' अथवा 'गिल्लू' जैसे ललित निबंध ही क्यों न हों। संस्कृतनिष्ठ प्रांजल भाषा में लिखे गए उनके संस्मरण भी अपनी शैली के प्रभाव से लंबी कविता के ही रूप में उपस्थित होते हैं। *नीहार-रश्मि-नीरजा-सांध्यगीत* सभी महादेवी के गीत संग्रह हैं। बाद में ये सभी पुस्तकें *यामा* में संकलित की गयीं। सन 1930 में 'नीहार' शीर्षक पहला गीत संग्रह प्रकाशित हुआ। यह वह समय था जब खड़ी बोली हिंदी का गद्य रूप विकसित हो रहा था और कविता में कई विधागत बदलाव उभरने लगे थे। सन 1940 में *यामा* और 1942 में *दीपशिखा* का प्रकाशन हुआ था और सन 1943 में अज्ञेय के संपादन में *तारसप्तक* प्रकाशित हुआ। कविता के ढांचे में प्रवृत्तिगत बदलावों को देखते हुए महादेवी जी ने गद्य की दिशा में अपनी लेखनी को मोड़ दिया।

महादेवी के लिए कविता का अर्थ करुणा का गीत ही बना रहा। परवर्ती कवियों में जो कविता के प्रयोगवादी-प्रगतिशील और जन चेतनाधर्मी आंदोलन चले महादेवी इन सबसे प्रभावित नहीं हुईं। महादेवी जी ने *चांद* का संपादन भी किया। महिला विद्यापीठ प्रयाग की मुख्य आचार्या रहीं। साहित्य संसद की भी स्थापना की परंतु अपनी टेक कभी नहीं छोड़ी। अपने गीत हमेशा गुनगुनाती रहीं और नई पीढ़ी के गीतकारों को प्रेरणा देती रहीं। आधुनिक हिंदी कविता में छायावादी गीत की महारानी के रूप में सदैव महादेवी का स्मरण किया जाएगा-

अपने इस सूनेपन की मैं हूं रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकर / भरती रहती दीवाली।

वेदना और रहस्यवादी आत्मनिष्ठता से दीप्त ये पंक्तियां महादेवी को संतकाल की भक्त कवयित्री मीरा के समकक्ष खड़ा करती हैं। महादेवी के गीतों में दुख के जो अनेक विश्लेषण मिलते हैं वही उनकी कविता की शक्ति या कहें कि वास्तविक पूंजी है। छायावादी युग वैयक्तिकता का आग्रही था अत: महादेवी के गीत व्यक्तिगत दुख से संवाद करते हुए उसी दुख को अपना सहचर बनाते हुए आगे बढ़ते हैं-

तुम दुख बन इस पथ से आना
शूलों में नित मृदु पाटल-सा / खिलने देना मेरा जीवन।

अपने प्रिय को दुख के रूप में आमंत्रित करती हुई कवयित्री शूलों में फूलों-सा अपने जीवन को खिलते रहने का आश्वासन देती है। तात्पर्य यह कि वह अब इस दशा में है जहां दुख ही उसके पथ को प्रशस्त करने वाले हैं। करुण दुख का यह रूप संत काव्य परंपरा के बाद महादेवी के गीतों में ही देखने को मिलता है। यह विरह और दुख की व्यंजना महादेवी के कुछ गीतों में आगे चलकर अत्यंत मार्मिक हो गई है जब वे समस्त जीवन को विरह रूपी समुद्र में खिले हुए कमल के रूप में देखती हैं-

विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात।

प्रारंभ में महादेवी का जो विरह भाव है वह नितांत लौकिक स्वभाव से उत्पन्न हुआ है। सन 1933 में *सरस्वती* में उनका जो गीत छपा था उसमें उनकी भाषा तथा संवेदना का शिल्प सहज लौकिक ही प्रतीत होता है-

मैं मतवाली इधर-उधर प्रिय मेरा अलबेला-सा है
मुझे न जाना अलि उसने जाना इन आंखों का पानी
मैंने देखा उसे नहीं पग ध्वनि है केवल पहचानी
मेरे जीवन में उसकी स्मृति भी तो विस्मृति बन जाती
क्यों यह निर्मम खेल सजनि उसने मुझसे खेला-सा है।

इस लौकिकता से आगे बढ़ते हुए लगातार महादेवी जी व्यष्टि और समष्टि की दूरिया पाटते हुए चलती हैं। उनका केंद्रीय स्वर कभी नहीं बदलता, परंतु विरह जन्य दुख का ताप घटता-बढ़ता है। कवयित्री साध्य और साधन

की एकरूपता का बोध नारी जीवन की विवशता के रूप में व्याख्यायित करती है-

नाश भी हूं- मैं अनंत विकास का क्रम भी
त्याग का दिन भी-चरम आसक्ति का तम भी
तार भी-आघात भी-झंकार की गति भी
पात्र भी-मधु भी-मधुप भी और विस्मृति भी
अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूं
बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं।

अनुभूति की तन्मयता, लयात्मकता और तदनुकूल भाषा, दार्शनिकता और माधुर्य गुण महादेवी की गीति शैली की प्रमुख विशेषताएं हैं। जोगन या बैरागन होने का भाव महादेवी के गीतों में जगह-जगह उभरता है। इस प्रकार के भाव बिंब अन्य छायावादी कवियों तथा उनके बाद के कवियों में प्राय: देखने को नहीं मिलते। कवयित्री अपना परिचय भी देना चाहती है तो वह भी दुख की व्यापक बदली के रूप में पर्यवसित हो जाता है-

विस्तृत नभ का कोई कोना। मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही। उमड़ी कल थी मिट आज चली
मैं नीर भरी दुख की बदली।

विशेषता यही है कि कवयित्री अपने दुखों की बदली के माध्यम से बरसकर अपने दुख ताप को स्वयं विरेचन द्वारा शमित करती है। इस प्रक्रिया में ही वह आनंदित होती है। यहां यह भी स्पष्ट है कि महादेवी जी का काव्य प्रयोजन स्वान्त: सुखाय ही है। वह अपने ही व्यक्तित्व से अपने करुण मनोभाव गीत के माध्यम से प्रकट करती हैं और इसी विरेचन में उनकी कविताई बनती जाती है। कविता के माध्यम से किसी आंदोलन की बात करना उनका उद्देश्य कभी नहीं रहा।

नारी विमर्श के जो बहुत सारे वाद-विवाद हमारे साहित्य में चलते रहे हैं उस दृष्टि से भी हमें महादेवी के गीतों में अभिव्यक्त नारी स्वातंत्र्य को पहचानना होगा। महादेवी जी कहीं भी अपने प्रिय-पति अथवा किसी पुरुष विशेष की आलोचना नहीं करतीं। वे जिस प्रिय से विरह की वेदना सहती हैं उसका अपमान नहीं करना चाहतीं। इसके साथ ही कवयित्री अपने प्रिय के प्रेम को ही अपनी रचनाशीलता का कारण मानती है। "दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना" इस उक्ति को ही सत्य साबित करती हुई महादेवी जी कहती हैं-

लघु हृदय तुम्हारा अमर छंद स्पंदन में स्वर लहरी अमंद
हर स्वप्न स्नेह का चिर निबंध / हर पुलक तुम्हारा भावबंध
निज सांस तुम्हारी रचना का / लगती अखंड विस्तार मुझे
हर पल रस का संसार मुझे।

यहां कवयित्री जिस रस के संसार की बात करती है वह उसके ही रचनाशील सहृदय मन की तृप्ति है। यह तृप्ति और आनंद का आलोक ही कवयित्री को लगातार जीवंत बनाए रहता है। वह उन्मत्त भाव से अपने गीतों को गाती- गुनगुनाती तृप्त होकर अपने जीवन में सुस्थिर होती है। कुंठा का बोध महादेवी की रचनाशीलता में प्राय: नहीं उभरता। कवयित्री के गीतों में दार्शनिक भावबोध से उत्पन्न प्रार्थनाएं तो हैं परंतु उद्धत भौतिकवादी स्वर में की गई आलोचना या शिकायतें नहीं हैं। इन गीतों में वेदना तो है किंतु वेदनाजन्य विद्रोह और आक्रोश के स्वर नहीं हैं। गीत-संगीत के माध्यम से ही कवयित्री प्रार्थना के शिल्प में ही अपना सर्वस्व अपने प्रिय को अर्पित कर देना चाहती है। यहां पहुंचकर कवयित्री का प्रिय कोई व्यक्ति नहीं रह गया है वरन वह तो सर्वव्यापक होकर कण-कण में व्याप्त हो गया है-

नहीं अब गाया जाता देव / थकी अंगुली हैं ढीले तार
विश्व वीणा में अपनी आज / मिला लो यह अस्फुट झंकार।

महादेवी इसी अस्फुट झंकार की कवयित्री हैं जिसका स्वर उनकी आत्मा से निकलता है। महादेवी की कविता की शक्ति उनकी दार्शनिकता तथा प्रणय की करुण मीमांसा में है। छायावादी कविता की प्राय: सभी विशेषताएं महादेवी के गीतों में सहज रूप से लक्षित की जा सकती हैं, चाहे माधुर्य हो या मानवीकरण, दार्शनिकता हो या लयात्मकता, व्यक्ति और समष्टि का समन्वय हो या संस्कृतनिष्ठ भाषिक संरचना- हर प्रकार से महादेवी वर्मा छायावादी युग की महत्वपूर्ण रचनाकार सिद्ध होती हैं।

मूल रूप में करुणा या पीड़ा से उत्पन्न विरेचन ही महादेवी की कविता है। वह नीर भरी दुख की बदली हैं जो आंसुओं के ही रूप में बरसती हैं। इस प्रकार बरस कर ही वह तृप्ति या आनंद का अनुभव कर लेती हैं। संतों और सूफियों ने दुख में सुख की अनुभूति का जो रहस्यमय मार्ग चुना था महादेवी भी उसी मार्ग की पथिक बनी रहीं। अत: यह भी आवश्यक है कि महादेवी की कविताओं को उनकी परिस्थितियों और समय के अनुरूप व्याख्यायित करें। महादेवी जी नारी-शिक्षा तथा स्त्री-जाति के विकास के लिए लगातार प्रयत्नशील रहीं। निराला, मैथिलीशरण, सुभद्राकुमारी चौहान आदि सभी महादेवी के समकालीन रचनाकार कवयित्री को स्नेह देते रहे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी महादेवी जी को छायावादी युग की प्रमुख कवयित्री माना। कालांतर में जैसे-जैसे हिंदी कविता की दिशा बदलती गई, छायावादी काव्य मूल्यों का ह्रास होता गया। गीत भी प्रगीत-नवगीत और जन गीत के रूप में विवेचित किया जाने लगा। समकालीन कविता के कई खेमे बन चुके हैं। इसके बावजूद महादेवी जी के गीतों का ऐतिहासिक महत्व तो सदैव बना ही रहेगा। महादेवी की अधिकांश कवताएं करुणा की कविताएं हैं। उनकी कविताओं से यह भी बोध होता है कि महादेवी को अमरत्व से अधिक नश्वरता से प्रेम है। यही भारतीय नारी का स्वभाव है। डा. विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार-

"उनमें नारी-सुलभ सतर्क संकोच भी है जिससे उनकी कविताओं की दोहरी व्याख्या होती है- कभी उन्हें शृंगारी समझा जाता है कभी रहस्यवादी। वस्तुत: महादेवी की कविताएं भारतीय नारी की मानसिकता की उपज हैं।"

वास्तव में यदि गृहिणी को उसके जीवन की समग्रता में देखा-परखा जाए तो वह पीड़ा और दुख सहकर अपने परिजनों पर ममता ही लुटाती देखी जा सकती है। आम भारतीय नारी पति या प्रिय के विरह में करुण स्वर में आज भी अश्रुविगलित होती मिलती है। इस दृष्टि से महादेवी का जीवन ही करुणा की कविता के रूप में लक्षित किया जा सकता है। समकालीन कविता में गीत-नवगीत-जन गीत आदि की जो परंपरा विकसित हुई है इसका उत्स कहीं न कहीं छायावादी गीत परंपरा से गहरे रूप में जुड़ा है। अत: छायावादी काव्य मूल्यों को गंभीरता से जाने परखे बिना हम समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को यथारूप नहीं समझ सकते। कविता के भारतीय स्वरूप को पहचानने के लिए प्रसाद-पंत और महादेवी के काव्य मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन किये जाने की आवयकता है। निराला पर डा. रामविलास जी के प्रयास से लगातार काम हुआ है। महादेवी वर्मा के दुखवाद को भारतीय पिछड़े समाज की नारी के दुख से जोड़कर देखा जाए तो आज भी उनकी कविताएं प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। ❑

करुणा, मेरे व्यक्तित्व का मूलभाव

महादेवी वर्मा से मजीद अहमद *की बातचीत*

प्रयाग से मेरी पुरानी घनिष्टता थी। उस समय मैंने महादेवी वर्मा को गोष्ठियों, सार्वजनिक कार्यक्रमों अथवा नगर की जनशून्य सड़कों पर पुरानी मोटरकार में जाते हुए प्राय: देखा था। इस बात को कभी सोचा भी न था कि वह कभी मेरी पहुंच के इतनी बाहर होंगी।

डा. जगदीश गुप्त और महादेवी वर्मा से बिना भेंटवार्ता के गांव निवर्तित होना कष्टप्रद था। कई बार निराशा के उपरांत दर्शन के निर्णयात्मक आश्वासन लेकर 17 सी, अशोक नगर पहुंच गया।



मेरे साथ खड़े सदाशिव ने मौन भंग किया, ''दीदी बहुत अच्छी हैं। अगर हम लोगों को चाय समय पर न मिले तो महराजिन की जान खा डालती हैं कि चाय क्यों नहीं मिली?''

इतस्तत: दृष्टि फेंकते हुए मैंने अंगुली के अग्रभाग से एक कोमल पत्ती को छुआ भर था कि पीछे से सबल स्वर गूंजा, ''अरे छुइए नहीं। दीदी नाराज होती हैं। कोई यहां दातून तक नहीं तोड़ सकता।''

श्रीराम पांडेय ने अहाते के चतुर्दिक फैले हरे-भरे वृक्षों और झाड़ियों का क्रमश: अभिज्ञान कराया। बरामदे के आगे विशाल झाऊ का पेड़ था, जिसे प्रथम गवर्नर जनरल राजगोपालाचार्य की पौत्री पारो ने भेजा था। नीम, आम, पपीते के पेड़ और आकर्षक झाड़ियों के इर्द-गिर्द फूलों की चादर-सी बिछी थी। भवन के पीछे मोर व हिरन के खाली घरौंदे थे। दोनानुमा पत्तों वाला कृष्णवट अहाते के एक ओर लहंगे की तरह फैला था। काले-सफेद कुत्ते कुछ सूंघते हुए इधर-उधर घूम रहे थे।

कुछ देर बाद सामने वाले कक्ष से आवाज आई- ''सदाशिव! सदाशिव!''

सदाशिव ने भागकर कक्ष-द्वार खोल दिया। मेरी ओर देखकर बोला, ''आइए, आइए।''

अब मुझे लग रहा था कि तीर्थयात्रा की ही तरह महापुरुषों का भी दर्शन भाग्य या संयोग से ही प्राप्त होता है। मैंने महीयसी महादेवी को प्रणतिपूर्वक प्रणाम करके साक्षात्कार की बात कह सुनाई। देखा, उनका कक्ष भौतिक सुख-साधनों से नहीं वरन सरस्वती, निराला, बुद्ध, गांधी, अनेक देवी-देवताओं की प्रस्तर मूर्तियों और हस्तनिर्मित चित्रावलियों से सुसज्जित था।

''इतनी जल्दी मैं आपको क्या बता सकती हूं। अभी मेरा डाक्टर आता होगा, वह मुझे फांसी देगा।'' कहकर महादेवी जी हंसने लगीं।

वह अनवरत और उन्मुक्त हंसी की तरंग में जैनेन्द्र कुमार के वाक्य को स्मृत कर रही थीं- ''हंसी सर्वथा बात में से निकली हुई नहीं होती। कुछ असम्बद्ध भी होती है।''

महादेवी जी न किसी पर नाराज होती हैं, और न किसी को डांट ही सकती हैं। हां, व्यस्तता के कारण बात को टालना उन्हें अच्छी तरह आता है।

प्रश्न : **सम्प्रति, आप क्या लिख रही हैं?**

उत्तर : इधर कई वर्षों से मैं ऋग्वेद का पद्यबद्ध अनुवाद कर रही थी। अब उसका संशोधन कर रही हूं। बीच-बीच में संस्मरण या कविता लिखती रहती हूं। कभी सोचा था, देश के स्वतंत्र होने पर कर्मसंकुलता से विराम मिल सकेगा, परंतु तब से समस्याएं इतनी उलझती गईं कि अवकाश स्वप्न ही हो गया।

मेरी बहिर्मुखी कर्म-संकुलता के कारण प्राय: लिखने की इच्छा मन का द्वार खट-खटाकर लौटती रहती है। कभी-कभी तो आधे लिखे पृष्ठ, आधे बने चित्र, तूलिका, रंग आदि को ताले में बंद कर देना पड़ता है, जिससे उन्हें देखकर लिखने या चित्र बनाने की इच्छा न जाग जाए।

एक बात और- योजना बनाकर लिखना मेरे लिए संभव नहीं। लेखनी हाथ में लेने पर ही योजना बन जाती है।

प्रायः आरोप लगाया जाता है कि डूबा हुआ लेखक इतना आत्मलीन हो जाता है कि वह सबसे कट ही जाता है?

नहीं, ऐसा होता ही नहीं। सत्य आत्मलीन होकर ही सृजन करता है। महात्मा गांधी इसीलिए मौन हो जाते थे। मौन के उपरांत जब बोलते, तो उसमें बिजली होती थी। वे शक्ति-संचय करते थे, व्रत से, उपवास से। इसके पश्चात वे जो करते थे, उसमें सहस्रों लोग उनके साथ चल पड़ते थे। यदि

---

* महादेवी वर्मा से यह बातचीत जून, 1974 में हुई थी – लेखक

आप अपनी सुख-सुविधा में आत्मलीन हैं, तो कुछ भी संभव नहीं है। किंतु यदि आप समष्टि के सुख-दुख को समेट कर आत्मलीन हैं तो शक्ति-संचय कर रहे होते हैं। गौतम बुद्ध बारह वर्षों तक आत्मलीन रहे। जितने भी धर्म संस्थापक रहे, सभी आत्मलीन रहे। जो प्रख्यात लेखक हुए, वे भी आत्मलीन रहे। आत्मलीन होना ही सत्य को पाने का पहला नियम है। मोती पाने के बाद क्या कोई समुद्र में रह जाता है? मोती पाने के बाद तो वह ऊपर आता ही है। मोती की महार्घता तो बाहर ही है। समुद्र के भीतर तो उसका कुछ मूल्य नहीं। जैसे सीप की और अस्थियां हैं। ऐसे ही वह भी है। बाहर आता है तभी उसकी महार्घता होती है, तभी उसका मूल्य आंका जाता है।

कविता का वास्तविक और मूल स्वर क्या होना चाहिए?

कविता का मूल स्वर उसके उद्देश्य से संबंध रखता है, जिसके विषय में युगों से अनेक विवाद चले आ रहे हैं।

वैसे मेरे विचार में कविता मनुष्य के व्यक्तित्व के अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा रागात्मक अंश की ऐसी सामंजस्यपूर्ण अभिव्यक्ति है, जो उसे अपने समान मानवों से ही नहीं, जीव मात्र की सुख-दुखात्मक स्थितियों से तादात्म्य करने की क्षमता देती है।

लौकिक स्तर पर वह ऐसा जीवनवाद है, जो मानव की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को सृजनात्मक दिशा में मोड़ सकता है। ज्ञान अधिकार देता है-कविता अधिकार का स्वेच्छया विसर्जन है।

कवि अपने युग में जीवित रहता है। अत: अपने युग के वैषम्य और सामंजस्य की पीठिका पर ही उसका युगान्तर तक फैलने वाला भावसत्य स्थापित हो सकता है। वृक्ष के शिखर पर खिला और दिन की प्रथम किरण से अभिषिक्त मधु-सुमनों का गुच्छा जैसे धरती के अंधकार में फैलने वाली जड़ों से जुड़ा है, वैसे ही मनुष्य की चेतना अनन्त लक्ष्य और अलक्ष्य चेतनांशों से जुड़ी हुई है। काव्य का मूल लक्ष्य इसी अव्यक्त बंधन की मर्मानुभूति देता है।

आपके गीतों में इतनी करुणा-विगलित अभिव्यक्ति क्यों है?

कुछ संस्कार और कुछ अनुभूति चिंतन के सम्मिलित प्रभाव से प्राप्त जीवन-दृष्टि के कारण करुणा मेरे व्यक्तित्व का मूलभाव है। हर व्यक्ति को संश्लिष्ट रखने वाला कोई न कोई मूलभाव रहता ही है, जो उसके जीवन को विशेष दिशा की ओर प्रेरित करने की क्षमता रखता है। यह सायास नहीं है, परंतु यह अंध आवेग भी नहीं है।

आपके अधिकांश गीत कल्पना और विचार के आधार पर लिखे गए हैं तथा उनका आलम्बन अलौकिक है, जिसका प्रत्यक्ष रूप में साक्षात्कार पाठक नहीं कर पाता। इस संबंध में आप क्या कहना चाहेंगी?

गीत कल्पना तथा विचार के आधार पर नहीं लिखा जाता। जिस अनुभूति की अभिव्यक्ति गेय कविता में होती है, वह व्यक्ति की निजी और जटिल मानसिक क्रिया है, उसमें अनुभूति के अन्तर्गत स्मृति, अनुमान, भावयित्री कल्पना, भावबोध आदि अनेक मानसिक वृत्तियां कार्य करती हैं। गीत में इसी संश्लिष्ट अनुभूति का सम्प्रेषण होता है, जिसका आधार अलौकिक भी हो सकता है, लौकिक भी।

व्यवहार-जगत् में भी, इन्द्रियों की क्षमता की विभिन्नता और वस्तु

मजीद अहमद



हरदोई (उ.प्र.) जनपद के एक गांव छतनखेरा में जन्म।
'संचेतना', 'चौथी दुनिया' और 'सण्डे मेल' के संपादकीय विभाग से सम्बद्ध रहे।
सम्प्रति, बंधुआ मजदूरों की समस्याओं का अध्ययन।

की विविध स्थितियों के कारण एक व्यक्ति का प्रत्यक्ष दूसरे के निकट उसी मात्रा तथा उसी रूपरेखा में प्रत्यक्ष नहीं होता। सफल गीत वही है जो श्रोता के मन की ऋतु बदल दे। निर्गुणवादियों ने अपने निराकार ब्रह्म की मानसी भावना की है और सगुणवादियों ने अपने साकार इष्ट की परम्परागत रूप-कल्पना की है, परन्तु दोनों के ही मर्म गीत हमें समान रूप से तन्मय कर देते हैं।

आप स्वयं को 'मैं नीर भरी दुख की बदली' क्यों समझती हैं?

समष्टि में अपने आप को लय कर देना ही मैं कवि की मुक्ति मानती हूं। अपनी इस धारणा का उपयुक्त प्रतीक मैंने बादल को ही पाया है, जो धरती को हरा-भरा करके और हर चीज को विकास का वातावरण देकर स्वयं मिट जाता है। इस में दुख किसी व्यक्तिगत अभाव का पर्याय न होकर एक संवेदनशील करुण भाव का ही प्रतीक है।

'दीपशिखा' में चित्र और काव्य का योग किस बात का द्योतक है? क्या आपके चित्र काव्य के पूरक हैं?

एक कविता में अनेक शब्द-चित्र आते हैं, परन्तु रंग-रेखाओं में उनमें से किसी एक को ही साकारता दी जा सकती है। ऐसी स्थिति में चित्र को कविता का पूरक कहना उचित नहीं है। शब्द चित्रों की समष्टि में जो उस समय मन के अधिक समीप होता है, उसी को रंग-रेखाओं में व्यक्त करने का प्रयत्न करती हूं। कभी-कभी संपूर्ण कविता का मूलभाव ही चित्र का आधार बन जाता है। चित्र से रहित रहकर भी कविता पूर्ण होती है। परन्तु कविता के बिना चित्र अज्ञातनामा हो जाता है।

नारी और आधुनिक जीवन-मूल्यों पर आपका अभिमत?

जो आधुनिक समस्याएं समझे और उनके निदान पर विचार कर सके, वह आधुनिक कहे जाने का अधिकारी है। नवीन जीवन-मूल्य नारी और पुरुष दोनों के लिए समान हैं, क्योंकि वे मानव को गरिमा देने वाले गुण हैं। सत्य, अहिंसा, स्नेह, समता, बन्धुत्व आदि न केवल पुरुष के गुण हैं न नारी के। नारी माता होने के कारण मानव-आत्मा की शिल्पी भी है, अत: उसका कर्म क्षेत्र अधिक अंतरंग हो जाता है। भारतीय नारी ही नहीं विश्व भर की नारियों को अपना वर्चस्व प्राप्त करना चाहिए।

सामान्य व्यक्ति के लिए धर्म का क्या स्वरूप होगा?

धर्म मनुष्य की वह नैतिकता है, जो मनुष्य-मनुष्य को समान मानती है और यदि मनुष्य, मनुष्य के समान हो जाता है तो वह व्यक्ति को सबसे बड़ा

धार्मिक बना देती है। बापू भंगी-बस्ती में रहते थे और सम्पूर्ण रूप से धार्मिक थे।

आपने एक समय राजनीति में भाग लिया था। उस समय लगा कि हिंदी की एक महान कवयित्री शायद राजनीति के पंक में फंसने वाली है? राजनीति में आप सफल क्यों नहीं हुईं?

मैं न कभी राजनीतिक दल की सदस्या रही हूं, न किसी दलगत मतवाद के प्रति प्रतिबद्ध। जिस सत्य के प्रति मैं प्रतिश्रुत हूं, वह समग्र जीवन में व्याप्त है। मुक्ति प्रत्येक मानव का और प्रकारांतर से प्रत्येक देश का जन्मसिद्ध उत्तराधिकार है। इस दृष्टि से अपने राष्ट्र के मुक्ति-संघर्ष में अपनी क्षमतानुसार सहयोग देना तो मेरा पवित्र कर्तव्य था, किन्तु स्वतंत्र होने के बाद हमारे राजनीतिक जीवन में भोगवाद को जो महत्व मिल गया है, उसका मैंने निरंतर विरोध किया है। यदि यह असफलता है, तो मैं अपनी ही नहीं, अपने अन्य साहित्यिक बन्धुओं की भी असफलता की कामना करती हूं।

राजकीय और अराजकीय पुरस्कारों के विषय में आपकी धारणा?

(इस प्रश्न का उत्तर मौन ही मिला।)

आज के प्राध्यापक महादेवी की तुलना भक्तिकालीन मीरा से करते हैं और परीक्षा में प्रायः ऐसे ही प्रश्न पूछते हैं। आप उनके औचित्य-अनौचित्य पर कुछ प्रकाश डालेंगी?

(महादेवी जी फिर भी कुछ नहीं बोलीं। मैं सोचता था, वह कुछ उत्तर देंगी, जिससे बातचीत आगे बढ़ सके।)

तभी अचानक पटना से राजनेता साहित्यकार शंकरदयाल सिंह आ गए। कुछ औपचारिकताओं के बाद सारी बातचीत फादर कामिल बुल्के को लेकर होने लगी। महादेवी ने कहा- फादर कामिल बुल्के इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डॉ. धर्मवीर भारती और डॉ. जगदीश गुप्त के सहपाठी थे। उन्होंने *राम-कथा : उत्पत्ति और विकास* (शोध प्रबंध), *मानस-कौमुदी, अंगरेजी-हिंदी कोश* संपादित कीं तथा मेटरलिंक के नाटक *ब्लू बर्ड* का हिंदी रूपांतर किया। जिसमें उनका अध्ययन और परिश्रम निखरा है। वह कभी-कभी दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) के यहां चिरगांव भी जाते थे और मेरे यहां भक्तिन के पास बैठकर लोककथाएं सुनते थे। वैसे वह बहुत शरमीले युवक थे।

कुछ समय पूर्व ज्ञात हुआ कि वे दमा से पीड़ित हैं, परंतु सीलन भरे कमरे में रहते हैं। मैंने संदेशा भिजवाया कि तुरंत कमरा बदलें, नहीं तो मैं स्वयं पहुंचकर उनका सामान हटा दूंगी। तुरंत ही उनका उत्तर आया- ''दीदी से कहो, मैंने कमरा बदल लिया है। अब अच्छा हूं, वे चिंता न करें।''

आज भी जब आकर वे 'मेरी दीदी' कहकर अभिवादन करते हैं तो हम फिर ऐसे छोटे बहिन-भाई हो जाते हैं जो बिछुड़ कर मिले हैं।

महादेवी ने मेरी डायरी में लिखा-

□ *अपने स्रष्टा को अस्वीकार कर देना मनुष्य के हाथ में है, परंतु मनुष्य को अस्वीकार कर देना स्रष्टा के हाथ में नहीं है।*

□ *लिखते समय मुझे अभिव्यक्ति की पूर्णता की ही अपेक्षा होती है - न कीर्ति की, न अपकीर्ति की। मैं भवभूति के 'कालोहि अयं निरवधि, विपुला च पृथिवी' में विश्वास करती हूं।* ❑

पृष्ठ 47 से आगे

स्त्री के सामाजिक इतिहास लेखन के कुछ स्रोत

को ताकतवर बनने से रोकने की साजिश भी है। इसीलिए महादेवी वर्मा इस बात पर जोर देती हैं कि 'पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता' ही स्त्री को समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिला सकता है एवं सामाजिक जीवन की मुख्यधारा को नियंत्रित तथा निर्देशित करने की क्षमता भी।

दरअसल *शृंखला की कड़ियां* मात्र एक पुस्तक नहीं है, बल्कि इसमें स्त्री के सामाजिक इतिहास लेखन के वे स्रोत मौजूद हैं जो स्त्री विषयक इतिहास लेखन की दशा और दिशा को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह अलग बात है कि स्त्री लेखन को लेकर हो रही आज तमाम बहसों के केंद्र में महादेवी वर्मा का लेखन नहीं है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। एक तो महादेवी वर्मा की छायावादी छवि और उसमें भी एक दुखी एवं संतप्त स्त्री की छवि जिसकी तरफ आलोचक मैनेजर पांडेय ने संकेत किया है,पर महत्वपूर्ण बात यह है कि हिंदी प्रदेश के इतिहासकारों अथवा समाजशास्त्रियों ने कभी भी इतिहास लेखन की प्रक्रिया या सामाजिक संबंधों के विश्लेषण के संदर्भ में हिंदी में प्रकाशित सामग्रियों का इस्तेमाल स्रोत सामग्री के रूप में किया ही नहीं। हां, इस प्रसंग में सबाल्टर्न धारा के इतिहासकारों की तारीफ करनी पड़ेगी जिन्होंने हाल के दशकों में हिंदी में उपलब्ध साहित्यिक-गैर साहित्यिक स्रोत सामग्रियों का उपयोग कर मुख्यधारा के इतिहास लेखन पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगाए, चाहे वह शाहिद अमीन, ज्ञानेंद्र पांडेय जैसे इतिहासकारों का गांधी के स्वाधीनता आंदोलन के प्रसंग में आम जन की भूमिका को महत्व देने का प्रयास हो अथवा गौतम भद्र जैसे इतिहासकारों द्वारा 1857 के आम बागियों या निम्नवर्गीय नायकों को राष्ट्रवाद के इतिहास लेखन के केंद्र में खड़ा करने की कोशिश।

यद्यपि इस प्रकार की सामग्रियों के आधार पर इतिहास लेखन का काम करना एक जोखिम भरा काम है क्योंकि ऐसी स्रोत-सामग्रियां शृंखलाबद्ध नहीं होती हैं; पर सच यह भी है कि अभिलेखागारों में उपलब्ध शृंखलाबद्ध स्रोत सामग्रियां का अर्थ, इतिहासकार रणजीत गुहा के शब्दों में, ''काफी कुछ अर्थ संबंधित सरकार या फर्म के अभिप्रायों और हितों से जुड़ा होता है।'' इसलिए यह जरूरी है कि इतिहास लेखन की प्रक्रिया में उन सामग्रियों का इस्तेमाल स्रोत-सामग्री के रूप में किया जाए जो किसी खास ऐतिहासिक समय में सामाजिक मुद्दों या समास्याओं को लेकर लिखी गयी हो।

शृंखला की कड़ियां भी एक ऐसी ही कृति है, जिसमें महादेवी वर्मा स्त्री की पराधीनता और उसके कारणों की तलाश करते हुए ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर स्त्री स्वाधीनता की बातें करती हैं। उदाहरण के लिए, स्त्री की दशा और पराधीनता के प्रसंग में भारतीय सामाजिक व्यवस्था के साक्ष्यों का उल्लेख करती हैं, पश्चिमी तथा पूर्वी देशों में स्त्री स्वाधीनता के लिए हो रहे आंदोलनों की बातें करती हैं और अर्थ-स्वातंत्र्य के सवाल पर पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था को स्त्री की आर्थिक गुलामी के लिए सर्वाधिक जिम्मेवार ठहराती हैं।

यह एक महत्वपूर्ण बात है जो स्त्री के सामाजिक इतिहास लेखन में अहम दस्तावेज की भूमिका निभा सकता है। ❑

महादेवी वर्मा से मिलने का सुख



हम फटाफट महादेवी जी के यहां पहुंचे / समय साढ़े पांच की जगह साढ़े छह हो चुका था / हम अपने पहुंचने की सूचना देकर बरामदे में पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए / करीब बीस मिनट के बाद वे तैयार होकर अपनी बैठक में आयीं / तब हमें भीतर बुलाया गया / हमने अपने जूते बाहर ही उतार दिये / कमरे में प्रवेश किया / देखा, बाएं तरफ पर बिछे मोटे गद्दे के बिस्तर पर विराजमान हैं महादेवी जी / बिल्कुल वैसी ही जैसा चित्रों में देखा था / चश्मा नाक पर आया हुआ / रंग एकदम साफ / खादी की सफेद बार्डर वाली धोती और उस पर शॉल ओढ़े हुए / उन्होंने गरदन उचका कर हमें देखा / हमने झुककर पांव छू लिये /...महादेवी वर्मा के सान्निध्य में बिताए सुखद क्षणों को याद कर रहे हैं **श्याम सुशील**

एक साहित्यकार धर्म के बारे में क्या सोचता है, उसकी नजर में धर्म का सही मायने में क्या अर्थ है, धर्म का विज्ञान, शिक्षा, ज्योतिष और कर्मकांड आदि से क्या रिश्ता है? -इसी तरह के तमाम सवालों को लेकर हम (मैं और मेरे मित्र बसंत) कुछ प्रमुख साहित्यकारों से बातचीत करना चाहते थे। आज से दो-ढाई दशक पूर्व (1980-85 के आस-पास) किसी साहित्यकार से धर्म के बारे में इस तरह की बातचीत करना स्वयं साहित्यकार को ही बड़ा अजीब लगता था, फिर भी हम युवाओं की जिज्ञासा को देखते हुए कई वरिष्ठ साहित्यकार इस बातचीत के लिए तैयार भी हुए। जैनेन्द्र कुमार, हरिवंशराय बच्चन और भवानी प्रसाद मिश्र से मेरी लंबी बातचीत हो चुकी थी। महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर और अमृतराय जी को पत्र लिखकर हमने बातचीत के लिए उनसे समय मांगा था। तभी लखनऊ से अमृतलाल नागर जी का दनदनाता हुआ पोस्टकार्ड आया- 'आ सकते हो।' साथ में उन्होंने यह भी लिखा- "मैं धर्म को हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-मूसाई नहीं मानता। आस्तिकता धारण करने के योग्य है पर नास्तिकता को अधर्म नहीं मानता। धर्म खुदा से जुदा किया जा सकता है मगर इंसानियत से नहीं, खैर इन बातों पर खुले दिल से बहस करने के लिए तैयार हूं।" (अमृतलाल नागर का पत्र, दिनांक 18-11-1985)

नागरजी के पत्र से हमें बहुत बल मिला। इस बीच अमृतराय जी का भी पत्र आ चुका था। उन्होंने भी लिखा था कि इलाहाबाद आ जाओ। 9 दिसम्बर 1985 को हम दोनों अपने इस अभियान पर दिल्ली से निकल पड़े। सबसे पहले हम लखनऊ पहुंचे। नागरजी से मिलना और उनसे बातचीत करना हमारे लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी। लखनऊ से हम लोग इलाहाबाद गए। वहां पहुंचकर हमने तय किया कि पहले महादेवी जी के यहां जाकर उनसे समय ले लिया जाए क्योंकि उनका कोई जवाब हमें प्राप्त नहीं हुआ था। उनके निवास 17-सी, अशोक नगर जाते समय रास्ते में हमें अमृतराय जी का बंगला 'धूपछांह' भी दिखाई पड़ा। खैर, जब हम महादेवी जी के यहां पहुंचे तो सुबह के करीब साढ़े दस का समय रहा होगा। महादेवी जी उस समय भीतर के कमरे में मालिश करवा रही थीं। हमने उनके पास चिट लिखकर भिजवायी, तो उन्होंने हमें साढ़े पांच बजे शाम को मिलने को कहा।



प्रयाग महिला विद्यापीठ

(महिला विश्वविद्यालय)

डा० महादेवी वर्मा
एम० ए०, साहित्य वाचस्पति
उप-कुलपति

निवास :- दूरभाष २१२२
१७-बी, मालवीयनगर

१०६/१५३, विवेकानन्द मार्ग (हीवेट रोड),
इलाहाबाद

दिनांक- 22-12-1984

अभी कुछ अर्थों में कठिन, स्वयम नया जीवनमूल्यों को समझ रहा है, पर, अधिक राष्ट्रों के समान यह भी अर्थ में संघर्ष होता है।

हम कम कहते हैं कि वे, महाविद्यालय की आवश्यकता समझाती है कम उनका अर्थ कठिन होता है। अनुभव कहते हैं कि मूल्य का स्वयम यह विषय यह सुरक्षा नया उनका चाहे है कम उनका, अर्थ स्वयम्भ नया समझा। अब हम कहते हैं सारम में अधिक नया आवश्यक मनुष्य का चाहे है कम यह जीवनमूल्य नया समझा।

पर, किसी का अर्थ में यह समझाया का सहयोग के अर्थ में अनुभव नहीं होता। आवश्यक में यह कम अर्थ में होना चाहे, होता है कि हम जीवन मूल्यों विद्यालय को समझाया नाने लगे जैसे विश्वधर्म, सुविधा अर्थ, होनाई अर्थ।

आवश्यक में सभी समझाओं में कुछ जीवन मूल्य समान में पर यहाँ नाम जैसे यह विचार समाज हो जाती।

विश्व अर्थ के दश स्वरूप का जीवनमूल्य है। सत्य, अहिंसा, अक्रोध क्षिप्तचित्तता, सहिष्णुता, शौर्य, धैर्य, क्षमा, दया आकांक्षा। इनमें से कुछ जीवन मूल्य सभी समान है। इन विशेषताओं को नाती जीवन को व्यवहारिक में देना विद्या के आवश्यकों में यह लक्ष्य है। अहं शून्यता मनुष्य की महत्ता न होने के नाता हरेक में आवश्यक, माने नाते हैं।

महाविद्यालय का स्वरूप नहीं साधुकार, ओजस्वी दृष्टिकोण, आत्मना का उद्योग है। समुद्र की दर यह समुद्र ही है। जैसे ही हम विश्व संस्थाओं अभी अहंता आत्मसात कर दी है, पर अहंता होना अनिवार्य है।

महादेवी

श्याम सुशील के सौजन्य से प्राप्त महादेवी जी का हस्तलिखित पत्र।

अमृतराय जी का घर पास में ही था, सो हम 'धूपछांह' पहुंच गए। अमृत जी से मिले। बातचीत हुई। हमारे पास अभी काफी समय था। कथाकार भैरव प्रसाद गुप्त जी की याद आई और हम उनसे मिलने उनके घर चले गए। गुप्त जी तो पहले धर्म पर बातचीत करने के लिए टालमटोल करते रहे लेकिन जब हमारी बातचीत शुरू हुई तो काफी लम्बी खिंच गई। वहां से हम फटाफट महादेवी जी के यहां लौटे। समय साढ़े पांच की जगह साढ़े छह हो चुका था। हम अपने पहुंचने की सूचना देकर बरामदे में पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए। करीब बीस मिनट के बाद वे तैयार होकर अपने बैठक में आयीं। तब हमें भीतर बुलाया गया। हमने अपने जूते बाहर ही उतार दिये। कमरे में प्रवेश किया। देखा, बाएं तख्त पर बिछे मोटे गद्दे के बिस्तर पर विराजमान हैं महादेवी जी। बिल्कुल वैसी ही जैसा चित्रों में देखा था। चश्मा नाक पर आया हुआ। रंग एकदम साफ। खादी की सफेद बार्डर वाली धोती और उस पर शॉल ओढ़े हुए। उन्होंने गरदन उचकाकर हमें देखा। हमने झुककर पांव छू लिए। उन्होंने बैठने का इशारा किया तो मेरे मित्र उन्हीं के पास तख्त पर और मैं उनके पैरों की ओर नीचे की कालीन पर बैठ गया।

महादेवी जी को हमने अपना नाम बताया। लगा, काफी ऊंचा सुनती हैं। कई बातें तो सुन भी नहीं पा रही थीं। हमने मन ही मन सोचा आखिर प्रसाद, पंत, निराला की सहयात्री आजतक सशरीर लोगों के बीच उठ-बैठ रही हैं, यही क्या कम है! वे अपनी मर्दानी आवाज में बोलीं, "भाई हम तो बीमारी में बुरे फंस गए। गले, कमर में रोज सुबह डाक्टर ऐसा पट्टा बांध जाता है कि पूछो ही मत। न हिल सकते हैं, न डुल सकते हैं। अरे भाई, इन्हें दिखाओ जरा।" (अपने नौकर से कुछ लाने को कहती हैं) नौकर दौड़कर गले का कालर और बहुत कुछ वैसा ही पीठ के लिए ले आता है। महादेवी जी हमें दिखाते हुए बोलीं, "देखो, जैसे लड़ाई में सेनानी नहीं पहनते हैं वैसा ही है।" हंस पड़ीं। हम लोग भी हंसे। और उसके बाद तो बस उनका बुढ़ापा बोलता रहा। रात के साढ़े आठ बजे तक लगातार संस्मरण। नेहरू, इंदिरा गांधी, बापू, रजनीश, महेश योगी, जे.पी., विनोबा सभी के विषय में अपने संस्मरण। हम सुन रहे थे, मजा भी आ रहा था, बोर भी हो रहे थे। बोर इसलिए कि हमारी बातचीत धरी की धरी रह गई। वे सुनती ही न थीं। सुनती भी थीं तो एक-दो बात कहकर फिर वही संस्मरण। उनकी सारी बातों के पीछे एक विचार यह था कि "धर्म आज क्या है, आज का समय क्या है। हमारी पीढ़ी ने बहुत कुछ किया। अब हम आपकी पीढ़ी को वह सब दे देना चाहते हैं पर आपकी पीढ़ी तो किसी और ही तरफ है।"...

तभी उनके यहां की कोई महिला आयीं और टी.वी. खोलकर चित्रहार देखने बैठ गईं। हम लोग हालांकि महादेवी जी से बातें कर रहे थे। वे हमें अपने जीवन के संस्मरण सुना रही थीं मगर उससे उन महिला को कोई लेना-देना नहीं था। टी.वी. पर उस समय एक बड़ा ही भौंडा गीत आ रहा था। हीरो-हीरोइन की चूमा-चाटी। महादेवी जी देखकर बोलीं, "देखिए, आपकी पीढ़ी तो यह सब करती है।" हम लोग खिसियानी हंसी हंसकर चुप हो गए। हालांकि पीढ़ी में सभी लोग एक-से नहीं होते। मगर उनकी बात सत्य थी।

इससे पूर्व, हमसे कुछ ही समय बाद दो सज्जन और आ गए थे। उनमें से एक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर अपने राष्ट्रीय गीतों का संकलन तैयार किया था। वे स्वयं मुस्लिम थे। वे महादेवी जी से उस पुस्तक की शायद भूमिका लिखवाना चाहते थे। उन लोगों के कारण भी काफी समय यूं ही दूसरी बातों में निकल गया। भैरव प्रसाद गुप्त जी ने हमसे कहा था कि महादेवी जी से प्रश्न कीजिएगा फिर उन्हें ही बोलने दीजिएगा। हम बीच में प्रश्न करते फिर देर तक चुप रहते। महादेवी जी बोलती रहतीं। कुछ हमारे मतलब का कुछ अपने संस्मरण। इस बीच उन्होंने हमें जलपान भी कराया। मिठाई और नमकीन खिलाई। कॉफी पिलाई।

हमने उनसे अगले दिन का समय लेना चाहा तो वे बोलीं, "आप लोग शाम चार बजे आ जाइए।" जब हम उनके यहां से निकले तो रात के साढ़े आठ से ज्यादा का समय हो चुका था।

हमने अगले दिन ही बनारस जाने का तय किया था, लेकिन शाम चार बजे महादेवी जी से दुबारा मिलना था इसलिए दिन में हम 'संगम' घूमने चले गए। संगम से लौटे तो अपना सामान आदि पैक करके मय अटैची-बैग के ही उनके यहां ठीक समय पर जा पहुंचे। वहां मालूम चला कि महादेवी जी सो रही हैं और आधे घंटे के बाद उठेंगी। जिन सज्जन से हमें यह सूचना मिली थी, उन्होंने महादेवी जी के हाथ का लिखा हुआ एक कागज हमें पकड़ाते हुए उनका यह संदेश भी दिया कि आप अपनी प्रश्नावली दे जाएं और दिल्ली जाकर एक स्मरण पत्र भी लिख दें। आपका पत्र आने पर वे अपने जवाब दे देंगी।

हमने तुरंत एक कागज पर धर्म से संबंधित कुछ प्रश्न और अपना पता लिखकर उन सज्जन को दे दिया। हमें उम्मीद थी कि महादेवी जी उन प्रश्नों के उत्तर भेजेंगी। काफी दिनों तक हम उनके पत्र का इंतजार करते रहे। स्मरण पत्र भेजने के बाद भी उनका उत्तर हमें नहीं मिल पाया। हो सकता है बढ़ती उम्र (उस समय वे 79 वर्ष पूरा करने वाली थीं) और शारीरिक तकलीफ के कारण उन्हें लिखने का समय ही न मिला हो या डाक की गड़बड़ी के कारण उनका पत्र हम तक न पहुंच पाया हो! खैर, 12 दिसम्बर 1985 को उन्होंने अपने लैटर हैड पर धर्म के बारे में जो कुछ लिखकर हमें दिया था, वह आज भी हमारे पास एक धरोहर की तरह सुरक्षित है। उन्होंने लिखा था :

"धर्म मूल अर्थ में कर्त्तव्य, स्वभाव तथा जीवन मूल्यों को व्यक्त करता है, परन्तु अनेक शब्दों के समान यह एक अर्थ में रूढ़ हो गया है।

हम जब कहते हैं पुत्र को, माता-पिता को आदर देना उसका धर्म है तब उसका अर्थ कर्त्तव्य होता है। जब हम कहते हैं फूल का क्षणभर खिलकर मुरझा जाना उसका धर्म है तब उसका अर्थ स्वभाव माना जाएगा। जब हम कहते हैं सत्य और अहिंसा का पालन मनुष्य का धर्म है तब वह जीवन मूल्य माना जाएगा।

परन्तु किसी भी अर्थ में वह सम्प्रदाय या मतवाद के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। कालांतर में वह एक अर्थ में ऐसा रूढ़ हो गया है कि हम जीवन मूल्य या सिद्धांत को सम्प्रदाय मानने लगे जैसे हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म।

वास्तव में सभी सम्प्रदायों में कुछ जीवन मूल्य समान हैं पर उन्हें जान लेने पर विवाद समाप्त हो जाएगा।

हिन्दू धर्म के दस लक्षण या जीवन मूल्य हैं। सत्य, अहिंसा, अक्रोध, इंद्रिय निग्रह, सात्विकता, शौर्य, धैर्य, क्षमा, दया या करुणा। इनमें से कुछ जीवन मूल्य सब में समान है। इन विशेषताओं को अगली पीढ़ी को उत्तराधिकार में देना शिक्षा के अन्य लक्ष्यों में एक लक्ष्य है। यह गुण समूह मनुष्य की पहचान होने के कारण हर युग में शाश्वत माने जाते हैं।

महाभारतकार का कथन 'नहि मानुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित्' मानवता का उद्घोष है। समुद्र की हर लहर समुद्र ही है। ऐसे ही सब भिन्न संज्ञा वाले धर्म महान मानव चेतना ही हैं, पर यह ज्ञान होना अनिवार्य है।" ❑

मैं नीर भरी...



मैं नीर भरी दुख की बदली!

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हंसा,

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली!

मेरा पग पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न–पराग झरा,

नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय–बयार पली!

मैं क्षितिज–भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिंता का भार बनी अविरल,

रज–कण पर जल–कण हो बरसी
नवजीवन–अंकुर बन निकली !

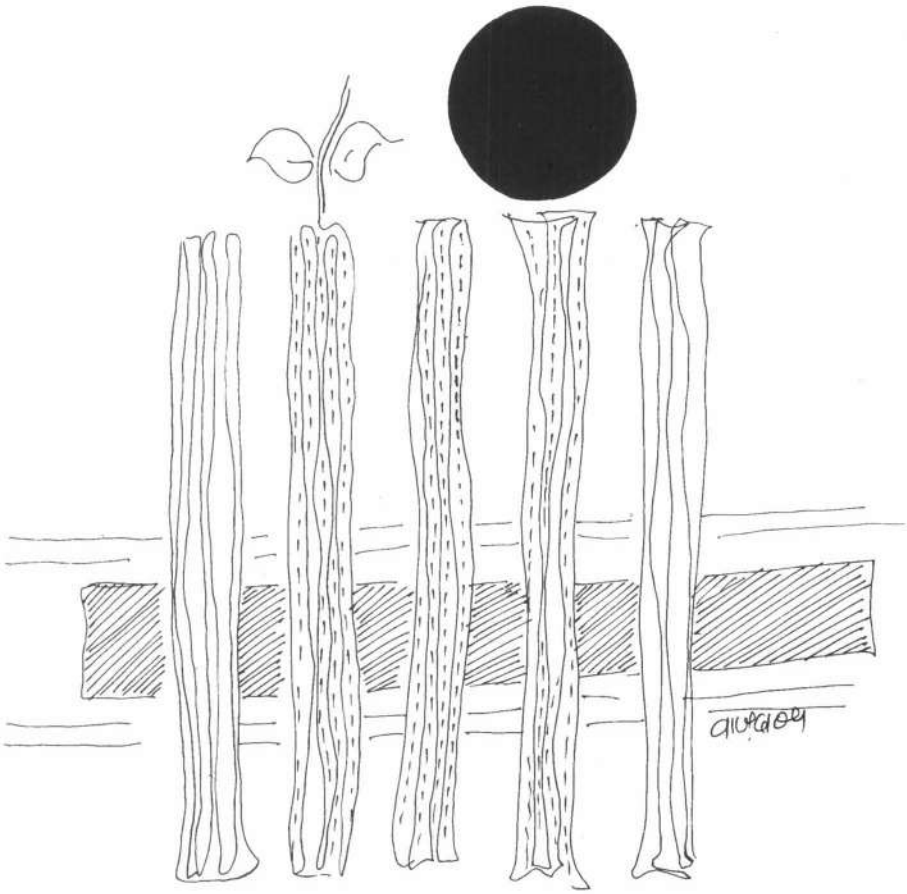
पथ को न मलिन करता आना,
पद–चिह न दे जाता जाना,

सुधि मेरे आगम की में
सुख की सिहरन हो अंत खिली!

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

– महादेवी वर्मा



कविता : **रमेश नीलकमल**

प्रणति स्वीकारो

हे नीर भरी दुख की बदरी!
हे महीयसी ! हे देवि !! प्रणति स्वीकारो।

तुमने दुख का समुद्र झेला
पीड़ा की पीर पहाड़ चढ़ी
करुणा भर–भर कर आंखों से
जीवन जग को सींचती रही

तुम सांध्य–गीत की रश्मि बनी
हे महीयसी ! हे देवि !! प्रणति स्वीकारो।

नीहार, नीरजा, दीपशिखा
कुछ गीत श्रृंखला की कड़ियां
रेखाएं स्मृतियों में उबल रहीं
क्षणदा पथ के साथी घड़ियां

दुख में सुख सुख में दुख सहती
हे महीयसी ! हे देवि !! प्रणति स्वीकारो।

यामा के गीत–वितान खुले
दुख–गीतों का परिवार बना
थीं स्नेहकांक्षिणी कभी स्वयं
पा सकीं न, यह आधार बना

तुम स्नेहमूर्ति, तुम दीपशिखा
हे महीयसी ! हे देवि !! प्रणति स्वीकारो।

जिसने पाया, जिसने खोया
तुम–सी मां, बेटी, बहन और
वह पा न सका सुख जीवन में
जो गया छोड़कर अन्य ठौर

गीतों की प्रांजल सरिता–सी
हे महीयसी ! हे देवि !! प्रणति स्वीकारो।

अक्षर–अक्षर तुम शब्द–शब्द
अपना अतीत आंकती रही
चलचित्र लगे सबको वे ही
सबके मन तुम झांकती रही

दुर्धर्ष भाव, दुर्धर्ष प्राण
हे महीयसी ! हे देवि !! प्रणति स्वीकारो।

तीन कविताएं : **गंगा प्रसाद विमल**

मुश्किल है मुक्ति

उनसे छुटकारा मुश्किल है जो
मुश्किलों में रहते रहे साथ
उन्होंने दिक्कतों को धकेला
मेरे सिहराहने
हमेशा हमेशा के लिए, रख दिया प्यार ।

उन्होंने मेरे कांपते हाथों को
सहेजा और बल दिया, अपनी हथेलियों का
उन्होंने अपने श्रम सधे विश्वास से
गिरने नहीं दिया मुझे
खुद गिरे वे
उठे और चल दिए।

उनसे छुटकना नहीं
उन्होंने मुझे नहीं छोड़ा
छोड़ दी हो दुनिया और धंधे
अपनी आत्मघाती पराजय की
कुछ खबर नहीं छोड़ी, न निशान
वे मेरे लिए छोड़ गए
फूलों घिरा रास्ता ।

अपनी पनीली आंखों से
आखिरी बार देखते हुए
मेरे लिए दुआएं बरसायीं
आंख मूंदते हुए, डिठौना लगाया
अब भी छूट नहीं सकता
उस बंधन से
मुश्किल है मुक्ति ।

मुश्किल है एक मुश्त छुटकार
राह दर राह, पांव के नीचे
जितनी भी जमीन, कुचलता हूं
वहीं उनकी हथेलियों का समतल
उठाता है हवा में
हां–हवा में
सपने में
उठाता है वह स्पर्श जादुई ।

जैसे भी हो

जैसे भी हो
बीतते वक्त में जुड़े कुछ
तिथिवार वर्ष रखें याद वर्षों तक ।

कोई भी जोड़े
व्यक्ति या जुड़े अनायास घटनाओं से
बस बचे दुर्घटना होते–होते
छपा रहे हमारे रहने तक
और बाद में हमारे कथन
उतरते रहें पीढ़ियों में ।

उसी जुड़ाव से फिर जुड़ेगा
वक्त के खाली कदमों में संज्ञाएं
और उन्हें पहचानेंगे लोग, विशेषणों में
यह था ऐसा था वैसा था
और इसी के साथ कि मैं गवाह रहा
या आस पास खड़ा, या मेरे ही होते हुआ
जैसे चमत्कार हो
लोगों दांते तले अंगुली दबाए
निः शब्द घटने दें, जुड़ाव को ।

सदियों के खालीपन को भरने के लिए
एक छोटी–सी चीख दूर तक जायेगी
उसी के नाम से पुकारेगी दुनिया
और उसी के नाम से किंवदंतियां फैलेंगी
अंतरिक्ष से उतर आकर्षित करेगा
वक्त का वह हिस्सा, जो बीत चुका
पर अभी अबीता है संस्मरणों में
और कथनों में ।

जैसे भी हो
जैसे को जैसा
और होने को
होते ही रहना है होते हुए।

कटे पेड़ से

आज तुम कटे हो जड़ों से
कट गए हो अंतरिक्ष से भी ।

कल तक बातें करते रहे, आसमानों से
पहुंचाते रहे संदेश जड़ों तक
दूसरी अंधेरी दुनिया में ।

तुम उजाले से लेकर प्राणवायु
मजबूत करते थे अंधेरा

सदियों के सुन्न भीतर को
पहुंचाते रहे बाहर की खबरें
बाहर की खबरें पाकर ही, जड़ें मजबूत हुईं
और बांधते रहे धरती को कसकर
न उसे हवा उड़ा सकी
न जल बहाव, न भूकम्प

और यही भीतर की खबर थी जिसे
तुमने दिया बाहर
शाखाएं हिला–हिला, खुश किया शून्य को
भर दिया तुमने उजाले में उत्साह
दूर–दूर तक उड़ते पाखी
साक्षी हैं साक्षी इसके।

उसके भी जो अनजाने, तुमसे किया गया
कि अपनी हरी शाखों से
रंग–बिरंगा करते रहे तुम
उजाड़ सूनेपन को ।

आज जब कटे हो
न बाहर हिल रहे हो, न अंदर बढ़ रहे हो

आज तुम आदमी की तरह
दो राहे पर निष्प्राण हो

अनिश्चय के दो राहे, खुले पड़े हैं चारों तरफ
चारों तरफ, चलायमान ऊर्ध्वमूल
खुद काट रहा है खुद को
आसमानी जड़ों से भी
आसमानी सपनों से भी।

दो कविताएं : **देवव्रत जोशी**

फिर...कुमार गंधर्व को सुनते हुए

उसने सुर लगाया...
और यह क्या कि आंगन का
वर्षों निस्पंद पड़ा झूला
हिलने लगा धीरे-धीरे
बरसों से खामोश पड़े सितार और तबले
बजने लगे अनायास ...

फूला नहीं समा रहा बगीचा
कि मौन पदचाप धरती
निकट की टेकरी वाली मां
अपनी मूर्ति से बाहर आ
जाने कब पार्श्व में आ खड़ी हुई
प्रसन्न वदना...

अपने पुत्र और वधू का आलाप सुनने
कि जैसे अंधेरे में
एक दिया राग का
अपने आप झिलमिलाने लगा
सारा आकाश खुश होकर
बरसने लगा झमाझम

एक समूचे ब्रह्माड को
अपने एक फेफड़े में भरकर
वह गा रहा है तन्मय
अपनी सखी वसुंधरा के साथ।

शब्दों और सुरों में नहायी धरती
यमुना-सी हिलकोरें ले रही
वह जैसे 'एको ऽ हम् द्वितीयो नास्ति' का
विनम्र मौन उद्घोष करता
गाता ही जा रहा लगातार...

मैं हैरान :
आखिर क्यूं नहीं सुनते
संसार के राज्याध्यक्ष और
प्रक्षेपास्त्रों के स्वामी
यह करुणामयी, प्यार नहायी आवाज़?

फिलहाल वह टुकड़े-टुकड़े आलाप में गा रहा है
अपने कलेजे के कबीर, मीरा के पद
जिनए झरते अमन और मुहब्बत के निर्झर

आह, इस गलाकाट
गरम मिजाज माहौल में
जब पास ही त्रिवेणी उपल्ब्ध है
लोग आखिर
रक्त के प्यासे क्यों हैं?

वक्त इतना बुरा तो नहीं

फिलवक्त
जब किशोरी अमोनकर गा रही है
और मैं पोती को आम खिला रहा हूं
और निराला का बादल-राग
छिड़ा है आसमान में

भरी-पूरी पृथ्वी
शमशेर के अमन का गीत
पलकों में बंद किए
सोई है चैन से
तो लगता है-
वक्त इतना बुरा तो नहीं...

भूत के पांव पीछे होते हैं
यादों के नहीं
कि लौटता हूं फिर-फिर
रेत की नदी में
जिसकी छाती में बचा है-

अब भी कुछ जल
कि वह मां की स्थानापन्न
और क्या देखता हूं कि मां
आ रही है
कुएं से बेड़े भरकर
कैसा दमक रहा है
मां का पसीने भरा ललाट
और पिता उतार रहे हैं बेड़े
मिट्टी के- सम्हाल कर।

जिन्दा दृश्य हैं ये अतीत के
पीछे लौटना
वर्तमान को नकारना नहीं
पैर देना है भविष्य को।

कि ताजा फूलों पर
उड़ रही हैं ताजा तितलियां
यादों की मछलियां
तैरती हैं आंखों के पानियों में।

पोती चली गई खेलने आम खाकर
किशोरी अमोनकर गा कर मौन हुई
और भरी-पूरी पृथ्वी
सोई है चैन से
अमन का गीत
पलकों में बंद किए।

बादल बरस रहे हैं झमाझम

शमशेर होते तो कहते
हमेशा की तरह-
'देवव्रत!
वक्त इतना बुरा तो नहीं... '

दो कविताएं : **सत्यनारायण**

एक तुम्हारा होना...

बहुत दिनों के बाद
नहीं हो जब
तुम मेरे पास,
बहुत दिनों के बाद
आज फिर
मन हो गया उदास !

जान रहा हूं
यह तो है
बस कुछ हफ्तों की बात
फिर भी, दिन
लम्बा लगता है
लगती लम्बी रात
लगता जैसे
रहा नहीं अब
करने को कुछ खास !

चुप है
चूल्हा–चौका
चुप बर्तन–बसन बोल

आंगन में
अलगनी अकेली
रही हवा में डोल
बड़े सबेरे से
कोने में
बिल्ली पड़ी उपास !

पड़ी मेज पर
जस की तस
चूड़ी, बिन्दी, सिन्दूर
और आईना
अजब नजर से
मुझे रहा है घूर
सुग्गे के सुमिरन में
पहले जैसी नहीं मिठास !

नोंक–झोंक वह
चुहल–चिकोटी
बिना बात की बात
बरसों–बरसों
बीते हैं इस तरह
तुम्हारे साथ
एक तुम्हारा होना
घर में
भरता रहा उजास !

अम्मा की पाती...!

अम्मा ने भेजी है पाती–
बेटा, पंडितजी कहते हैं
तुझ पर है ग्रह साढ़ेसाती !

तेरा शनि है दशम भाव में
चौथे घर में राहु बसा है
जन्म कुण्डली के हिसाब से
काल सर्प की महादशा है
अजब–अजब सपने आते हैं
रात–रात भर नींद न आती !

विध–विधान सब समझाने को
पंडितजी फिर कल आएंगे
बेटा, जी छोटा मत करना
सारे संकट टल जाएंगे
बड़ा महातम है जप–तप का
क्या कर लेंगे ग्रह उत्पाती ?

तेरी खातिर सबकुछ दूंगी
जो भी देना पड़े दान में
हफ्ते भर की छुटी लेकर
बस आ जाना अनुष्ठान में
राजी–खुशी रहे तू बबुआ
ठाकुरी से रोज मनाती।

जान रहा हूं मैं, पड़ोस की
चाची ने बहकाया होगा
उल्टी–सीधी बातें कहकर
अम्मा को भरमाया होगा
वरना खेत बेचने को
अम्मा कैसे राजी हो जाती !

कविता : **निर्मला पुतुल**

तुम कब आओगे

कलाई में बंधी घड़ी पर
बार–बार निगाह डालते–
सोचती रही तुम्हारे ही कहे पर
कि रात्रि के नौ बजे आओगे...
नौ से साढ़े बारह बज गए...

बैठकर तुम्हारे आने की राह देखती रही!
चटाई पर बैठ लिखती रही कविता
गांव–कस्बा सुनसान हो चुके थे
शांत सो चुकी थी सारी दुनिया
सामने पड़ी लैम्प जल रही थी मेरे साथ।

तभी अचानक तंद्रा टूटी
खुला था बाहर पिछवाड़े का दरवाजा
बंद करने से मना कर दिया था
बगाली करने वाले छोटेलाल को
अभी खुला रहने दो बाद में बंद कर लूंगी
तुम सो जाओ।

कभी हल्की आवाज से चौंक उठती
कहीं तुम्हारे दोपहिये की आवाज तो नहीं
थोड़ी देर कान लगाकर सुनती और
पुनः कलम चलाती

पालथी मारकर चटाई पर बैठे–बैठे
अकड़ गई कमर
जलवा दिखाने लगे मच्छर भी
उठ खड़ी हुई कमर सीधा करते
बाहर पिछवाड़े का दरवाजा लगाकर
बैठ गई पुनः चटाई पर।

चुपचाप बैठ कमरे में पड़ी चीजों को
एक–एक कर निहारने लगी
सामने पड़ी कुर्सी और टेबुल
चुपचाप और शांत थे
टेबुल पर रखी पुस्तकें निःशब्द पड़ी थीं
अस्त–व्यस्त थे बिस्तर इंतजार में
दीवारें बिल्कुल खामोश
दरवाजे के ठीक सामने लगे पोस्टर से
महिला की तस्वीर दोनों पलकें बिछाए
अपनी खामोश जुबां से कह रही थी
कि... तुम... कब... आओगे?
मैं सोचती रही तुम्हारे ही कहे पर
कि रात्रि के नौ बजे आओगे
और देखती रही घड़ी को कि
आखिर अब कब आओगे...
कब आओगे?

वह यात्रा अनंत

बल्लभ डोभाल

रेखांकन : संजीव शाश्वती



मेरा नाम ?....

कुछ भी कह लीजिए, मुझे कोई आपत्ति नहीं। लोगों ने तरह-तरह के नाम दिए हैं। एक से एक बढ़कर...एक से एक सुंदर।...पर सुम्मी ने जो नाम दिया वह बहुत प्यारा लगा। उस पहली मुलाकात में उसका कहना कि...आप बंजारों की तरह घूमते ही रहते हैं...और मैंने मान लिया कि मैं किसी बंजारे से कम नहीं हूं। मेरा काम घूमना-फिरना ही रहा है। आज भी बंजारा बन घूमने निकला हूं। मेरी आंखों के आगे फैली हैं हरी बादियां, दूर-दूर तक धानी आंचल ओढ़े खेत, खेतों में काम करती महिलाएं और आसमान छूते पेड़ों की सीधी कतारें। कितना अच्छा लगता है यह सब कुछ।

यह मेरी यात्रा कितनी सुखद है। ऊंची-नीची पहाड़ियों को पीछे छोड़ती मोटर अपने गंतव्य की ओर आगे बढ़ती ही चली जाती है, सीढ़ियां-दर-सीढ़ियां ऊंचाइयों की तरफ। देखकर मन अपना-सा नहीं रह जाता।

'यही चम्बी का पुल है।' मेरी बगल में बैठा यात्री अपने साथी को बताता है। सुनकर चौंक जाता हूं, मेरी तन्मयता भंग हो जाती है। चम्बी की ओर नजरें जाती हैं, जिसका नीला जल चट्टानों से टकराकर दूधिया रंग ले रहा है। नजरें वहीं किनारे जमीन के अंदर डूबते पत्थर पर ठहर गई हैं। तब इसी पत्थर पर सुम्मी चुपचाप बैठी रही और मैं उससे कहता रहा कि "नीचे उतर आओ! सड़क पर लोगों का आना-जाना है, वहां कोई तुम्हें देख लेगा।"

"यहां कोई नहीं आता।" उसका उत्तर है।

"भले कोई न आए, पर किसी ने देख ही लिया तो?"

"तो क्या! ... मेरी चिन्ता क्यों, आप अपनी बात कहें, जिसके लिए इतनी दूर आना हुआ है।"

"बात कोई नहीं, कुछ देर तुम्हारा साथ पाने के लिए" तुम्हें देखना...सिर्फ देखते रहने की बात थी।"

सुम्मी मुस्कुरा देती है। इस घाटी में वह मुस्कान आज भी ताजा हुई लगती है। तब सुम्मी के लिए मैं बिल्कुल अपरिचित था, एक अनाम, अनजान। जो गार्मियों के दिन कहीं पहाड़ पर बिता

लेता है। पिछली गर्मियों में जब यहां आना हुआ तभी उससे मुलाकात हुई थी, एक दिन की मुलाकात...कहना चाहिए एक क्षण की मुलाकात। उसका कहना कि यदि आपको देखकर मैं हंसी न होती तो मेरे लिए आप अनजान ही होते।

"फिर तुम हंसी क्यों?"

"इसलिए कि गर्मियों में भी आप पुलओवर लटकाए चले जा रहे थे।"

"तो इसमें हंसने की क्या बात थी।"

"बात कोई नहीं, हंसने का बहाना तो था।"

"तुम्हें बहाना मिला, पर मुझे मालूम है, कई बार इस मौसम में पहाड़ों पर ठंड उतर आती है।"

"आपको कैसे मालूम कि ठंड आ पड़ती है?"

"मैं पहले यहां आ चुका हूं और अब पूरे दस वर्ष बाद ही आना हुआ है।"

"तो दस वर्ष पुरानी बात है, तब मैं छठी क्लास में पढ़ती थी।"

"और अब?"

"अब पढ़ाती हूं।"

पिछली यादों में इस तरह डूब गया कि आगे की कोई खबर न रही। सड़क के किनारे खड़े पत्थर से पता चला कि अब अपना सफर पूरा हो चला है। सुम्मी से मिलने की उत्सुकता ही मन में भर आई है। यही बरसात का मौसम...घाटी में उमड़ते बादलों की तरह पिछली यादें बरसात के इन्हीं कारे-कजरारे बादलों ने उसे खत लिखने के लिए मजबूत किया होगा। अपने खतों में वह लिखती है कि- मुझे बरसात का मौसम बहुत अच्छा लगता है, जाने क्यों! बस हिमाच्छादित पहाड़ों के गले-गले तक घूंघट काढ़ती सफेद-काली मनचली घटाएं मुझे व्याकुल कर जाती हैं। कभी धुले हुए सुंदर हरे-भरे वृक्ष सावनी हवाओं में अलमस्त झूमते हैं तो कभी अनायास किसी विरहिणी की आंखों की तरह, किसी अपने की याद में छम-छम करते आंसुओं जैसी ये बरसाती बूंदें मन को बेकाबू कर जाती हैं। आज भी सुबह दो घंटे खुलकर बारिश हुई है। मौसम शीशे की तरह साफ हुआ है। मन तरसता है, आप यहां होते तो कहीं घूमने चल देते। लेकिन आप जैसा साथी यहां कहां मिले। बहरहाल अब तो आपके आने की अविकल प्रतीक्षा है।...

पहाड़ों पर शाम की परछाइयां उतर आई हैं। यात्री अपना सामान समेटने लगे हैं। अपनी अटैची पर जमी धूल को रूमाल से झाड़ लेता हूं। बाल बेतरतीब बिखर गए हैं, उन्हें संवारता हूं। धीरे-से आखिरी मोड़ काटती मोटर स्टैंड पर जा खड़ी होती है।

अगली सुबह कदम अपने आप बस्ती की ओर चल पड़ते हैं। पहाड़ी के आखिर छोर वाली बस्ती की ओर इशारा कर सुम्मी ने बताया था कि वहीं मेरा घर है। पिछली बार चाहते हुए भी वहां जाना न हो सका। ऐसी एकांत बस्तियों में किसी का घर ढूंढ लेना मुश्किल नहीं। कुछ ही देर बाद मैंने स्वयं को उसके आंगन में खड़ा पाया। तभी सुम्मी जैसी एक मूरत वहां दरवाजे पर आ खड़ी हुई। पर सुम्मी के बारे में उसने कुछ नहीं बताया। कई तरह के बहाने बनाकर वह बात को टालती रही...और अंत में यह कहकर कि- मुझे जरूरी काम से बाहर जाना है, उससे मिलना हो तो कल आइए। वह भीतर चली गई।

सुनकर चुपचाप अपने ठिकाने वापस लौट आता हूं। बेसब्री के साथ कल के आने का इंतजार है। सुम्मी से अब कुछ भी दूरी नहीं। यादों के ताजा रहते दूरी महसूस नहीं होती। उसने भी पूरी तरह मुझे यादों में बनाए रखा है। लिखती है- 'आपके खत और पिछली यादें मेरे पास सुरक्षित हैं जो मेरे दुख-सुख के साथी बने हैं लेकिन यादों का जीना भी कोई जीना हुआ?... छुपाना चाहकर भी अब इस नादान दिल की मायूसी को बताना ही होगा कि आज कई दिनों के बाद आपके खतों को पढ़कर इन बेबस आंखों से दुख के आंसू झर-झर पड़े। आज मौसम भी तो मेरे साथ रो पड़ा है। बेरहम ने अपने दिल की तड़प को तूफानी हवाओं और बेइंतहा बारिश के रूप में निकाल फेंका है, पर मैं क्या करूं?... काश! मुझ में भी वह शक्ति होती। चाहते हुए भी अपने जज्बातों, आहों को दबाए रखना पड़ता है। लोगों के लिए ये बातें हंसी का कारण बनती हैं, पर आप तो जानते हैं।... बस, यों समझ लीजिए कि इस जीवन में आपके सम्पर्क में आकर मैंने जो कहीं फूलों की मुस्कान देख ली है, कहीं दूधिया झरनों का संगीत स्वरों में बहना देख लिया है तो कोई अपराध तो नहीं किया। ये दृश्य कहीं भुलाए जा सकते हैं ?... जीवन के लम्बे सफर में यदि कहीं कोई मोड़ आ जाए तो अच्छा लगता है।... मुझे इस बात का गम नहीं कि हम पहले क्यों नहीं मिले, इस बात की खुशी है कि हम मिले देर से, पर एक-दूसरे से जाने-पहचाने की तरह। अब इस दोस्ती के हाथ को कभी न छोड़ना।... कब आ रहे हैं, बेसब्री के साथ आपके आने का इंतजार है।...

इस तरह सुम्मी के संपर्क में आने पर पहली बार महसूस हुआ कि प्रेम कोई जिस्मानी चीज नहीं है। जिस्मों तक आते-आते उसका रंग फीका पड़ जाता है। प्रेम का रंग तो जज्बातों से ही निखरा है। सुम्मी सुंदर है, उसकी सुंदरता में चार चांद लगा देने वाली उसकी बातें हैं, जो मुझे यहां खींच लाई हैं। पिछली यादों को समेटते-सोचते कब रात बीत गई, पता न चला... और सुबह होते ही मैं उसके द्वार पर जा पहुंचा।

सुम्मी की जगह आज भी वही मूरत दरवाजे पर आ खड़ी हुई। इस बार जाते ही मैंने उसका नाम पूछ लिया।

"मुझे संध्या कहते हैं।"

"नाम तो अच्छा है, पर काम का पता नहीं।" मैंने कहा।

"मतलब ?" उसका नीरस शब्द कानों में पड़ा।

"मतलब यह कि सुम्मी के बारे में कल तुमने बताया नहीं, इसलिए दुबारा आना पड़ा है।"

"आना पड़ता है, ... दीदी के बारे में जानना चाहते हैं तो पहले आप ही बताइए ... उससे क्या काम आ पड़ा है ?"

सुनकर सकते में आ गया। आशिकी का मजा ही किरकिरा हो गया। मैंने कहा, "काम तो कुछ खास नहीं, इधर आना हुआ तो सोचा, उससे भी मिलता चलूं।"

"लेकिन दीदी तो यहां नहीं है।"

"तब कहां है?"

"वह सिक्किम चली गई है, अब वे लोग वहीं रहेंगे।"

"उसके सिक्किम जाने की बात तुमने कल ही बता दी होती, पर बार-बार पूछने पर भी तुम बात को टालती रही हो। लगता है उसके बारे में तुम कुछ भी बताना नहीं चाहती।"

इधर-उधर नजरें घुमाते संध्या बोली, "कल ही उसके यहां न होने की बात बता देती तो आपको निराश होना पड़ता। मैंने सोचा, खुद ही कहीं आपको इस बात का पता चल जाता तो अच्छा होता।"

शेष पृष्ठ 72 पर जारी

महादेवी वर्मा का उजला और निखरा गद्य

साहित्य के इतिहास में महादेवी के समान मौलिक चिंतनशीलता और विशद कल्पना के उदाहरण कम ही मिलेंगे / भावना, विचार और चिंतन के क्षेत्र में उनकी जैसी प्रौढ़ और आत्मविश्वासी नारी का मिलना कठिन है / वे आस्था, आनंद और सौंदर्यमय जीवन की गायिका रही हैं / महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व पर **राजेन्द्र उपाध्याय**

"साहित्य को उसकी बाह्य रूपात्मकता में तौलना-नापना सहज है। किसने कितने उपन्यास लिखे, किसने किसके नाटक, कितने महाकाव्यों का परिमाण क्या है, किसके गीतों की संख्या कितनी है, किसकी शैली कैसी है, किसका छंद कैसा है, आदि में जो तौल-नाप है वह साहित्य की आत्मा को नहीं तौलता-नापता। ऊंचे-नीचे कगार या सूखे-हरे तट नदी की सीमा बनते हैं, पर नदी नहीं बना सकते। इतना ही नहीं, साहित्यकार की सभी उपलब्धियां भी समान नहीं होतीं। गोताखोर समुद्र के अतल गर्भ से न जाने कितने शंख, घोंघे, सीप, सेवार आदि लाकर तट पर ऊंचा पहाड़ बना देता है। यह भी उसकी उपलब्धि ही कही जाएगी, पर उसके अनेक प्रयासों का एक मूल्यांकन मोती की उपलब्धि मात्र है। केवल महान जीवनद्रष्टा साहित्यकार की ही हर उपलब्धि का महत्व होता है।"

ये बात महादेवी ने विश्व कवि रवींद्रनाथ ठाकुर के बारे में लिखी है, लेकिन यही बात उनके साहित्य पर भी अक्षरश: लागू होती है। न तो उन्होंने कोई उपन्यास लिखा, न कहानी ही लिखी, न कोई नाटक उनके नाम है, फिर भी वे 'गद्यं कवीनां निकषं वदंति' उक्ति को चरितार्थ करती हैं। वे श्रेष्ठ गद्यकार है। गद्य में भी उन्होंने कविता के मर्म की अनुभूति कराई। उन्होंने रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत लिखे तो दूसरी ओर संपादकीय, भूमिकाएं, निबंध और अभिभाषण लिखे – पर सबमें जैसे जीवन का संपूर्ण वैविध्य समाया है। बिना कल्पना और काव्य रूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में कितना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी को पढ़कर ही जाना जा सकता है।

महादेवी ने विपुल गद्य लिखा, उनके जितना विपुल गद्य तो सुमित्रानंदन पंत और मैथिलीशरण गुप्त ने भी नहीं लिखा। निराला और प्रसाद को छोड़ दें तो उनके जैसा गद्य किसी के पास नहीं है। साहित्य के इतिहास में महादेवी के समान मौलिक चिंतनशीलता और विशद कल्पना के उदाहरण कम ही मिलेंगे। भावना, विचार और चिंतन के क्षेत्र में उनकी जैसी प्रौढ़ और आत्मविश्वासी नारी का मिलना कठिन है। वे आस्था, आनंद और सौंदर्यमय जीवन की गायिका रही हैं। दर्शन, अध्यात्म तथा काव्य उनके यहां एकरस होकर किस महारस की रचना करते हैं, वही रस उनके काव्य की अपनी उपलब्धि है।

महादेवी वर्मा का जन्म होली के दिन 1907 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ था। उनकी शिक्षा 1912 में इंदौर के मिशन स्कूल से प्रारंभ हुई थी। घर पर पढ़ाई के लिए एक पंडित, एक मौलवी, एक चित्रकला शिक्षक तथा एक संगीत शिक्षक रखा गया। कुछ समय के लिए उनकी पढ़ाई स्थगित कर



श्रीमती महादेवी वर्मा बी.ए. (1933)

दी गई और 1916 में उनका विवाह कर दिया गया। विवाह भी ज्यादा नहीं चल सका और वे आजीवन अकेली रहीं। इलाहाबाद के क्रास्थवेट कॉलेज में 1919 में सुभद्राकुमारी चौहान के साथ पुन: शिक्षा आरंभ हुई। 1921 में मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पूरे प्रदेश में प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति मिली। 1925 में इंट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। 1926 में इंटर की परीक्षा पास की। 1929 में बी.ए. किया। 1930 में गंभीर रूप से बीमार होने के कारण साल भर के लिए पढ़ाई छोड़नी पड़ी। इलाहाबाद में पहली बार प्रथम अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें कलावती कोकिल और सुभद्राकुमारी चौहान सहित अनेक जानीमानी कवयित्रियों ने भाग लिया। 1932 में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. किया। प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्रधानाचार्य का कार्यभार संभाला और *चांद* पत्रिका का संपादन शुरू किया। *चांद* का फांसी अंक और महिला विशेषांक उल्लेखनीय है और इनमें लिखे महादेवी के संपादकीय भी। 1933 में इलाहाबाद में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर आए और उनसे मुलाकात करके उनके व्यक्तित्व से महादेवी बहुत प्रभावित हुईं।

मीरा जयंती का शुभारंभ किया। *नीरजा* काव्य संग्रह पर सीताराम सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1933 में ही कलकत्ता गईं और वहां जापानी कवि योन नागूची के स्वागत समारोह में भाग लिया। शांतिनिकेतन जाकर गुरुदेव से फिर मुलाकात की। 1936 में नैनीताल के पास रायगढ़ में 'मीरा मंदिर'

नामक एक भवन बनवाया। 1942 में *विश्ववाणी* के बुद्ध अंक का संपादन किया। 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की। 1943 में 'स्मृति की रेखाएं' पर महावीर प्रसाद द्विवेदी पदक प्राप्त हुआ। 1944 में हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' मिला। 1945 में प्रयाग में रसूलाबाद में गंगा किनारे साहित्यकार संसद के लिए एक भवन खरीदा। वहां सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के रहने की व्यवस्था की। निराला जैसा पंछी वहां से भी उड़ गया। 15 अप्रैल 1933 को प्रयाग महिला विद्यापीठ में अखिल भारतवर्षीय 'महिला कवि' सम्मेलन का आयोजन किया तब तक 'कवयित्री' शब्द प्रचलन में नहीं आया था। 1950 में साहित्यकार संसद की ओर से अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन तथा साहित्य-पर्व का सफल आयोजन किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा साहित्यकार संसद में 'वाणी मंदिर' का शिलान्यास कराया। प्रसाद जयंती पर भव्य समारोह किया। 1952 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या चुनी गईं। दिल्ली में साहित्य अकादेमी की स्थापना हुई और वे इसकी संस्थापक सदस्या चुनी गईं।

1955 में साहित्यकार संसद के मुखपत्र *साहित्यकार* का प्रकाशन शुरू किया और श्री इलाचंद्र जोशी के साथ इसका संपादन किया। साहित्यकार संसद के तत्वावधान में उत्तरापथ (ताकुला) नैनीताल में अंत:प्रादेशिक साहित्यकार शिविर का एक माह के लिए आयोजन किया। प्रयाग में नाट्य संस्थान 'रंगवाणी' की स्थापना की। 1956 में भारत सरकार ने पद्मभूषण उपाधि प्रदान की। 1960 में सर्वसम्मति से प्रयाग महिला विद्यापीठ की कुलपति चुनी गईं। 1963 में तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन ने अभिनंदन किया। 1966 में षष्ठिपूर्ति पर साहित्यकारों की ओर से कविवर पंतजी ने संस्मरण ग्रंथ भेंट किया। 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने मानद डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया। 1976 में उत्तर प्रदेश सरकार ने 15 हजार रुपये का विशिष्ट साहित्य पुरस्कार दिया। 1977 में कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल ने डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की। 1980 में दिल्ली विश्वविद्यालय ने भी डी.लिट्. प्रदान की। बिहार सरकार ने विशेषरूप से सम्मानित किया। 1981 में साहित्य अकादेमी की महत्तर सदस्यता (फैलोशिप) प्राप्त हुई। 1982 में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ ने प्रथम 'भारत भारती' पुरस्कार दिया। 1983 में महादेवी के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार की नियमावलि में संशोधित करना पड़ा। पहले ये किसी एक कृति पर दिया जाता था। महादेवी को *यामा* और *दीपशिखा* के लिए डेढ़ लाख का ज्ञानपीठ पुरस्कार ब्रिटेन की प्रधानमंत्री लौहमहिला मार्गरेट थ्रेचर ने प्रदान किया। 1984 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने डी.लिट्. की उपाधि दी। 11 सितंबर 1987 को महादेवी का महाप्रयाण प्रयाग में हुआ। 1988 में मरणोपरांत भारत सरकार ने पद्मविभूषण प्रदान किया।

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की महादेवी सच्चे अर्थों में 'प्रतिनिधि' हैं। वे छायावादी, रहस्यवादी कवयित्री से अलग एक सांस्कृतिक कवयित्री हैं, जिसमें सर्जनात्मक काव्य की सरसता और चिंतनात्मक दर्शन की गंभीरता दोनों समान रूप से मिलते हैं। वे स्नेह, मैत्री और करुणा की कवयित्री हैं। मधुर-मधुर जलने वाले दीपक के समान युग-युग, प्रतिक्षण, प्रतिपल अपने उसी प्रियतम के पथ को आलोकित करते हुए मानवमात्र, जीवमात्र को आलोकित किया। महादेवी ने जीवन में साधना को महत्व दिया। व्यापक सत्य का साक्षात्कार किया और उसी ऊंचाई पर जाकर वे लिख सकीं।

स्मृति की रेखाएं और *अतीत के चलचित्र* पुस्तकों में महादेवी ने स्मृति के आधार पर अमिट रेखाओं द्वारा अत्यंत सहृदयतापूर्वक जीवन के विविध रूपों को चित्रित कर उन पात्रों को अमर कर दिया है जो समाज के निचले वर्ग से आते हैं। इनमें गरीब-गुरबे विपन्न लोग हैं। यहां छायावादी कवयित्री एक प्रगतिशील, एक जनवादी साहित्यकार बन जाती हैं। उन्होंने जनवाद का कोई नारा नहीं लगाया फिर भी उनकी इन गद्य रचनाओं में जनवादी तेवर मिलते हैं। उन्होंने गांव गंवई, निर्धन, विपन्न लोगों, बाल-विधवाओं, विमाताओं, पुनर्विवाहिताओं तथा कथित पतिताओं, भ्रष्टाओं और वृद्धविवाह के कारण प्रताड़िताओं के अत्यंत सशक्त और करुण चित्र खींचे हैं। उनका सहानुभूतिपूर्वक और करुणात्मक स्पर्श नारी होने के कारण केवल नारियों तक ही सीमित नहीं रहा है बल्कि उन्होंने अपनी करुणात्मक तूलिका से उपेक्षित पुरुष वर्ग का भी चित्र खींचा है। रामा, घीसा, अलोपी और बदलू के रेखाचित्र उनके असाधारण मानवतावाद की ओर ही इंगित करते हैं।

महादेवी ने अधिकांश रेखाचित्रों में निम्नवर्गीय पात्रों की विशेषताओं, दुर्बलताओं और समस्याओं का चित्रण किया है। सेवक रामा की वात्सल्यपूर्ण सेवा, हरिजन सबिया की पति-परायणता और सहनशीलता, घीसा की निश्छल गुरुभक्ति, साग-भाजी के विक्रेता अंधे अलोपी का सरल व्यक्तित्व, कुंभकार बदलू तथा रधिया का सरल दाम्पत्य प्रेम, पहाड़ की रमणी लक्षमा का महादेवी के प्रति अनुपम स्नेह-भाव, वृद्ध भक्तिन की प्रगल्भता तथा स्वामी भक्ति, चीनी युवक की करुण मार्मिक जीवन-गाथा, पहाड़ों का कुली जंगबहादुर तथा उसके भाई धनिया की कर्मठता आदि अनेक अविस्मरणीय चरित्रों को उन्होंने अपने रेखाचित्रों में अमर कर दिया है। सभी स्मृति-चित्र इसीलिए इतने जीवंत हैं कि उन्होंने उन्हें अपने जीवन से अपने भोगे हुए यथार्थ से उठाया है।

इनमें उनके अपने जीवन की विविध घटनाओं एवं उनके चरित्र के विभिन्न अंशों को स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को ज्यों का त्यों यथार्थ रूप में अंकित किया है। महादेवी के रेखाचित्रों में चरित्र-चित्रण का प्राधान्य रहा है, कथानक तो केवल ढांचा मात्र है। चरित्र की मुख्य विशेषताएं उभारना ही उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। उनके इन रेखाचित्रों में गंभीर लोक दर्शन मुखरित हुआ है। जो लोग महादेवी को केवल छायावादी-वायवीय कवयित्री कहकर ही खारिज कर देना चाहते हैं उन्हें महादेवी की इस लोकचेतना, जन चेतना को समझना चाहिए। अपने रेखाचित्रों में उन्होंने जनता से जुड़ी समस्याओं को उठाया है। आम नर-नारी की चिंताएं यहां प्रमुखता से उभरी हैं। यहां महादेवी जनवादी चेतना से लैस हैं। उनकी *पथ के साथी* पुस्तक भी उनके समकालीन रचनाकारों को समझने में अच्छी मदद करती है। संभवत: महादेवी की इस पुस्तक से प्रेरित होकर ही अज्ञेय ने बरसों बाद अपने समकालीनों पर *स्मृति लेखा* पुस्तक लिखी थी। महादेवी ने *पथ के साथी* में जिस सम्मान और आत्मीयतापूर्ण ढंग से अपने समकालीनों का जीवन-दर्शन और स्वभावगत महानता को स्थापित किया है, वह अपने आपमें एक उपलब्धि तो है ही – इससे उनका अपना जीवन-दर्शन और स्वभावगत महानता भी उजागर हुई है। *पथ के साथी* में उनके समकालीनों के संस्मरण भी हैं और महादेवी द्वारा पढ़े गए कवियों के जीवन पृष्ठ भी। उन्होंने साहित्यकारों की निकटता, आत्मीयता और प्रभाव का काव्यातमक उल्लेख किया है और उनके समग्र जीवन-दर्शन को परखने का प्रयत्न किया है। *पथ के साथी* में कवींद्र रवींद्र, दद्दा मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, सुभद्राकुमारी चौहान तथा सियाराम शरण गुप्त की जीवन रेखाएं शब्द-चित्र के रूप में सामने आई हैं।

महादेवी का गद्य जीवन की आंच में तपा हुआ गद्य है। निखरा हुआ, निथरा हुआ गद्य है। 1956 में लिखा हुआ उनका गद्य आज पचास साल बाद भी प्रासंगिक है। वह पुराना नहीं पड़ा है। ❑

महादेवी का नारी विषयक चिंतन

भले ही आज राजनैतिक और सरकारी आरक्षण के लाभ से नारी की सामाजिक छवि बढ़ी हो, किंतु उसकी अपने परिवार के भीतर की स्थिति में कोई खास अंतर नहीं आया है / इस दृष्टि से महादेवी का नारी चिंतन कई अर्थ रखता है क्योंकि उनका नारी चिंतन उस आधे नागरिक जीवन का चिंतन है, जो मात्र पुरुष को कटघरे में खड़ा नहीं करता है / वस्तुत: महादेवी का नारी चिंतन किसी प्रकार की प्रभुता की आकांक्षा नहीं करता बल्कि इसका स्वर नपा-तुला और सामंजस्यपूर्ण है / नारी की सामाजिक स्थिति पर महादेवी के चिंतन की विवेचना **जगत सिंह बिष्ट** ***द्वारा***

महादेवी जी हिंदी साहित्य का विलक्षण व्यक्तित्व है। इनका साहित्य-व्यक्तित्व बहुआयामी है। क्योंकि वह महादेवी द्वारा सृजित काव्य, रेखाचित्र, निबंध और आलोचना साहित्य से निर्मित हुआ है। वस्तुत: इनके द्वारा सृजित साहित्य की दो धुरियां हैं। एक धुरी उनका काव्य है जिसमें करुणा और वेदना की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है। दूसरी धुरी गद्य साहित्य है, जिसमें उनकी सामाजिक यथार्थ दृष्टि एवं सामाजिक चिंतन धारा है। कहना यह है कि इनका काव्य एवं गद्य साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं क्योंकि इनके काव्य की करुणा और वेदना ही महादेवी के गद्य साहित्य में व्यक्त सामाजिक यथार्थ और चिंतन का स्रोत हैं। अत: जो लोग महादेवी जी को सामाजिक जीवन से असंपृक्त वेदना और करुणा की कवयित्री भर मानते हैं, वे भारी भूल करते हैं। उनका सामाजिक चिंतन का उत्कर्ष *शृंखला की कड़ियां* (1942) निबंध संग्रह में संगृहीत निबंधों में देखा जा सकता है। जिसमें भारतीय नारी विषयक चिंतन व्यवस्थित है। इन निबंधों में महादेवी जी ने भारतीय समाज की उन व्यवस्थाओं पर सवाल उठाए हैं जो पुरुष के नजरिए से बनाई गई हैं और जिनसे भारतीय नारी वर्षों से जूझ रही है, किंतु उन्होंने जिन सवालों को उठाया है उनमें कहीं पर भी आक्रोश नहीं दिखाई देता है बल्कि एक प्रकार की शालीनता है। इसलिए कि वे सृजन पर विश्वास करती हैं और उनका ध्वंस के द्वारा पुनर्सृजन पर विश्वास नहीं है। यही कारण है कि वे इन निबंधों में भारतीय समाज की उन विकृतियों को सृजन के द्वारा मिटाना चाहती हैं जिनसे भारतीय नारी प्रारंभ से ही अनेक कठिनाइयों का सामना कर रही है।

उनका नारी चिंतन समाज सापेक्ष है। अत: वह सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित, तटस्थ और निष्पक्ष है। वे नारी के जीवन की कठिनाइयों के लिए न केवल पुरुष को दोष देती हैं, बल्कि इसके लिए वे नारी को भी समान रूप से दोष देती हैं। इसीलिए तो वे नारी चिंतन का आरंभ नारियों से ही करती हैं, जिन्हें अपनी कठिनाइयों के कारणों की जानकारी नहीं है : ''समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। अत:



अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। सामान्यत: भारतीय नारी में इसी विशेषता का अभाव मिलेगा। कहीं उसमें साधारण दयनीयता है और कहीं असाधारण विद्रोह है, परंतु संतुलन से उसका जीवन परिचित नहीं।'' इसके अलावा वे नारी की दुर्दशा के लिए मनुष्य की उस दृष्टि को भी दोष देती हैं, जो वस्तु के असाधारण सौंदर्य को देखकर कभी पूजा के योग्य समझता है और कभी उपेक्षा करता है।

वे मानती हैं कि भारतीय नारी के साथ कुछ इसी तरह का हुआ है : ''प्राय: जो वस्तु लौकिक साधारण वस्तुओं से अधिक सुंदर या सुकुमार होती है, उसे या तो मनुष्य अलौकिक और दिव्य की पंक्ति में बैठाकर पूजार्ह समझने लगता है या वह तुच्छ समझी जाकर उपेक्षा और अवहेलना की भाजन बनती है। अदृष्ट की विडंबना से भारतीय नारी को दोनों ही अवस्थाओं का पूर्ण अनुभव हो चुका है। वह पवित्र देव मंदिर की अधिष्ठात्री देवी भी बन चुकी है और अपने गृह के मलिन कोने की बंदिनी भी।'' जबकि वे समाज-व्यवस्था की पूर्णता के लिए पुरुष और नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को अत्यंत आवश्यक मानती हैं : ''नारी और पुरुष दोनों के व्यक्तित्व अपनी पूर्णता में समाज के

---

* आलेख में उद्धृत अंश महादेवी के निबंध-संग्रह *शृंखला की कड़ियां* (राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली) से लिए गए हैं।

एक ऐसे रिक्त स्थान को भर देते हैं, जिससे विभिन्न सामाजिक संबंधों में सामंजस्य उत्पन्न होकर उन्हें पूर्ण कर देता है।''

अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए महादेवी जी प्राचीन भारत की विदुषी मैत्रेयी, सती, यशोधरा और सीता आदि को संसार-पथ में पुरुष की संगिनी मानती हैं न कि छाया मात्र, किंतु वे पुरुषों की उस धारणा को समूची नारी जाति के लिए अभिशाप मानती हैं, जिसने ''स्त्री स्वतंत्र व्यक्तित्व से रहित पति की छाया मात्र है'' को सिद्धांत का रूप दे दिया है। महादेवी जी समाज में दो प्रकार की स्त्रियों की चर्चा करती हुई लिखती हैं : ''एक वे जिन्हें इसका ज्ञान नहीं है कि वे भी एक विस्तृत मानव-समुदाय की सदस्य हैं और उनका भी एक ऐसा स्वतंत्र व्यक्तित्व है, जिसके विकास से समाज का उत्कर्ष और संकीर्णता से अपकर्ष संभव है। दूसरी वे जो पुरुषों की समता करने के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से संसार को देखने में, उन्हीं के गुणावगुणों का अनुकरण करने में जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति समझती हैं।

सारांश यह है कि एक ओर अर्थहीन अनुसरण है तो दूसरी ओर अनर्थमय अनुकरण और यह दोनों प्रयत्न समाज की शृंखला को शिथिल तथा व्यक्तिगत बंधनों को सुदृढ़ और संकुचित करते जा रहे हैं।'' इसीलिए वे भारतीय समाज में नारी की दयनीय स्थिति के लिए नारी के अर्थहीन अनुसरण और अनर्थमय अनुकरण को जिम्मेदार ठहराती हैं : ''पुरुष के अंधानुसरण ने स्त्री के व्यक्तित्व को अपना दर्पण बनाकर उसकी उपयोगिता तो सीमित कर ही दी, साथ ही समाज को भी अपूर्ण बना दिया।'' जब कि वे नारी-पुरुष का एक-दूसरे का पूरक मानती हैं : ''स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक मानसिक वैपरीत्य द्वारा ही हमारा समाज सामंजस्यपूर्ण और अखंड हो सकता है, उसके बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से नहीं।''

महादेवी जी उन आधुनिक विद्रोहशील नारी के विडंबनामय जीवन को भी उठाती हैं, जो नारी सुलभ कोमलता तथा भावुकता को अपने लिए लौह-शृंखलाएं मानती हैं। वस्तुत: इस प्रकार के दृष्टिकोण को वे नारी की पुरुष समाज के विवेक और हृदयहीन व्यवहार की प्रतिक्रिया मात्र मानती हैं। जब कि वे समाज के संतप्त जीवन के लिए स्त्री की कोमलतामयी सदाशयता और सहानुभूति को शीतल अनुलेप के समान मानती हैं। वे नारी के व्यावहारिक जीवन में कठोरता, गृह में अधिक निर्मम एवं शुष्कता का भी विरोध करती हैं। इसके साथ-साथ नारी का अपनी शक्तियों को पुरुष की शक्तियों के साथ तुला में तौलने के प्रयत्नों को भ्रांतिकारी मानती हैं : ''संसार की प्रत्येक वस्तु में निहित शक्ति की अभिव्यक्तियों और उसके रूपों की एकता किसी दशा में न संभव है, न उसे होना चाहिए।'' वह उन धारणाओं का भी खंडन करती हैं, जो यह मानती है कि स्त्री का सर्वतोन्मुखी विकास के उपरांत, उसे किसी संगी की आवश्यकता नहीं रहेगी क्योंकि उनका मानना है कि स्वस्थ्य समाज के लिए स्त्री और पुरुष का समान महत्व है। इनमें से किसी एक की उपेक्षा से समाज के विकास में बाधा पड़नी निश्चित है : ''पुरुष के समान स्त्री भी कुटुम्ब, समाज, नगर तथा राष्ट्र की विशिष्ट सदस्य है तथा उसकी प्रत्येक क्रिया का प्रतिफल सबके विकास में बाधा भी डाल सकता है और उसके मार्ग को प्रशस्त भी कर सकता है।'' महादेवी जी बंधनों से जकड़ी नारी को सचेत करती हुई लिखती हैं : ''इतना ध्यान रहना चाहिए कि बेड़ियों के साथ ही उसी अस्त्र से बंदी यदि पैर भी काट डालेगा तो उसकी मुक्ति की आशा, दुराशा मात्र रह जावेगी।''

महादेवी जी नागरिकता विषयक अज्ञान को नारी की दासता की संकीर्णतम कारा में निर्वासन का कारण मानती हैं : ''हममें से अधिकांश को यह भी ज्ञान नहीं है कि गृह की दीवारों के बाहर भी हमारा कार्यक्षेत्र हो सकता है तथा उस क्षेत्र में और अपनी गृहस्थी में उपयोगी रहने के लिए हमें विशेष अधिकारों की और सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती है।'' कहना यह है कि महादेवी जी नारी का कार्यक्षेत्र केवल घर के दीवारों के भीतर नहीं मानती हैं बल्कि वह नारी की क्षमताओं से भली-भांति परिचित हैं। अत: वे नारी की क्षमताओं का सामाजिक सदुपयोग के लिए कुछ विशेष अधिकारों एवं सुविधाओं को दिए जाने का पक्ष लेती हैं : ''अनेक संबंधों का केंद्र होने तथा परिवार और समाज विशेष से संबद्ध रहने के कारण उसे सामाजिक विकास के लिए भी विशेष अधिकार और उत्तरदायित्व प्राप्त हो जाना अनिवार्य है।''

वे पश्चिमी देशों की उन नारियों का उदाहरण देती हैं जो राजनैतिक एवं सामाजिक दोनों ही प्रकार के अधिकारों द्वारा अपनी शक्तियों का विकास तो कर ही रही हैं इसके अलावा गृह तथा बाहरी संसार में भी पुरुषों की सहयोगिनी बनकर अपने देश और जाति के उत्कर्ष का कारण बन रही हैं, अपकर्ष का नहीं। इसके अलावा वह भारतीय नारियों के लिए निर्मित कानून व्यवस्था के प्रति भी असंतोष व्यक्त करती हैं, जो उनके जन्म सिद्ध अधिकारों को संकुचित बनाता जा रहा है।

महादेवी जी बीच-बीच में भारतीय नारी की सामाजिक परिस्थिति के यथार्थ को भी व्यक्त करती हुई कहती हैं : ''स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिए जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है।'' अत: वे स्त्रियों की इन कठिनाइयों से मुक्ति के लिए अनेक प्राचीन वैधानिक व्यवस्थाओं में संशोधन तथा नयी व्यवस्था के निर्माण आवश्यकता पर बल देती हैं। चूंकि वे नारियों को नागरिक समाज का आधा हिस्सा मानती हैं, अत: वे समाज हित के लिए आधे नागरिक समाज के हित-अहित विषयक अस्पष्ट विचारों को स्पष्ट क्रियात्मक रूप देने का पक्ष लेती हैं। वे नारी के लिए निर्मित सामाजिक बंधनों को उसके व्यक्तित्व के विकास के मार्ग में बाधक मानती हैं। अत: वे समाज को सचेत करती हैं : ''आदरहीन मातृत्व, अधिकार शून्य पत्नीत्व का स्वीकार, भारतीय नारी का अपनी शक्तियों का बोध न होना और जिस दिन उसे अपनी शक्तियों का बोध होगा, वह बंदिनी बनाने वाली शृंखलाओं को स्वयं तोड़ फेंकेगी।''

वे समूची स्त्री जाति की उन्नति के लिए जाग्रत स्त्रियों को प्रतिनिधि बनकर आगे आने का आवाहन करती हैं। किंतु उनका आवाहन प्रभुत्व की आकांक्षा के लिए नहीं है। वह मध्यम श्रेणी की महिलाओं की कठिनाइयों की निवृत्ति के लिए राजनीतिक अधिकारों से पहले ऐसी सामाजिक-व्यवस्था के पुनर्निर्माण का सवाल उठाती हैं, जिससे उनके जीवन में स्वावलंबन और आत्मविश्वास आ सके। महादेवी जी शिक्षा और चिकित्सा आदि विभागों में कार्य करने वाली जाग्रत स्त्रियों के व्यवहारों का विरोध करती हैं, जो अपना अलग समाज बनाकर अन्य बहिनों की प्रतिनिधि नहीं बन सकी हैं।

महादेवी जी समाज-व्यवस्था की पहली नींव परिवार स्त्री की बुद्धि का परिणाम मानती हैं : ''पुरुष का जीवन संघर्ष से प्रारंभ होता है और स्त्री का आत्मसमर्पण से। जीवन के कठोर संघर्ष में जो पुरुष विजयी प्रमाणित हुआ उसे स्त्री ने कोमल हाथों से जयमाल लेकर स्निग्ध चितवन से अभिनंदित करके और स्नेह-प्रवण आत्म निवेदन से अपने निकट पराजित बना डाला।.

.. जिसने पुरुष की बर्बरता को पराभूतकर उसकी सुप्त भावना को जगाया। इन पवित्र गृहों की नींव स्त्री की बुद्धि पर रखी गयी है। पुरुष की शक्ति पर नहीं।''

इस प्रकार वे नारी को संगठन की सूत्रधार तो मानती ही हैं और उसके घर के प्रति समर्पण की उदात्त भावना का भी उद्घाटन करती हैं : ''पुरुष गृह में उतना अनुरक्त नहीं हो सका जितनी स्त्री हो गई थी। उसके लिए गृह का उजड़ जाना एक सुख के साधन का बिगड़ जाना हो सकता है, परंतु स्त्री के लिए वही जीवन का उजड़ जाना है।'' वह अहिंसा को नारी प्रदत्त मानती हैं। उनका मानना है कि स्त्री के संसर्ग से उत्पन्न परिवार शत्रुओं से सहयोग की आवश्कयता अनुभव करने लगा। संघर्ष में जो सबल व्यक्ति अपनी रक्षा कर सकता था। वही अब सुकुमार संगिनी और कोमल शिशु को लेकर दुर्बल हो उठा क्योंकि उसके प्रतिद्वंद्वी उसे हानि पहुंचाने में असफल होकर उसके गृह-सौंदर्य को नष्ट कर सकते थे।

वे आधुनिक नारी की प्रतिकूल आचरण की ओर बढ़ती प्रवृत्ति के प्रति भी आक्रोश व्यक्त करती हैं। इसके साथ-साथ वे दुर्बलता को नारी का प्रमुख अभिशाप मानती हैं। ऐसी दुर्बलता जिसका प्राय: कोमलता के नाम से नामकरण किया जाता है : ''नारी के स्वभाव में कोमलता के आवरण में जो दुर्बलता छिप गई है। वही उसके शरीर में सुकुमारता बन गई। यह सत्य नहीं है कि वह इस दुर्बलता पर विजय नहीं पा सकती। पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि वह अनादि काल से उसे अपना अलंकार समझती रहने के कारण त्यागने पर उद्यत ही नहीं होती। उसके विचार से इसके बिना नारीत्व अधूरा है। दुर्बलता मनुष्य जीवन का अभिशाप रही है और रहेगी।'' वह भारतीय नारी को अपने पितृगृह में भिक्षुणी और पतिगृह में उपेक्षित प्राणियों की तरह मानती हैं, जिसको अपने बारे में सोचने-समझने का अधिकार नहीं है।

महादेवी जी ने आधुनिक नारी की स्थिति पर भी गंभीर चिंतन किया है। वे मानती हैं कि भारतीय नारी शारीरिक विकास और सामाजिक व्यवस्था को ही प्रारंभ से नारी और पुरुष के बीच के अंतर का कारण मानती रही है। इसके अलावा महादेवी जी मानती हैं कि ये ऐसे कारण हैं जिससे यह भेद भविष्य में भी रहेगा, किंतु यह मानसिक या शारीरिक भेद न किसी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है और न किसी की हीनता का विज्ञापन करता है। किंतु वे नारी एवं पुरुष के अंतर के कारणों को ढूंढने के लिए अपने स्त्रीत्व को क्षत-विक्षत करने वाली नारियों के प्रति भी आक्रोश व्यक्त करती हैं, क्योंकि उनका मानना है कि नारी के इस आचरण से जो उसकी प्रकृति के विरुद्ध था सुख नहीं दिया बल्कि इससे उसके कष्ट बढ़े हैं। वह उन आधुनिक नारियों को स्वतंत्र नहीं मानतीं, जो बाहर से पुरुष को नीचा दिखाने के लिए कठोर से कठोर श्रम करने के बावजूद पुरुष में जिज्ञासा जाग्रत करने के लिए, अपने सौंदर्य और अंग सौष्ठव के रक्षार्थ असाध्य से असाध्य कार्य करने के लिए प्रस्तुत हैं। महादेवी जी परिचमी उन आधुनिक नारियों का भी उल्लेख करती हैं, जिन्होंने बहुत कुछ प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी, उनके भीतर की चिरंतन नारी नहीं बदल सकी। पुरुष उसके नारीत्व की उपेक्षा करे यह उसे भी स्वीकार न हुआ। अत: वह अथक मनोयोग से अपने बाह्य आकर्षण को बढ़ाने और स्थायी रखने का प्रयत्न करने लगी है।

उनका मानना है कि पश्चिम की स्त्री की स्थिति में जो विशेषता है, उसके मूल में पुरुष के प्रति उसकी स्पर्धा के साथ ही, उसे आकर्षित करने की प्रवृत्ति भी कार्य करती है। वह आधुनिक भारतीय नारी की कठिनाइयों से मुक्ति का कोई ठोस उपाय न पाकर उनकी दोहरी विशेषताओं को पश्चिमी नारियों से भिन्न मानती हैं। इसीलिए उन्हें पथ-प्रदर्शक बनाकर चल पड़ना, भारतीय नारी के लिए उचित नहीं मानती हैं। इसलिए वह अंत में आधुनिक भारतीय नारी की कठिनाइयों से मुक्ति का कोई ठोस उपाय न पाकर, उनकी दोहरी विशेषताओं के प्रति खेद प्रकट करती हैं : ''स्त्री प्रतिद्वंद्विता के क्षेत्र में बिना उतरे हुए ही अपनी उपयोगिता के बल पर स्वत्वों की मांग सामने रखती, परंतु परिस्थितियां इसके अनुकूल नहीं थीं। जो अप्राप्त है उसे पा लेना कठिन नहीं है, परंतु जो प्राप्त था उसे खोकर फिर पाना अत्यधिक कठिन है...स्त्री के अधिकारों के विषय में यही सत्य है।''

महादेवी ने आधुनिक काल की प्रतिनिधि नारियों की कई श्रेणियां मानी हैं। पहली वे जिन्होंने राजनीतिक आंदोलन में पुरुषों को सहायता प्रदान की। कुछ ऐसी शिक्षिकाएं जिन्होंने सामाजिक त्रुटियों का कोई उचित समाधान न पाकर अपनी शिक्षा और जागृति को आजीविका और सार्वजनिक उपयोग का साधन बनाया। कुछ ऐसी संपन्न महिलाएं, जिन्होंने थोड़ी-सी शिक्षा के साथ बहुत-सी पाश्चात्य आधुनिकता का संयोगकर अपने गृह जीवन को एक नवीन सांचे में ढाला है। अत: वे नारियों की इन श्रेणियों और उनके बाह्य जीवन के सादृश्य के भीतर कार्य करने वाली वृत्तियों को समझना आवश्यक मानती हैं : ''आधुनिक नारियों ने आधुनिकता की एकरूपता को अनेक रूपों में ग्रहण किया...प्रत्येक स्त्री ने अपनी असुविधा, अपने सुख-दुख और अपने जीवन के भीतर से इस नवीनता पर दृष्टिपात किया। अत: प्रत्येक को उसमें अपनी विशेष त्रुटियों के समाधान के चिह्न दिखाई पड़े।'' किंतु महादेवी जी यहां पर भी आधुनिक नारियों की कठिनाइयों को कम नहीं मानतीं क्योंकि उनका मानना है : ''उन्हें प्राचीन विचारों का उपासक पुरुष-समाज अवहेलना की दृष्टि से देखता है। आधुनिक दृष्टिकोण वाले समर्थक का भाव रखते हुए भी क्रियात्मक सहयोग देने में असमर्थ रहते हैं और उग्र विचार वाले प्रोत्साहन देकर भी उन्हें अपने साथ ले चलना कठिन समझते हैं।'' उनका कहना है कि इन नारियों को कठोरतम संयम से रूक्षता प्राप्त हुई है किंतु यहां पर भी समाज ने उसकी रूक्षता को सभीत देखा। महादेवी जी तर्क प्रस्तुत करती हैं कि ऐसी नारियों में पहले से सुंदर और पूर्णचित्र न पा सकने के कारण अनेक आधुनिकता के पोषक भी उन्हें संदिग्ध दृष्टि से देखते हैं। इसीलिए महादेवी जी आधुनिक नारी को विगत विस्मृतकर स्वस्थ्य समाज के निर्माण का संदेश देती हैं।

महादेवी जी ने नारी के घर और बाहर के कर्तव्यों एवं अधिकारों की कठिनाइयों पर भी चिंतन किया है। उनका मानना है कि युगों से नारी का कार्य क्षेत्र घर तक सीमित रहा है, किंतु आधुनिक काल में उसके कर्तव्यों का विस्तार हुआ है, उसने अपना लक्ष्य स्थिर करने में पहले से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त की है। इसके अलावा आज के पुरुष के नजरिये में परिवर्तन के बावजूद वे नारियों को गंभीरता से कार्य करने की प्रेरणा देती हैं : ''उसे आधुनिक स्थितियों में पुरुष से सहयोग मिल सकता है, जब स्त्री में भी जीवन के अनेक रूपों और परिस्थितियों के साथ चलने तथा उसके अनुरूप परिवर्तनों को हृदयंगम करने की शक्ति उत्पन्न हो जावे।'' क्योंकि वह मानती हैं : ''आधुनिक काल में स्त्री केवल रमणी या भार्या नहीं रही। वरन् घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है। अत: उसका कर्तव्य भी अनेकानेक हो गए हैं, जिसके पालन में ऐसे संघर्ष के अवसर आ पड़ते हैं जिसमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना पड़ता है।'' महादेवी यह भी मानती हैं कि आधुनिक नारी के सामने क्या करें और क्या न करें की स्थिति आ सकती है किंतु वे ऐसी स्थिति में पुरुष के समान ही अपने जीवन को व्यवस्थित तथा

कार्यक्षेत्र को निर्धारित करने की प्रेरणा देती हैं। वह खेद प्रकट करती हैं कि घर से बाहर काम करने वाली नारियों का प्रतिशत बहुत कम है। यद्यपि वे मानती हैं कि कुछ अशिक्षित नारियां, उन गिनी-चुनी शिक्षित महिलाओं के अनुकरण पर घर और बाहर अपना स्थान प्राप्त तो कर सकती हैं, किंतु वे ऐसी अशिक्षित नारियों का घर और बाहर के अनुकरण से सच्चा रूप प्राप्त कर पाने के प्रति संदेह व्यक्त करती हैं, फिर भी महादेवी जी आश्वस्त हैं : ''भविष्य के स्त्री-पुरुष की रूपरेखा हमें इन्हीं विदुषियों में मिलेगी, जिन्हें हम अल्पसंख्यक जानकर जानना नहीं चाहते...वे अपवाद हो सकती हैं, परंतु क्रमागत व्यवस्था के विरुद्ध किसी नवीन परिवर्तन को ले जाने का श्रेय ऐसे अपवादों को ही मिलता है।'' वे यह भी मानती हैं कि थोड़ी-सी शिक्षित महिलाओं ने नवीन दृष्टिकोण को स्वीकार कर घर-बाहर में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न तो किया है, किंतु वे सभी शिक्षित महिलाओं में घर-बाहर का सामंजस्य न कर पाने के लिए खेद प्रकट करती हैं : ''हमारी शिक्षित बहिनों में ऐसी भी हैं, जो केवल गृहणीपन में संतोष न पाकर सार्वजनिक जीवन का उत्तरदायित्व भी संभालती और कभी-कभी तो दूसरे कर्तव्य के पालन के लिए पहले की उपेक्षा करने पर भी बाध्य हो जाती हैं, ऐसी भी हैं जो अपनी संतान तथा गृहस्थ की ओर यथाशक्ति ध्यान देती हुई अन्य क्षेत्रों में भी कार्य करती रहती हैं, ऐसी भी हैं जो गृहस्थ-जीवन तथा सार्वजनिक जीवन के संघर्ष में भयभीत होने के कारण पहले जीवन को स्वीकार ही नहीं करतीं तथा ऐसी भी दुर्लभ नहीं जो समस्त शिक्षा का भार लिए घर में निष्क्रिय और खिन्न, समय व्यतीत करती रहती हैं।'' इसीलिए महादेवी वर्मा स्त्रियों के उज्ज्वल भविष्य के लिए सामंजस्य को अत्यंत आवश्यक मानती हैं। उनका मानना है कि आधुनिक युग में घर से बाहर ऐसे क्षेत्र हैं, जो नारी के सहयोग एवं सहानुभूति की अपेक्षा रखते हैं। इसलिए वह शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षित स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख करती हैं : ''बालकों की मानसिक शक्तियां स्त्री के स्नेह की छाया में जितनी पुष्ट और विकसित हो सकती हैं, उतनी किसी अन्य उपाय से नहीं। पुरुष का अधिक संपर्क तो बालक को असमय ही कठोर और सतर्क बना देता है।'' इसके अलावा वे स्त्री की स्वाभाविक कोमलता को देखते हुए घर से बाहर चिकित्सा के क्षेत्र में उसकी उल्लेखनीय भूमिका की संभावना व्यक्त करती हैं : ''शिक्षा के क्षेत्र के समान चिकित्सा के क्षेत्र में भी स्त्रियों का सहयोग वांछनीय है। ...जितनी अधिक सुयोग्य स्त्रियां इस क्षेत्र में होगी उतना ही अधिक समाज को लाभ होगा। स्त्री में स्वाभाविक कोमलता पुरुष की अपेक्षा अधिक होती है, साथ ही पुरुष के समान व्यवसाय बुद्धि प्राय: उसमें नहीं रहती, अत: वह इस कार्य को अधिक सहानुभूति एवं सहयोग के साथ कर सकती है।'' नारी दुर्दशा से मुक्ति के लिए महादेवी जी स्त्री का कानून के क्षेत्र में प्रवेश भी अत्यंत आवश्यक समझती हैं। इन सबके अलावा महादेवी जी स्त्रियों के लिए घर से बाहर साहित्य सृजन का कार्य भी उपयोगी मानती हैं क्योंकि उनका मानना है : ''साहित्य यदि स्त्री के सहयोग से शून्य हो तो उसे आधी मानव जाति के प्रतिनिधित्व से शून्य समझना चाहिए।...पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परंतु नारी के लिए अनुभव। अत: अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके।'' किंतु घर से बाहर स्त्रियों के कार्य के लिए महादेवी पुरुषों का सहयोग एवं त्याग को भी आवश्यक समझती हैं : ''स्त्री को किसी भी क्षेत्र में कुछ करने की स्वतंत्रता देने के लिए पुरुष के विशेष त्याग की आवश्यकता होगी।''

महादेवी जी ने हिंदू स्त्री के पत्नीत्व की भी चर्चा चलाई है और कहती हैं कि उसके जीवन का प्रथम लक्ष्य पत्नीत्व तथा अंतिम मातृत्व समझा जाता रहा है, किंतु महादेवी यहां पर प्रश्न करती हैं कि सौ में से सौ स्त्रियों की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति केवल इन्हीं दो उत्तरदायित्वों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती है, फिर भी कन्या के जन्म से ही मां-बाप का, उसकी इच्छा-अनिच्छा को जाने बिना, उसके लिए पत्नीत्व एवं मातृत्व के प्रबंधन करने की प्रवृत्ति पर सवाल उठाती हैं : ''जैसे ही कन्या का जन्म हुआ, माता-पिता का ध्यान सबसे पहले उसके विवाह की कठिनाइयों की ओर गया।...उसकी इच्छा-अनिच्छा, स्वीकृति-अस्वीकृति, योग्यता-अयोग्यता की न कभी किसी ने चिंता की और न करने की आवश्यकता का अनुभव किया।'' महादेवी ने पत्नीत्व के लिए भारतीय नारी के दासत्व की अपार यंत्रणा और पति होने के इच्छुक नवयुवकों की निकृष्ट मनोवृत्तियों का भी उद्घाटन किया है : ''पति होने के इच्छुक युवकों की मनोवृत्ति के विषय में तो कुछ कहना व्यर्थ है। वे प्राय: पत्नी के भरण-पोषण का भार ग्रहण करने के पहले भावी श्वसुर से कन्या को जन्म देने का भारी-से-भारी कर वसूल करना चाहते हैं। एक विलायत जाने का खर्च चाहता है, दूसरा यूनिवर्सिटी की पढ़ाई समाप्त करने के लिए रुपये चाहता, तीसरा व्यवसाय के लिए प्रचुर धन मांगता है।'' किंतु महादेवी का मानना है कि स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है, बशर्ते कि उसकी इच्छा-अनिच्छा और योग्यता-अयोग्यता का पूरा ध्यान रखा गया हो। महादेवी जी ने शरीर व्यवसायिनी नारियों के जीवन की विडंबनाओं पर भी गहरा चिंतन किया है। उनका मानना है कि गर्वित समाज, जिन्हें पतित नारी की संज्ञा देता है, वस्तुत: ऐसी नारियों ने पुरुष वासना की वेदी पर घोरतम बलिदान दिया है, किंतु समाज ने कभी इस पर विचार किया ही नहीं, बल्कि समाज से ऐसी स्त्रियों को असीम घृणा और घोर तिरस्कार ही प्राप्त हुआ। जबकि प्राचीन काल से भारतीय समाज ने विनोद सभाओं, यहां तक कि देवताओं की अर्चना में भी ऐसी नारियों का उपयोग किया है किंतु इन नारियों को समाज से किसी प्रकार की सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई। वस्तुत: उपयोगी का तिरस्कार विडंबना ही तो है। उसके जीवन की कठिनाइयों एवं विडंबनाओं की चर्चा चलाती हुई महादेवी लिखती हैं : ''क्रीतदासी न होने पर भी उसकी दासता इतनी परिपूर्ण रही कि वह अपने जीवन का गर्हितम व्यवसाय करने के लिए विवश थी। उसे अपने घर के द्वार समाज के कुत्सित-से-कुत्सित व्यक्ति के लिए भी खुले रखने पड़े और भागने का प्रयत्न करने पर समाज ने उसके सभी मार्ग रुद्ध कर दिए।''

महादेवी जी प्रश्न उठाती हैं कि कोई ऐसा इतिहासकार नहीं हुआ जिसने इन नारियों की दुख भरी गाथा लिखी हो, जबकि वे मानती हैं : ''क्या यह उन स्त्रियों की सजातीय बहिनें नहीं हैं, जिनकी दुग्ध-धारा से मानव जाति पल रही है? क्या यह उन्हीं की बहिनें नहीं हैं, जिन्होंने पुरुष को पति का पद देकर अकुण्ठित भाव से परमेश्वर के आसन पर आसीन कर दिया? और क्या यह उन्हीं की पुत्रियां नहीं हैं, जिनके प्रेम, त्याग और साधना ने झोपड़ों में स्वर्ग और मिट्टी के पुतलों में अमरता उतार ली है?'' वे चर्चा को आगे बढ़ाती हुई लिखती हैं कि भले ही इन नारियों की समाज ने घोर उपेक्षा की थी, किंतु वे मनुष्य जाति से बाहर नहीं हैं। अत: उनके लिए भी मानव सुलभ प्रेम, साधना और त्याग अपरिचित नहीं हो सकते हैं, किंतु समाज ने जो वासना-विक्षिप्त हैं उन्हें निर्वासित दंड दे डाला। महादेवी इस कार्य को अन्याय ही नहीं, निष्ठुर अत्याचार भी मानती हैं। महादेवी जी उन लोगों के तर्कों को नकारती हैं, जो यह मानते हैं कि ये स्त्रियां अपनी जीविका के लिए स्वेच्छा से इस व्यवसाय को स्वीकार करती हैं : ''यह कल्पना यदि सत्य है तो इससे स्त्री का नहीं

वरन् सारी मानव जाति के पतन का प्रमाण मिलता है और असत्य है तो मनुष्य इससे अधिक अपना अपमान नहीं कर सकता है। संभव है, सौ में से एक स्त्री ऐसी मिल जावे जो मन में ऐसे व्यवसाय को अपमान का कारण न समझती हो, परंतु उसके जीवन का इतिहास कुछ और ही कहानी सुनाएगा।''

महादेवी जी ने नारी की आर्थिक-स्वतंत्रता पर भी गहन चिंतन किया है। वे आदिम युग से लेकर सभ्यता के विकास तक भारतीय समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति का वर्णन करती हैं और उसकी दयनीय स्थिति का कारण स्त्री और पुरुष के अधिकारों की विचित्र विषमता को मानती हैं : ''सारी राजनीतिक, सामाजिक तथा उच्च व्यवस्थाओं की रूपरेखा शक्ति के द्वारा ही निर्धारित होती रही है और सबल की सुविधानुसार ही परिवर्तित और संशोधित होती गई, इसी से दुर्बल को वही स्वीकार करना पड़ा जो सुगमतापूर्वक मिल गया। महादेवी का मानना है कि सामाजिक व्यवस्था ने स्त्री के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैये से न केवल स्त्री को अधिकार देने में पुरुष का विशेष ध्यान रखा है बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी परालंबित बनाया है : ''उसे यज्ञ जैसे धर्म-कार्यों में पति का साथ देने के लिए सहधर्मिणीत्व और गृह की यवस्था के लिए गृहणीत्व का श्लाघ्य पद भी प्राप्त हुआ, परंतु धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत होने पर भी आर्थिक दृष्टि से वे नितांत परतंत्र रहीं।'' इसीलिए वे अपनी बात स्पष्ट रूप से कहती हैं कि आर्थिक रूप से जो स्थिति स्त्री की प्राचीन समाज में थी, उसमें अब तक परिवर्तन नहीं हो सका है। यही कारण है कि वे स्त्री को प्राचीन समाज से जन्मदात्री, सहधर्मिणीत्व और गृहणीत्व का श्लाघ्य पद प्राप्त होने पर भी उसकी आजीवन पति की अनुगामिनी बनी रहने की बिडंबना पर आश्चर्य व्यक्त करती हैं। इसके अलावा कन्या के विवाह के अवसर पर यतुक के अलावा कुछ न देना, गृह-धर्म को स्वीकार न करने वाली कन्याओं को तपस्विनी के रूप में ही जीवन व्यतीत करने, गृहस्थ के समान ऐश्वर्य भोग की वर्जना और पुत्र का पिता की समस्त संपत्ति का पूर्ण अधिकारी होना निश्चित ही सामाजिक व्यवस्था का पुरुष की पक्षधरता और स्त्री के प्रति अन्याय मानती हैं। इसके पीछे वे अपना तर्क प्रस्तुत करती हुई लिखती हैं : ''प्राचीन समाज का ध्यान अपनी बुद्धि की ओर अधिक देने के कारण उसने स्त्रीत्व एवं मातृत्व का विशेष आदर किया...उसके निकट स्त्री, पुरुष की संगिनी होने के कारण अधिक उपयोगी थी, उससे भिन्न उसका अस्तित्व चिंता करने योग्य ही नहीं रहता था।...अत: समाज ने किसी ऐसी स्थिति की कल्पना ही नहीं की थी, जिसमें स्त्री पुरुष से सहायता बिना मांगे हुए ही जीवन पथ पर आगे बढ़ सके। पिता, पति, पुत्र तथा अन्य संबंधियों के रूप में पुरुष स्त्री का सदा भरण-पोषण कर सकता था, इसलिए उसकी आर्थिक स्थिति पर विचार करने की किसी ने आवश्यकता ही नहीं समझी।'' किंतु महादेवी जी सभ्यता के इस दौर में आर्थिक परालंबन को किसी के हित में उचित नहीं मानती हैं अपितु वे प्रत्येक सामाजिक के व्यक्तित्व के विकास के लिए आर्थिक स्वावलंबन की आवश्यक मानती हैं। वह इसलिए कि महादेवी सापेक्षता को सामाजिक संबंध का मूल मानती हैं। अत: पुरुष और स्त्री के संबंधों को भी सापेक्षता की दृष्टि से देखती हैं। इसके अभाव में सामाजिक विषमता की उत्पति होना स्वाभाविक मानती हैं। इसीलिए महादेवी जी नवीन परिस्थितियों में स्वस्थ्य समाज के लिए नारी और पुरुष की आर्थिक समानता का पक्ष लेती हैं।

वस्तुत: महादेवी जी के नारी चिंतन का कई दृष्टियों से महत्व है क्योंकि यह चिंतन महादेवी जी को इतिहास बनाता है, वह इसलिए कि उनका नारी चिंतन, उस समय का है, जब न तो भारतीय नारी आज की तरह जाग्रत थी और न ही तब नारी के हितों के लिए कोई आंदोलन खड़ा था। आज जब कि हम उत्तर आधुनिक दौर में हैं, इस दौर में नारी के कर्तव्यों और अधिकारों के लिए तमाम प्रकार के आंदोलन चल रहे हैं और साहित्य के क्षेत्र में नारी लेखन का प्रारंभ हो चुका है। आज नारी विमर्श साहित्य के केंद्र में है। ऐसा विमर्श जिसके द्वारा अंतहीन बहसें हो रही हैं और यह कभी देहवाद और कभी सत्ता विमर्श बनकर स्त्री जाति की कठिनाइयों के कारणों की गहरी छानबीन कर रहा है, फिर भी नहीं लगता है कि भारतीय समाज-व्यवस्था में नारी की प्रस्थिति में कोई विशेष सुधार आया है। यदि कहीं पर सुधार आया भी है तो वह सुधार पूरे समाज के सुधार के सापेक्ष उसी बिंदु पर है, जहां से स्त्री और पुरुषों के कर्तव्यों और अधिकारों की समानता की बातें उठती हैं। भले ही आज राजनैतिक और सरकारी आरक्षण के लाभ से नारी की सामाजिक छवि बढ़ी हो, किंतु उसकी अपने परिवार के भीतर की स्थिति में कोई खास अंतर नहीं आया है।

इस दृष्टि से महादेवी का नारी चिंतन कई अर्थ रखता है क्योंकि उनका नारी चिंतन उस आधे नागरिक जीवन का चिंतन है, जो मात्र पुरुष को कटघरे में खड़ा नहीं करता है। वस्तुत: महादेवी का नारी चिंतन किसी प्रकार की प्रभुता की आकांक्षा नहीं करता बल्कि इसका स्वर नपा-तुला और सामंजस्यपूर्ण है। और उन बुनियादी सवालों को उठाता है जिसका परिवार से लेकर राष्ट्र निर्माण में महत्व असंदिग्ध है। उनका चिंतन परंपरा के बंधनों से जकड़ी नारी के लिए देह की मुक्ति के बजाय सत्ता को चुनौती देता है। इसीलिए यह चिंतन आधी नागरिक जाति को अपने अधिकारों और कर्तव्यों की याद दिलाता है और उन्हें पाने और दिलाने के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है, जिसका अंतिम ध्येय सभ्य और सुसंस्कृत समाज का पुनर्निर्माण करना है। ❑

पृष्ठ 65 से आगे

वह यात्रा अनंत

लगा कि हमारे इस प्रसंग से संध्या अनजान नहीं। लेकिन इस बात को ज्यादा तूल न देकर मैंने पूछा, ''सिक्किम वह कब गई है?''

''पिछले सितंबर में... आपके यहां से जाते ही वे लोग भी चले गए।''

संध्या की बात पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने उसे बताया कि अभी पिछले हफ्ते उसका पत्र मुझे मिला, जो यहीं से लिखा गया है, इसके पहले भी सारे खत यहीं से लिखे गए हैं, तब कैसे मान लिया जाए कि वह यहां नहीं है?

संध्या की आंखों में कुछ शरारत जैसी नजर आई। बोली, ''आपको यकीन है कि वे खत दीदी ने लिखे हैं ?''

''तो फिर किसने... दूसरा कौन लिख सकता है ?''

''लिख क्यों नहीं सकता। ऐसे खतों के उत्तर हर किसी के पास मौजूद हैं। दीदी लिखती तो वह भी यही सब लिखती, यही लिखा जा सकता है। इसी तरह लिपिस्टिक लगे होठों की मुस्कान खतों पर मुहर लगाकर वह भी भेजती, इसके अलावा वह कर भी क्या सकती थी।...''

सुनकर मैं ठगा-सा संध्या की तरफ देखता रह गया। उसकी बेबाकी से स्पष्ट था कि अंत होती मेरी यात्रा में अगला अध्याय जोड़कर उसने एक नई यात्रा की शुरुआत कर दी है। अब इस यात्रा का अंत कब, कहां हो... कौन जाने। ❑

जन-सेवा

दर्शन सिंह

पंजाबी से अनुवाद

अमरजीत सिंह

मेहता साहिब की नींद खुल गई। उन्होंने तकिये के नीचे से पास की नजर वाली ऐनक उठाई। लगाकर निकट के मेज पर पड़ी घड़ी देखी। ढाई बजे थे। आज वह आधा घंटा पहले ही जाग गए थे। उन्होंने सोचा, थोड़ा और सो लिया जाए। जागकर कौन-सी कमाई करनी है।

सोना चाहा, पर सो न सके। नींद ही न आई। सोचा, कोई बात नहीं। जो करना है, उसे आधा घंटा पहले कर लिया जाए।

करना भी क्या था? मेहता साहिब रोज उठकर अपनी कालोनी विजय एनक्लेव में चक्कर लगाते थे। देखते थे कि चौकीदार कहीं सो तो नहीं रहे। कोई गेट तो खुला नहीं रह गया था। जल-बोर्ड का कर्मचारी ड्यूटी कर रहा था कि नहीं ? यदि वह सोया रह जाता तो सुबह के लिए पानी छोड़ना रह जाता।

प्रात: ही कालोनी में हा-हाकार मच जाना था।

मजबूरी में मेहता साहिब आधा घंटा पहले ही बाहर निकल पड़े। दूज का चांद था अथवा तीज का- ज्योतिविहीन। मात्र सजावट जैसा। बिजली-बोर्ड की बत्तियों से जगमगाती सड़कें सुनसुना थीं- शांत, निस्तब्ध। मेहता साहिब जल-बोर्ड के पंप हाउस पहुंचे। उन्होंने देखा कि वहां का कर्मचारी गहरी नींद में सो रहा था। यह देखकर उन्हें गुस्सा आ गया। उसे जगाने का सोचा। फिर वे रुक गए। ख्याल आया, पानी छोड़ने में अभी बहुत समय है। कुछ देर और सो ले। बंदा अच्छा है। कहना मानता है। इज्जत भी करता है। सदा पांव छूता है।

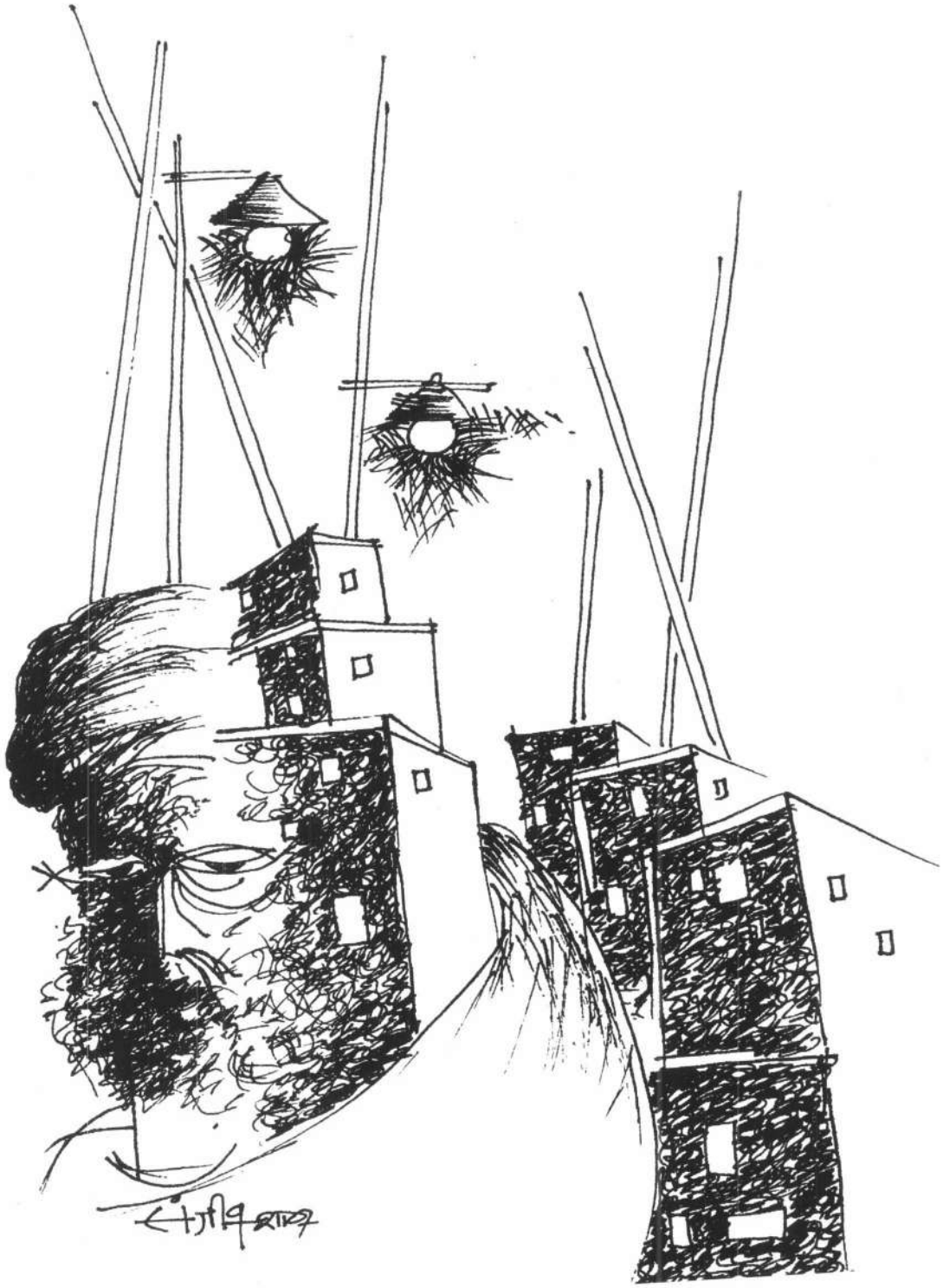
मेहता साहिब उसे सोया छोड़ आगे चल पड़े। मंदिर के निकट पहुंचे। सामने चौराहे पर चौकीदार होना चाहिए था। वह वहां नहीं था। उसे वहां खड़ा करना मेहता साहिब ने ही शुरू किया था। चार साल पहले। यहां से कालोनी की चार सड़कें दिखाई देती थीं। यहां चौकीदार चार चौकीदारों का काम कर सकता था। मेहता साहिब गायब हुए चौकीदार को ढूंढने लगे।

गेट नंबर पांच के पास एक छोटा-सा कमरा बना हुआ था। उसमें चौकीदार अपना सामान रखते थे। उन्होंने देखा, मंदिर के चौराहे वाला चौकीदार उस कमरे में पड़ा खर्राटे भर रहा था। देखते ही वे क्रोध से भर गए। चिल्लाकर बोले, ''अरे भूतनी के। उठ जा, आधी रात में सोया पड़ा है। तभी तो कालोनी में चोरियां हो रही हैं...!'' मेहता साहिब ने देखा उनकी कड़क आवाज का कोई असर नहीं हो रहा था। उन्होंने चौकीदार को पैर की हल्की ठोकर लगाई। उसने खर्राटे भरने बंद कर दिए। उसकी नींद खुल गई। उसने मेहता साहिब को पहचान लिया। वह चिढ़कर बोला, ''मेहता साहिब, क्यों तंग कर रहे हो। आप भी आराम करो और मुझे भी करने दो। न छोड़े मुझे! अब आप कालोनी के प्रधान नहीं!''

प्रधान न होने का ताना मेहता साहिब को एक घूंसे की तरह लगा। वह ठीक ही तो कह रहा था। अब लगभग एक वर्ष से मेहता साहिब विजय एनक्लेव के प्रधान नहीं थे। कालोनी के चुनाव में उनकी हार हो गई थी। अब नये प्रधान गोयल साहिब थे। उन्हें इस कालोनी में आए अभी केवल दो वर्ष ही बीते थे। धनी थे, कई कारें थीं उनके पास। नौकर-चाकर थे। खुद की कंपनी चलाते थे। थोड़ा बहुत धर्म-कर्म के कार्यों में भी रुचि लेते थे। वे कालोनी के चुनाव में खड़े हो गए थे और नये प्रधान चुन लिए गए थे।

मेहता साहिब पीछे हट गए। स्वयं से कहने लगे, ''कालोनी मूर्खों के हाथ में आ गयी है। चौकीदार सोए रहते हैं, चोरियां बढ़ गई हैं!''

स्वयं मेहता साहिब इस कालोनी के चार वर्षों तक प्रधान रहे थे। चार नहीं बल्कि साढ़े चार वर्ष। लगभग छह महीने उन्होंने बिना चुनाव के ही निकाल दिए थे। अपनी प्रधानगी के दौरान उन्होंने रात को चौकीदारों को सोने नहीं दिया था। रात तीन बजे उठकर वे स्वयं चौकीदारों की चौकीदारी करते थे। तत्पश्चात जल-बोर्ड का पंप चलवाते। कर्मचारी के न रहते, सभी बटन स्वयं दबा देते। वे सभी ढंग जानते थे। एक बार इसी प्रयत्न में वे ठोकर भी खा चुके थे। वे गिर पड़े थे। घुटने छील लिए थे। परंतु वे निश्चिंत रहे। जन-सेवा में यह सब सहना पड़ता है। जब बिजली, पानी, सड़कों अथवा नालियों की शिकायत दर्ज करानी होती स्वयं ही पैदल कार्पोरेशन तथा जल-बोर्ड के कार्यालयों में पहुंच जाते थे। बयासी वर्ष के होने पर भी अभी ठीक-ठाक थे। शरीर मजबूत था। चलने से घबराते नहीं थे। अभी हाथ में छड़ी नहीं पकड़ी थी। गोयल साहिब की तरह उनके पास कारें नहीं थीं और न



ही ड्राइवर। इतना सब करने पर भी जब एसोसिएशन के चुनाव हुए तो उन्हें बहुत कम लोगों ने वोट दिए। वे हार गए।

मेहता साहिब ने अपनी गश्त जारी रखी। बी ब्लाक की ओर से कुत्तों के भूंकने की आवाजें आ रही थीं। वे उधर ही चल पड़े। आगे जाकर उन्होंने देखा चार-पांच कुत्ते सुर मिलाकर जोर-जोर से भूंक रहे थे। उनको किसी घर के अंदर से कोई पालतू कुत्ता अपने शरारतपूर्ण ढंग से भूंककर चिढ़ा रहा था। भूंकने का एक विचित्र दंगल हो रहा था। मेहता साहिब बोले पड़े, "अरे ओ गोयल, बंद करा इन पट्ठों को। लोगों को सोने नहीं देते...!"

गोयल साहिब तो किसी दूसरे ब्लाक में अपने घर में सोए पड़े थे। कुत्तों को चुप तो मेहता साहिब ने ही कराना था। उन्होंने सबसे आगे वाले उछल रहे कुत्ते की ओर अपनी दांयी बांह उठाकर जोर से डांट लगायी। इतनी उम्र हो जाने पर भी मेहता साहिब की आवाज में गरज थी। सामने वाला कुत्ता पीछे हट गया और चुप हो गया। दूसरे कुत्तों ने भी भूंकना बंद कर दिया। परंतु जैसे ही मेहता साहिब ने हाथ नीचे किया वे फिर से भूंकने लग पड़े। उन्होंने फिर हाथ उठाया। फिर एक तेज डपट लगाई। पर इस बार कुत्तों पर कुछ असर न हुआ। उन्हें आभास हुआ कि उनके प्रधान न रहने की खबर इन कुत्तों तक भी पहुंच गई थी। तभी तो वे उनकी बात नहीं मान रहे थे।

कुछ-कुछ तंग आए मेहता साहिब स्वयं से कह रहे थे, "यह कमबख्त गोयल प्रधान तो बन गया, पर इन कुत्तों का कुछ करता नहीं। रात भर लोगों को सोने नहीं देते।" परंतु दूसरे ही क्षण उनको याद आया कि कुत्ते तो उनके दौर में भी भूंकते थे। तब उन्होंने इन आवारा कुत्तों को कालोनी से बाहर निकलवाने की बड़ी कोशिश की थी, पर सफल न हो सके। उनहोंने कार्पोरेशन के स्वास्थ्य अधिकारी से परिचय भी निकाला था। मेहता साहिब की तरह उसके बड़े भी पिंडी शहर के रहने वाले थे। अधिकारी ने मेहता साहिब को बड़ी ही मीठी पोठोहारी जबान में समझाया था, "अंकल, हमें कुत्तों को कहीं और बाहर निकालने का हुक्म नहीं। कहें तो उन्हें नपुंसक कर देते हैं...।" मेहता साहिब मान गए थे। उत्तर देते बोले थे, "चलो ऐसा ही कर दो। हम कालोनी के लोगों से कुछ कह तो सकें!"

किंतु स्वास्थ्य अधिकारी अपना वायदा भूल गए और कुत्तों का कुछ न हो सका। इसके विपरीत उनकी गिनती और बढ़ गई। उन्हें लगा इन कुत्तों से निपटना आसान नहीं। गोयल क्या उसका पिता भी इनसे पार नहीं पा सकता। मेहता साहिब ने जैसे स्वयं को ही उत्तर दिया, "पर यह ससुरा गोयल उनको रात में भूंकने से तो रोके।"

कुत्तों से पिंड छुड़ा, मेहता साहिब कालोनी के सी ब्लाक की ओर चल पड़े। थोड़ा आगे चले तो उन्हें लगा कि सड़क के छोर पर अंधेरा छाया था। वे उधर चल पड़े। उन्होंने देखा, सी-29 व सी-30 के सामने की दोनों बत्तियां बुझी पड़ी थीं। सोचने लगे, "पता नहीं कब की खराब पड़ी हैं। आजकल कोई देखने वाला तो है नहीं। अंधेरा होगा तो चोरियां भी होंगी।" उनके मन में आया कि अभी, इसी वक्त बिजली-बोर्ड के दफ्तर जाएं और शिकायत दर्ज करा दें। परंतु दफ्तर तो सुबह नौ बजे खुलता था। उन्होंने तय किया कि वे आज सबसे पहले बिजली दफ्तर जाएंगे और इन बत्तियों की रिपोर्ट लिखवाएंगे। "शाम तक ठीक हो जानी चाहिए ताकि रात को अंधेरा न हो।" उन्होंने जैसे स्वयं से ताकीद की।

मेहता साहिब कुछ थक-से गए थे। सामने पार्क में जाकर बैंच पर बैठ गए और लंबे सांस लेकर भोर की ताजी हवा का आनंद लेने लगे।

पंप से पानी छोड़ने का समय हो गया था। उन्होंने सोचा जाकर जल-बोर्ड के कर्मचारी को जगाया जाए और पानी छोड़ने को कहा जाए। वे पंप पर पहुंचे, उन्होंने देखा उनका आदर करने और पांव छूने वाला आज्ञाकारी कर्मचारी अब भी सो रहा था। उनके मन में आया कि उस उल्लू के सिर पर एक चपत लगाएं। उन्होंने हाथ उठाया, परंतु अकस्मात रुक गए। उन्हें पंप चलने की आवाज सुनाई दी। पानी छोड़ा जा चुका था। लगता था, वह पंप चलाकर फिर सो गया था। मेहता साहिब के मुंह से निकला, "मरने दो! सोया पड़ा रहे या जागे, कालोनी को पानी तो मिल रहा है।"

मेहता साहिब को अब चाय की तलब उठ रही थी। वे अपने घर की ओर चल पड़े। सोचा पत्नी पुष्पा रानी जाग गई होगी, चाय बना देगी।

घर पहुंचे तो पत्नी जागी हुई थी। पति को देखते ही उसने गैस जलाई और पानी की केतली उस पर रख दी। बोली, "बैठो, मैं चाय बना देती हूं।"

मेहता साहिब बैठ गए। पत्नी ने पूछा, "आज और भी जल्दी निकल गए थे?"

"क्या करता, नींद पहले खुल गयी थी, आज सी ब्लाक तक हो आया। कालोनी का बुरा हाल है। चौकीदार सोये पड़े हैं, पंप वाला खर्राटे भर रहा है। बतियां बुझी पड़ी हैं। कुत्ते भूंक रहे हैं...।" मेहता साहिब ने बहुत दर्दनाक तस्वीर खींची।

"भूंकने दो। आपको क्या?" पत्नी बोली। "खुद ही गोयल साहिब चुप कराएंगे उनको। अब यह उनकी ड्यूटी है। कालोनी के प्रधान वे हैं...।"

"प्रधान तो गोयल ही है, पर वह नालायक है। उसे अपने कामों से ही फुर्सत नहीं। कालोनी का काम कौन करे...?"

यह ठीक भी था। वे अत्यधिक व्यस्त रहते थे। कालोनी के कामों के लिए समय निकालते, परंतु बड़ी मुश्किल से। मगर मेहता साहिब के पास फुर्सत ही फुर्सत थी। उन्होंने स्वयं को कालोनी के लिए समर्पित कर रखा था। वे पिछले पंद्रह वर्षों से बेकार थे। पहले रेलवे में रोड़ी के ठेकेदार हुआ करते थे। रेल की पटरियों पर पत्थर डलवाते थे। यह काम उनको अधिक फला नहीं। उन्होंने छोड़ दिया। और कुछ कर नहीं सकते थे। जो घर में था उसी से गुजारा करते और कालोनी के कामों में लगे रहते। दो लड़के थे उनके। अपने-अपने परिवार वाले। बड़ा कलकत्ता रहता था। छोटा यहां उनके साथ परंतु अलग-ऊपरी मंजिल पर। मगर गोयल साहिब अभी उम्र में छोटे थे। मालदार थे। अपने

दर्शन सिंह

सांगला हिल (पंजाब) में 1928 में जन्मे दर्शन सिंह की शिक्षा लाहौर और रोहतक में हुई।

'सोवियत भूमि' पुरस्कार तथा पंजाबी साहित्य अकादमी, दिल्ली से सम्मानित दर्शन सिंह कई वर्षों तक भारत में सोवियत दूतावास के सूचना केंद्र में वरिष्ठ संपादक एवं सलाहकार के रूप में काम करते रहे। तत्पश्चात मास्को प्रवास के दौरान वे प्रगति प्रकाशन तथा मास्को रेडियो में कार्यशील रहे। अंग्रेजी पत्रकारिता के साथ-साथ पंजाबी में मौलिक लेखन एवं अनुवाद।

संपर्क : सी-13, ग्रेटर कैलाश एन्क्लेव, पार्ट-1, नई दिल्ली-110048

बड़े घर की तीनों मंजिलों पर वे स्वयं ही रहते थे- अपने परिवार के साथ।

पुष्पा रानी मेहता साहिब को चाय के घूंट भरते देख रही थी। उनके जवाब से उसकी संतुष्टि नहीं हुई थी। उसने पति को सलाह दी, "मेरी मानो तो कालोनी की चिंता छोड़ दो। लोग बहुत बातें करते हैं। कहते हैं, मेहता साहिब की प्रधानगी तो छिन गई है, पर फिर भी प्रधान बने फिरते हैं। आज भी पैदल सरकारी दफ्तरों में धक्के खाते फिरते हैं। दफ्तर के लोग भी हंसते हैं। कहते हैं, मेहता साहिब की कुर्सी चली गई पर धक्के खाने की आदत नहीं गई...।"

पत्नी की बात सुनकर मेहता साहिब भड़क उठे। ऊंचे स्वर में बोले, "बकवास करते हैं। बेशक मैं प्रधान नहीं रहा, पर सेवा तो कर सकता हूं.. कहां लिखा है कि लोगों की सेवा केवल प्रधान ही कर सकता है...।"

पत्नी ने फिर भी आग्रह किया, "सेवा करो बेशक पर कालोनी की मत करो। बहुत कर ली आपने। लोग हंसते हैं। मंदिर में औरतें भी बातें बनाती हैं। मुझे बड़ी शर्म आती है...कुछ और नहीं तो घर में ही बैठे रहा करो। किसी और तरफ ध्यान लगाओ...।"

मेहता साहिब पर कुछ असर होता नजर आया। पूछने लगे, "तू ही बता किधर ध्यान लगाऊं? रात तीन बजे से जाग रहा होता हूं इस सारे वक्त का क्या करूं। मुझे अब किसी दफ्तर जाना नहीं होता और न ही अब कोई दुकान खोल सकता हूं।"

"केवल आपका नहीं, इस उम्र में सभी का यही हाल होता है," पत्नी ने समझाया। कुछ भी करो। मंदिर जाओ। पूजा-पाठ करो। पोतियों को पढ़ाओ। दो यहां हैं हमारे पास...।"

सुनकर मेहता साहिब गुस्से से भर गए। पूछने लगे, "कैसे पढ़ाऊं?" किताबें उठाए उनके पीछे-पीछे भागूं। वे तो पास नहीं फटकतीं। बहू कहती है, मेरे पढ़ाने से उनका अंग्रेजी उच्चारण बिगड़ जाएगा...।"

यह पढ़ाने वाला सुझाव पत्नी के मुंह से वैसे ही निकल गया था। उसे पता था कि मेहता साहिब की अपनी छोटी बहू से बनती नहीं थी। वह बड़े घर की बेटी थी। अच्छी पढ़ी-लिखी। अंग्रेजी की एम.ए.। दहेज में मारुति कार लाई थी। खुद ड्राइव करती थी। जब आई थी तो मेहता साहिब उसे भी घर में वैसा ही रखना चाहते थे जैसे उनके पिता ने पुष्पा रानी को रखा था। छोटी बहू नये जमाने की थी। वह अपने ढंग से रहना चाहती थी। घर में खटपट शुरू हो गई। पहले रसोई अलग हुई, बाद में मंजिल। तत्पश्चात बाकी का सारा कुछ भी। बेटा भी हाथ से निकल गया। जोरू का जी हजूर। पोतियां भी बात करने से बचने लगीं। हां, बड़ा बेटा अभी कुछ ख्याल रखता था। परंतु वह तो दूर रहता था। उसके बच्चे भी दूर रहते थे। "छोड़ो, पोतियों को मत पढ़ाओ, कुछ और कर लिया करो," पत्नी ने अपनी सलाह को सुधारा। कलकत्ते चले जाओ। दो-चार महीने वहां रह आओ...।"

"यूं ही चला जाऊं ? कोई बुलाए तो सही!" लेकिन मेहता साहिब सोच रहे थे, सलाह तो ठीक थी। मानी जा सकती थी। पर करते क्या। वहां से कोई बुला नहीं रहा था। इधर कालोनी वाले उन्हें बड़ा चाहते थे। पिंड नहीं छोड़ते थे। मेहता साहिब! मेहता साहिब! करते रहते कुछ भी होता, उनको बुला भेजते। सर-आंखों पर बिठाते थे। हर बात में उन्हें आगे करते। कोई भी तकलीफ होती, आ घंटी बजाते । और फिर सरकारी दफ्तरों में भी उनको हर कोई सर पर बैठाता था। जो भी काम वे कहते- कर देते थे। कालोनी के लोग भी अपनी कठिनाई उन्हीं से कहते। समय-असमय फोन करते रहते थे। वास्तव में, आधी कालोनी अभी भी उन्हीं को प्रधान मानती थी। अधिकतर लोगों को पता ही नहीं था कि मेहता साहिब अब प्रधान नहीं रहे थे। गश्त लगा रहे सिपाही भी उनको ही सलाम करते थे। अभी कल ही 'ए' ब्लाक में रह रहे तीन भाइयों का परस्पर झगड़ा हो गया। फोन मेहता साहिब को आया था। उन्होंने ही वहां जाकर, पूरा दिन लगाकर, भाइयों में आपसी सुलह कराई थी। गोयल साहिब सारा दिन इस काम में नहीं लगा सकते थे।

कल के झगड़े की याद आते ही उन्हें लगा, कालोनी का काम उनके बिना नहीं चल सकता। वे पत्नी से बोले, "तू ही बता, मैं इन भाइयों की सुलह न करवाता? कहता, जाओ उस नालायक गोयल के पास?...तू ही बता, जो लोग मुझे फोन करते हैं, उनका काम न करूं? जो लोग मुझ पर विश्वास करते हैं, उनको कहूं, गोयल के पास जाओ। मुझसे उम्मीद न रखो। अगर कोई मेरे पास आता है, तो उसका काम तो मुझे करना ही है। वह तो मुझे ही प्रधान समझता है, नालायक गोयल को नहीं। अगर वह गोयल को समझता, तो उसके पास जाता।"

मेहता साहिब थोड़ा आवेश में थे। वे स्वभाव के सख्त और जिद के पक्के थे। पुष्पा रानी इन दिनों ही उनको इतना कुछ कह लेती थी। इससे पूर्व वह एक शब्द न बोल सकती। उनके गुस्से से डरती थी। पति को क्रोध में आते देख वह चुप लगा गई। उसे तो बल्कि मेहता साहिब का घर से बाहर रहना अधिक सुखकर था। घर में रहते तो उसे डांट ही खानी पड़ती।

दिन निकल आया था। मेहता साहिब स्नान आदि में व्यस्त हो गए। नौ बजे उन्हें बिजली के दफ्तर में पहुंचना था। 'सी' ब्लाक की बत्तियां ठीक करवानी थीं, वही जो उन्होंने रात को बुझी देखी थी। पैंट पहन रहे थे कि 'डी' ब्लाक की एक महिला का फोन आ गया। वह कह रही थी, "मेहता साहिब, हमारे घर में पानी की एक बूंद तक नहीं। हाथ भी नहीं धो सकते। पता चला है कि पंप-हाउस की पाइप फट गई है। कुछ जल्दी कीजिये...।"

"आप चिंता न करो," मेहता साहिब ने ढाढस बंधाया। पाइप मैं आज ही ठीक करवा दूंगा। जोनल इंजीनियर मेरे पांव छूता है। शाम तक पानी आ जाएगा। मुझे पहले बिजली के दफ्तर जाना है। 'सी' ब्लाक की बत्तियां खराब पड़ी हैं। वहां से सीधे जल-बोर्ड के दफ्तर जाऊंगा। ठीक करा दूंगा पाइप...शाम तक पानी आ जाएगा।"

मेहता साहिब को अब जाने की जल्दी पड़ गई। उन्होंने शीघ्रता से नाश्ता किया और बाहर निकल पड़े।

बिजली दफ्तर खासा दूर था। किसी दूसरी कालोनी में, डेढ़-दो किलोमीटर की दूरी तो थी ही। उन्हें पैदल ही जाना था। वहां पहुंचने में आधा घंटा लग गया। उन्होंने रिर्पोट दर्ज करवाई। उन्हें पता चला, बत्तियों की शिकायत पहले से ही दर्ज थी। ठीक इसलिए न हो सकी कि स्टाक में स्टारटर उपलब्ध नहीं थे। मेहता साहिब को अहसास हुआ जैसे उनके साथ धोखा हुआ है। रिर्पोट तो उन्हें लिखवानी थी, पर लिखा कोई और गया था। हां, इस बात की तस्सली अवश्य थी कि बत्तियां अभी ठीक नहीं हुई थीं। उन्होंने भी समय रहते रिर्पोट दर्ज करवा दी थी।

मेहता साहिब अब जल-बोर्ड के कार्यालय की ओर चल पड़े । ढाई-तीन किलोमीटर का रास्ता था। अभी थके नहीं थे। लगभग एक घंटे में जल-बोर्ड के दफ्तर पहुंच गये। हांफने लगे थे

शेष पृष्ठ 83 पर जारी

तिमिर में स्वर्ण वेला की तलाश

***दीपक महादेवी के काव्य में एक महत्वपूर्ण प्रतीक है / इसके अतिरिक्त बीन और रागनी, दर्पण और छाया, घन और दामिनी, रश्मि और प्रकाश का भी उनके काव्य में बार-बार उल्लेख हुआ है / बेशक दुख पीड़ा, आंसू और वेदना भी है, लेकिन इन समस्त अभावों में अंधकार का एकांतिक वास नहीं है / वहां, साथ ही, रागनी और दर्पण भी है, दामिनी और किरण भी है / छाया के साथ कहीं न कहीं प्रकाश भी है / महादेवी के काव्य पर* सुरेन्द्र वर्मा**

महाप्राण निराला ने महादेवी वर्मा के कवि-व्यक्तित्व को कुछ इस प्रकार से रेखांकित किया था।

हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणि
स्फूर्ति चेतना, रचना की प्रतिमा कल्याणि

महादेवी वर्मा को 'रचना की प्रतिमा कल्याणि कहने का तात्पर्य यही था कि वे एक ऐसी कवियित्री हैं जिनमें कुछ नए ओर रोचक सृजन के लिए एक उत्कट स्फूर्ति और चेतना देखी जा सकती है।

सृजनात्मकता क्या है? यह एक कठिन प्रश्न है किंतु सामान्यत: इसके दो गुणों पर विशेष बल दिया जाता है- एक नवीनता और दूसरा रुचिता। नवीनता को दृष्टि में रखकर सृजन की अनेक परिभाषाएं दी गई हैं। उदाहरण के लिए कहा गया है कि सृजनात्मकता पार्श्व-चिंतन (लैटरल थिंकिंग) है। हम अपने साधारण चिंतन में वस्तुओं को उनके साधारण व सुनिश्चित संदर्भों में देखते हैं। इन संदर्भों से हटकर उन्हें किसी अन्य संदर्भों में देखना अभ्यस्त मार्ग से हटकर, मुख्य सड़क को छोड़कर खुद अपनी बनाई पगडंडी पर चलना ही, वस्तुत: पार्श्व-चिंतन है। पार्श्व-चिंतन का अर्थ है किसी पुरानी लीक की आसक्ति में न फंसना और एक नई राह को खोज निकालना, अथवा उसका निर्माण कर लेना। पार्श्व-चिंतन एक उन्मुक्त उड़ान है। यह बंद पिंजड़े से बाहर निकलने के लिए एक छटपटाहट, एक सकारात्मक प्रयास है।

इस तरह का प्रयास हम महादेवी वर्मा के साहित्यिक कर्म में आसानी से देख सकते हैं। ग़ालिब ने इस सर्जनात्मकता को 'हसरते-तामीर' कहा था। ''वो जो हम रखते थे इक हसरते तामीर, सो है।'' यह गढ़ लेने की, रच लेने की एक उत्कट कामना है। यह नई रचना और नई जमीन तलाशने का अरमान है। भले ही इसके लिए कितनी ही दुश्वारियां क्यों न झेलनी पड़े और कितनी ही कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े। ऐसी कठिनाइयों का विश्लेषण और फिर उन पर विजय प्राप्त करने के लिए उनका सामना करना निर्माण और सृजन की राह बनाना है। महादेवी वर्मा कहती हैं-

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला
घिरेगी निर्माण उन्माद
ये अमरता नापते पद
बांध लेंगे अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण वेला

महादेवी के भीतर का यह 'निर्माण-उन्माद', कुछ नया कर गुजरने के लिए एक ललक भर नहीं है। यह एक 'हसरते तामीर' (निर्माणाकांक्षा) है जो अंधकार के वजूद को पूरी तरह स्वीकार कर, बड़ी शिद्दत के साथ उजाले के लिए जूझती है। यह 'तिमिर में स्वर्ण वेला' की तलाश है।

सृजनशीलता के लिए यह आवश्यक है कि वह सकारात्मक हो और एक व्यापक हित में कार्यरत हो। तभी वह सृजनात्मकता के दूसरे गुण 'रुचिता' की पूर्ति कर सकता है। महादेवी वर्मा को बेशक पीड़ा और दुख की एक अमर गायिका के रूप में प्राय: प्रस्तुत किया गया है। यह ठीक है कि उनकी कविता में वेदना है, आंसू हैं, निराशा और अंतरमुखता भी है- किंतु ये भाव उनकी कविता के संदेश नहीं हैं। ये केवल समाज में नारी की वास्तविक स्थिति के द्योतक हैं। इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में एक असंतोष है और शायद आक्रोश भी है। इनमें संघर्ष के लिए सजगता का स्वर भी देखा जा सकता है।

भगवान बुद्ध के चिंतन का आरंभ भी दुख से ही होता है। उनका पहला आर्य-सत्य दुख ही है। बौद्ध दर्शन के अनुसार समस्त संसार दुखमय है। 'सर्वम् दु:खम'। विश्व के आरंभ से अब तक अश्रुबाढ़ में जो आंसू बहे हैं, उनकी तुलना समुद्रों के तमाम पानी से नहीं की जा सकती। दुख संसार का सबसे बड़ा सत्य है और इससे निजात पाना ही मनुष्य का परम लक्ष्य है। यह दुख जीवन की वास्तविकता से बौद्ध-दर्शन का संबंध तो बताता है, पर यह हतोत्साहित करने वाला दुख नहीं है, यह निराशा या हताशा को जन्म नहीं देता। बौद्ध दर्शन, इसमें संदेह नहीं, पृथ्वी पर प्रसन्नता का वचन नहीं देता और न ही परलोक में सुख का आश्वासन देता है- जैसा कि अक्सर अन्य धर्मों में देखा गया है। लेकिन यह इतना अवश्य बताता है कि हम भले ही दुख के शिकार हों किंतु उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। बुद्ध जीवन के अंधेरे पक्ष पर बल देते हैं कि हम धोखे में न रहें और संसार में व्याप्त पीड़ा को समझ सकें। पर उन्होंने यदि दुख को रेखांकित किया है तो उससे बचने का मार्ग भी सुझाया है। दुख

विरोधमार्ग और दुख निरोध भी बुद्ध धर्म के आर्य सत्य हैं।

महादेवी वर्मा के काव्य में जो पीड़ा है वह नि:संदेह बुद्ध के दुख से भिन्न है। बुद्ध का दुख रोग से, बुढ़ापे से, मृत्यु से उत्पन्न दुख है, किंतु महादेवी की पीड़ा मानसिक और आध्यात्मिक अधिक है। उनकी कविता में चेतन से अधिक अवचेतन का तथा यथार्थ से अधिक आदर्श (की प्राप्ति) का दबाव है। अवचेतन अज्ञात् है और आदर्शोपलब्धि भविष्य के गर्त में छिपी है। दोनों ही स्थितियां अंधकार में हैं लेकिन इस अंधकार के घटाटोप में महादेवी वर्मा को प्रकाश की किरण कहीं न कहीं दिख ही जाती है। यह उन्हें पीड़ा और विरह संतप्त वास्तविकता का अतिक्रमण करने के लिए प्रेरित करती है। उनकी आस्था का दीपक मधुर-मधुर जलता है और दामिनी कौंध-कौंध जाती है। तभी तो वे कह पाती हैं, "खोल दो यह क्षितिज मैं थी देख लूं उस ओर क्या है?" दीपक महादेवी के काव्य में एक महत्वपूर्ण प्रतीक है। इसके अतिरिक्त बीन और रागनी, दर्पण और छाया, घन और दामिनी, रश्मि और प्रकाश का भी उनके काव्य में बार-बार उल्लेख हुआ है। बेशक दुख पीड़ा, आंसू और वेदना भी है, लेकिन इन समस्त अभावों में अंधकार का एकांतिक वास नहीं है। वहां, साथ ही, रागनी और दर्पण भी है, दामिनी और किरण भी है। छाया के साथ कहीं न कहीं प्रकाश भी है।

महादेवी वर्मा को प्राय: एक छायावादी-रहस्यवादी कवयित्री के रूप में जाना गया है। और बहुत हद तक यह ठीक भी है। आध्यात्मिक रहस्यानुभूति की पूर्णता के लिए 'डार्क नाइट ऑव द सोल' का अनुभव एक अनिवार्य सोपान है। महादेवी वर्मा ने इसे 'नैश-तम' (निशा का अंधकार) कहा है। यह 'नैशतम' वस्तुत: भौतिक, नैतिक और मानसिक पीड़ा है। लगभग सभी रहस्यवादी इस आत्मा के अंधकार से गुजरे हैं। जब तक मनुष्य इस अंधकार रूपी रात्रि का अनुभव नहीं करता, वह अपने आप में स्थित नहीं हो सकता। प्रकाश के लिए अंधकार जरूरी है। यह अंधकार जहां संसार की क्षण भंगुरता का प्रतीक है और जीवन के तिरोभाव (मृत्यु) का प्रतीक है, वहीं यह असीम का प्रतीक भी है- जो अज्ञात है- और यह आस्था का भी प्रतीक है क्योंकि आस्था और विश्वास की कोई तर्कसंगत वजह बताई नहीं जा सकती है। महादेवी वर्मा कहती हैं –

शून्य नभ में उमड़ जब दुख भार-सी
नैशतम में सघन छा जाती घटा
बिखर जाती जुगनुओं की पंक्ति भी
जब सुनहरे आंसुओं की हार-सी
तब चमक जो लोचनों को मूंदता
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है?

महादेवी वर्मा के काव्य में इस प्रकार 'नैश-तम' का एकांतिक साम्राज्य नहीं है। उनके यहां घटाटोप, अंधकार में जुगनुओं की बिखरी हुई पंक्ति भी है और आंसुओं का सुनहरा हार भी है, तड़ित की चमक भी है और मुस्कान भी है। अर्थात्, आशा भी है और आस्था भी।

महादेवी की कविता में रात और अंधकार के अनेकानेक चित्र हैं, किंतु अपार अंधकार से लड़ता हुआ वहां एक दीपक भी बार-बार अपनी उपस्थिति दर्ज करता है। उन्होंने *दीपशिखा* के 'दो शब्द' में लिखा है, "आलोक मुझे प्रिय है, पर दिन से अधिक रात का। दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता, परंतु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है।" इससे स्पष्ट है कि अंधकार से अधिक प्रकाश में और पलायन से अधिक संघर्ष में उनकी आस्था है।

महादेवी वर्मा का काव्य कई अर्थों में 'ट्रांसेंडैंटल' है। लोकातीत है। वे अपने काव्य में एक ऐसी इन्द्रियातीत अनुभूति को प्राप्त करना चाहती हैं जो उन्हें 'अज्ञात' की उपलब्धि करा सके। किंतु जहां तक उनके गद्य लेखन का प्रश्न है, वे पूरी तरह यथार्थ और वास्तविकता की ठोस भूमि पर अवस्थित हैं। उदाहरण के लिए *शृंखला की कड़ियां* के माध्यम से वे एक ऐसी नारीवादी चिंतक के रूप में हमारे सामने आती हैं जो न केवल स्त्री को उसकी हीन और पतित अवस्था से अवगत कराता है, बल्कि उसे संघर्ष के लिए तैयार भी करता है। नारी के जीवन की जटिल समस्याओं, उसकी दासता की दारुण स्थितियों और मुक्ति की उसकी दिशाओं की जैसी विवेचना हमें महादेवी के गद्य-लेखन में मिलती है, विरल है। किंतु हमारा आशय इस मुद्दे को यहां उठाने का सिर्फ इतना ही है कि महादेवी वर्मा के संपूर्ण साहित्य को देखते हुए उनकी कविता को केवल छायावादी-रहस्यवादी ढांचे में पिरोकर समझने की कोशिश एक बेमानी कोशिश है। बेशक उनकी कविता में जो लोकातीत तत्व है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता, किंतु उनके काव्य में दुख और अंधकार केवल आरंभिक बिंदु हैं। उसमें सात्विक आक्रोश और संघर्ष के लिए आमंत्रण निहित है। ❑

आजकल की विज्ञापन दरें

	एक अंक के लिए		चार अंकों के लिए	
	रंगीन	श्वेत-श्याम	रंगीन	श्वेत-श्याम
पूरा पेज	8000	4000	25600	12800
आधा पेज	5000	2500	16000	8000
अंतिम आवरण	13000	7000	41600	22400
दूसरा अथवा तीसरा आवरण	11000	6000	32200	19200

तकनीकी विवरण

संपूर्ण आकार 21 सेंमी / 28 सेंमी
प्रिंट एरिया 17 सेंमी / 24 सेंमी

डिमांड ड्राफ्ट "निदेशक, प्रकाशन विभाग" को देय होना चाहिए।

विज्ञापन एजेंसियों को 15 प्रतिशत एजेंसी कमीशन दिया जाएगा।

संपर्क करें:

विज्ञापन व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम, सेक्टर-1, नई दिल्ली-110066
फोन : 26105590 , फैक्स : 26175516 / 26193012

'मां के ठाकुर जी भोले हैं !'

महादेवी वर्मा की बाल कविताएं

महादेवी की बाल कविताएं बेशक बच्चों के लिए एक मीठा और अनमोल उपहार हैं। पर इसके साथ-साथ वे हिंदी साहित्य की एक बेशकीमती धरोहर भी हैं। इसलिए कि इनमें बाल कविता की एक आश्चर्यजनक सच्चाई और शक्ति छिपी है कि महादेवी जैसी रहस्यवादी कवयित्री भी बच्चों के लिए लिखती हैं, तो इतनी सरल और सहज हो जाती हैं कि उनमें बच्चों के नटखटपन और तमाम भोली शरारतों की गूंजें सुनी जा सकती हैं। महादेवी की बाल कविताओं पर प्रकाश डाल रहे हैं **प्रकाश मनु**

महादेवी वर्मा हिंदी की शीर्ष कवयित्री हैं, जिन्होंने कविताएं लिखी ही नहीं, कविता का इतिहास भी रचा। अंतर्मुखी लय तथा बारीक तारों से बुनी उनकी कविताएं ऐसी गझिन और रहस्यवादी कविताएं हैं, जिन्होंने छायावादी कविता में शामिल रहस्य और अध्यात्म की अनुभूतियों को लेकर एक लंबी और अमिट बहस को जन्म दिया। पर शायद बहुतों को यह जानकारी न हो कि महादेवी जी ने बच्चों के लिए भी लिखा है। उन्होंने एक से एक सुंदर और सजीली बाल कविताएं लिखीं। और दिलचस्प बात यह है कि बच्चों के लिए लिखते समय महादेवी एकदम बच्चों जैसी सरल हो जाती हैं। मानो बड़ों के लिए लिखी गई कविताओं में उनका जो गहन प्रेम और विरह भाव है, या जो पीड़ा का उत्ताप है, बच्चों के लिए लिखते समय वह ममता और वात्सल्य का झरना बनकर फूट पड़ा है। और वे ऐसी चंचल और भोली बाल कविताएं लिखने में रम जाती हैं जिनमें नन्हे-मुन्नों की छोटी-छोटी अबोध इच्छाओं, मीठे सपनों, खेलकूद, नटखटपन, और हंसाने-गुदगुदाने वाली शैतानियों के चित्र हैं। इन कविताओं को पढ़कर कई बार तो आश्चर्य होता है कि अच्छा इन्हें महादेवी जी ने ही लिखा है...या कि उनके भीतर ऐसी सीधी-सरलता भी है कि हर बच्चे को ये अपनी कविताएं लगती हैं और एक बार पढ़ते ही ये खुद-ब-खुद बच्चों के होंठों पर नाचने-थिरकने लगती हैं।...पर आश्चर्य, महादेवी जी की इतनी अद्भुत बाल कविताओं की ओर भी आलोचकों का ध्यान नहीं गया।

महादेवी जी की बाल कविताओं के दो संग्रह छपे हैं- 'ठाकुरजी भोले हैं' तथा 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला'। दो छोटी-छोटी पुस्तकें, जिनमें बचपन की अनुभूतियों का बड़ा खजाना, छिपा है। इनमें 'ठाकुर जी भोले हैं' में क्रीड़ा भाव और चंचलता अधिक है, तो 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला' में देशभक्ति की ज्वाला और स्वाधीनता संघर्ष की छाप है। 'ठाकुर जी भोले हैं' संग्रह में महादेवी जी की कुल नौ बाल कविताएं शामिल हैं। इनमें 'ठाकुर जी भोले हैं' नाम से भी एक कविता है। कुल पांच पंक्तियों की कविता, लेकिन बच्चों के लिए लिखी गई यादगार कविताओं में इसकी गिनती होनी चाहिए-

ठंडे पानी से नहला के
ठंडा चंदन इन्हें लगाती,
इनका भोग हमें दे जाती
फिर भी कभी नहीं बोले हैं
मां के ठाकुर जी भोले हैं।

इसी तरह तारों को लेकर लिखी गई महादेवी की एक कविता में बच्चों की सहज भावनाएं मानो थोड़े से शब्दों में बंध गई हैं-

आओ प्यारे तारे आओ
तुम्हें झुलाऊंगी झूले में,
तुम्हें सुलाऊंगी फूलों में,
तुम जुगनू-से उड़कर आओ,
मेरे आंगन को चमकाओ।

महादेवी जी की 'बया से' कविता भी अद्भुत है। इसमें बया का तिनके लाकर अपना खूबसूरत महल बनाना तो है ही, साथ ही बया और बच्चों का यह खूबसूरत नाता भी है कि -

तुझको दूर न जाने देंगे
दानों से आंगन भर देंगे,
और हौज में भर देंगे हम
मीठा-मीठा पानी।
बया हमारी चिड़िया रानी।

कविता की आखिरी पंक्तियां बड़ी गजब की हैं-

फिर अंडे सेएगी जब तू
निकलेंगे नन्हे बच्चे तब
हम आकर बारी-बारी से

कर लेंगे उनकी निगरानी
फिर जब उनके पर निकलेंगे
उड़ जाएंगे, बया बनेंगे
हम तब तेरे पास रहेंगे
तू रोना मत चिड़िया रानी
बया हमारी चिड़िया रानी!

इसी तरह तितली को लेकर लिखी गई महादेवी जी की एक छोटी-सी, प्यारी कविता है जिसमें मेह बरसने के आसार हैं और महादेवी का विकल मन बार-बार दौड़कर तितली की ओर जाता है। भला इस नन्ही तितली को इस बे-मौसम में आश्रय कहां मिलेगा-

मेह बरसनेवाला है,
मेरी खिड़की में आ जा तितली!
बाहर जब पर होंगे गीले,
धुल जाएंगे रंग-सजीले,
झड़ जाएगा फूल,
न तुझको बचा सकेगा छोटी तितली!
खिड़की में तू आ जा तितली!

आगे की पंक्तियों में बड़ी मार्मिकता से इस बात का बखान है कि अगर यह नन्ही तितली बच्चों की निगाह में आ गई, तो स्वाभाविक कौतूहलवश बच्चे उसे पकड़े बगैर रहेंगे नहीं। फिर उसे कापी-किताब में दबाकर रख देंगे।...बेचारी तितली का तब भला क्या हाल होगा ?

मगर हाथी पर लिखी गई बाल कविता में महादेवी का सहज हास्य-बोध जाग पड़ता है। और वे वर्षा को हाथी की सूंड से झरने वाले फव्वारे की शक्ल में पेश करती हैं-

हाथी न अपनी सूंड में
यदि नीर भर लाता अहो,
तो किस तरह बादल बिना
वर्षा यहां होती कहो?

इसी तरह कोयल पर लिखी कविता में कोयल के लीन होकर गाने का वर्णन है तो महादेवी जी इस ओर भी ध्यान दिलाती हैं कि-

नहीं चाहिए इसको तबला
नहीं चाहिए हारमोनियम,
छिप-छिपकर पत्तों में यह तो
गीत नया गाती है।

'अब यह चिड़िया कहां रहेगी' महादेवी वर्मा की शायद सबसे सुंदर बाल कविता है, जिसमें एक नन्ही चिड़िया का दुख उनके भीतर गहरे उतर गया है। आंधी के कारण चिड़िया का घोंसला उड़ गया है और वह बुरी तरह परेशान है। उसके अंडे टूट चुके हैं और वह इस कदर अकुलाकर चारों ओर भाग रही है कि उसकी व्याकुलता स्वयं महादेवी को विकल करने लगती है। मगर अब मुश्किल यह है कि -

घर में पेड़ कहा से लाएं,
कैसे यह घोंसला बनाएं,
कैसे फूटे अंडे जोड़ें,



किससे यह सब बात कहेगी,
अब यह चिड़िया कहां रहेगी?

महादेवी जी की बाल कविताओं की दूसरी पुस्तक 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला' में देभक्ति, क्रांति और वीरता की धधकती आग है। महादेवी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की ज्वालाओं को निकट से महसूस करने के साथ-साथ स्वयं भी उससे गहराई से जुड़ी रही हैं। उनके भीतर की वही आग और उसका ताप उनकी 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला' की कई कविताओं में है और ये कविताएं निर्भय होकर देश के लिए बलिदान देने का भाव जगाती हैं-

बेड़ी हथकड़ियों के गहने,
हमने अब हंस-हंसकर पहने,
काली फांसी की डोरी को
हमने तो जयमाल बनाया।
हमने कारागार बसाया।

इसी तरह 'मस्तक देकर आज खरीदेंगे हम ज्वाला' तथा 'ध्वज-गीत' सरीखी उनकी कविताएं पढ़कर आज भी भीतर बिजली-सी दौड़ जाती है।

महादेवी की बाल कविताएं बेशक बच्चों के लिए एक मीठा और अनमोल उपहार हैं। पर इसके साथ-साथ वे हिंदी साहित्य की एक बेशकीमती धरोहर भी हैं। इसलिए कि इनमें बाल कविता की एक आश्चर्यजनक सच्चाई और शक्ति छिपी है कि महादेवी जैसी रहस्यवादी कवयित्री भी बच्चों के लिए लिखती हैं, तो इतनी सरल और सहज हो जाती हैं कि उनमें बच्चों के नटखटपन और तमाम भोली शरारतों की गूंजें सुनी जा सकती हैं। महादेवी जी की कवि शख्सियत को समझने का सही तरीका शायद यही है कि उनके छायावादी गीतों और दुर्लभ रेखाचित्रों और संस्मरणों को इन बाल कविताओं के साथ रखकर देखा जाए। तभी उनकी वह संपूर्ण शख्सियत सामने आएगी, जो अभी तक ओट रही है। और तभी उनके उन बेहद आनंदमय रचनात्मक क्षणों से हम रू-ब-रू हो सकेंगे, जब गहन चिंतन के बोझ को उतारकर, अद्वितीय सरलता से लिपटी उनकी ये बाल कविताएं, मानो कहीं बड़ा रहस्य और आश्चर्यलोक रचती हुई उनके अंतस से छलछलाकर फूट पड़ी थीं!❑

संस्मरण

हमारा साहित्यिक घर-परिवार और महादेवी वर्मा

महादेवी जी ने परिवार के रिश्तेदारों को बुलाया और फिर ढोलक बजाकर खूब लोकगीत, बन्नी, बधाई, भात, विदाई– न जाने क्या–क्या गाया / आवाज भारी थी, पर उसमें लय थी– हम सभी ने उनका साथ दिया / संगीत बड़ा मधुर और सुंदर रहा / उनका वह घरेलू शादी के वातावरण में रिश्तेदारी निभाने वाला रूप, गाना–बजाना एक नया अनुभव था / ... महादेवी वर्मा के कुछ अज्ञात पहलुओं से परिचय करा रही हैं **सुषमा पियदर्शनी**

साहित्य और कविता के परिवेश में ही पली-बढ़ी हूं मैं। आरंभ में पिताजी (स्व. डा. नगेंद्र) कवि के रूप में ही प्रसिद्ध थे- आलोचना लिखने के बावजूद वे मूलत: कवि प्राण थे। अत: हमारा संबंध अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा कवियों से ही अधिक रहा बचपन में। महादेवी वर्मा को पिताजी दीदी कहते थे। वे एकाध बार हमारे घर पर ठहरी थीं और दिल्ली आने पर हमारे घर भी आई थीं। ऐसा मैंने सुना था- जब से मैंने समझना प्रारंभ किया वे न हमारे घर पर रुकीं, न ही हमारे घर आईं। अत: उनसे मेरा परिचय अन्य कवियों की तरह बचपन से जुड़ा नहीं है।

सन 50 के लगभग का समय था- मैं किशोरी थी, सुना कि महादेवी वर्मा आई हैं दिल्ली- राष्ट्रपति-भवन में ठहरी हैं। पिताजी उनसे फोन पर बात कर रहे थे कि वे हमारे घर भी एकाध दिन ठहरें, हमारे घर आयें पर उन्होंने क्या कहा मैं नहीं सुन पाई। उनसे मिलने पिताजी के साथ अपनी 'मोरिसएट' कार में राष्ट्रपति भवन गई। मैंने उनकी कविताएं पढ़ी थीं। 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल प्रियतम का पथ आलोकित कर', 'मैं नीर भरी दुख की बदली', 'जो तुम आ जाते एक बार', छायावादी रोमानी गीत, किशोर आयु में कितने सपने जगाते हैं। मेरे मन में भी इन गीतों ने न जाने कितने सपने भरे। इन गीतों के माध्यम से इनकी लेखिका कवयित्री का जो चित्र मानस-पटल पर उभरा वह एक अनिंद्य सुंदरी कोमलांगी नवयुवती का था, जो कोकिल-कंठी भी थी। चित्र धुंधला-धुंधला था पर बेहद रोमानी, रंगीन और वायवी। कवयित्री से मिलने का आनंद और उत्सुक जिज्ञासा से रास्ता बेहद लंबा लग रहा था दरियागंज से राष्ट्रपति भवन तक का।

राष्ट्रपति भवन के अतिथिगृह में वे ठहरी थीं, अनेक घुमावदार रास्ते पार कर हम उनके कमरे तक पहुंचे। दिल की धड़कन थम-सी गई थी। अंदर प्रवेश किया। काउच पर महादेवी जी बैठी थीं। पिताजी ने उन्हें प्रणाम किया- मैंने भी अचकचा कर प्रणाम किया। पिताजी उन्हें 'दीदी' कह रहे थे और तरह-तरह की बातें कर रहे थे और मैं ढूंढ रही थी अपने कल्पना में रसे-बसे चेहरे को, पिताजी के उन्हें 'दीदी' कहते ही छन्न से कुछ टूटा। सपने से यथार्थ में उतर आई। सामने जो प्रौढ़ महिला बैठी थीं वे ही महादेवी वर्मा थीं। सांवला रंग, गठीला शरीर, साधारण खादी की सफेद किनारीदार साड़ी पहने, सिर ढके थीं वे। उनकी आवाज भारी थी- कड़क तथा गुरु गंभीर मुद्रा में भी कोमलता नहीं थी, तेज तथा गरिमा थी। अपनी कल्पना और यथार्थ में जमीन-आसमान का अंतर पा मैं सहम-सी गई। वैसे भी पिताजी से डरती बहुत थी मैं, बोलती नहीं थी उनके सामने। पिताजी ने मेरा परिचय करवाया- तो बोलीं, "नाम सुंदर है, छायावादी है।" खिड़की और दरवाजे से फूलों से भरा बगीचा दिखाई देता था- शांत वातारवण, एकांत स्थल- कवितासृजन के लिए बिल्कुल अनुकूल वातावरण। उन्होंने बताया कि एक महीने तो वे यहां रहेंगी ही- उससे अधिक भी रुक सकती हैं। सभी तरह की सुविधाएं हैं- एयर कंडीशनर है, टेलीफोन है, कार उनके लिए अलग से खड़ी रहती है। उनकी बातें कवयित्री की बातें नहीं लग रही थीं, साधारण नारी की बातें थीं। बचपन और किशोरावस्था कितने रोमानी सपने बुन लेती है कवियों के संबंध में- पर ये व्यक्तिगत स्तर पर सामान्य व्यक्ति मात्र होते हैं हमारे-तुम्हारे जैसे। यह बात मेरी समझ में आती जा रही थी उन्हीं के संदर्भ में ही नहीं, अनेक कवियों के साथ वह मोहभंग होता जा रहा था कि वे सामान्य से अलग धरातल पर केवल भाव या मानसिक धरातल पर होते हैं। उनकी बातों में एक गर्व की चमक कौंध जाती थी- उनके गीतों की तरल कोमलता, संवेदना उसमें नहीं थी- आम लोगों जैसी बातें थीं।

वास्तव में वे *अतीत के चलचित्र* और *स्मृति की रेखाएं* की लेखिका के फ्रेम में अधिक फिट हो रही थीं। जो इतनी भावुक, संवेदनशील तरल स्वप्नों से आप्लावित थीं, जो ऐसे सुंदर छायावादी गीत लिख सकीं, कितना वैषम्य और अंतर था उनके दो व्यक्तित्वों में। छायावादी रोमानी कवयित्री इतना बड़ा कदम कैसे उठा पाई होगी केवल 14 वर्ष की आयु में पति के परित्याग का? यह आज भी मेरे लिए पहेली है- शायद उन लोगों के लिए भी जो उन्हें जानते थे। मैं तो बहुत छोटी थी- बातें समझ नहीं पाती थी, पर उनके समवयस्क और कुछ बड़े लोगों ने उनके इन दोनों रूपों को देखा होगा, उनकी क्या प्रतिक्रिया हुई होगी मेरे मन में अब भी यह जिज्ञासा बनी हुई है। कवि के व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में और उसके साहित्य या कविता में साम्य बैठाना ठीक नहीं लगता। भीतर और बाहर हर व्यक्ति के मन में भी तो बड़ा अंतर होता है उसे ही कहां समझ पाते हैं हम। फिर कवि जिसके मन में भी तो कहीं अधिक परतें होती हैं संवेदन की, अनुभव की, विचार की, चेतना की, दर्शन की, जो हमसे कहीं अधिक गहरी तथा गुहा होती है। उन्हें जानना

सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन है, पर जिज्ञासा तो बार-बार कौंधती है। मनोविश्लेषण आलोचनावादियों ने इस अंतर का विवेचन-विश्लेषण कर उसे इतना घृणित तथा कुत्सित बना दिया था, पर उसे पाठकों ने नकार दिया, अस्वीकार कर दिया।

उदात्त कविता और सामाजिक जागरूक चेतना से गद्य रचनाएं लिखने वाली महान् कवयित्री जो युग की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री है। उनके संबंध में बुरी चर्चा करना उन आलोचकों की अपनी गर्हित मनोवृत्ति या ईर्ष्या, कुंठा का ही परिणाम हो सकता है। मैंने तो इससे यह निष्कर्ष निकाला है कि कवि या कलाकार और मनुष्य दो स्तरों पर जीता है, मनुष्य सामान्य धरातल पर साधारणप्राय होता है, कवि या कलाकार का मानसिक धरातल पूर्णत: भिन्न होता है उससे।

एक विचित्र और अजीब-सी घटना याद आ रही है जो मन के ऊहापोह में छूट गई थी। डा. विश्वेश्वर प्रसाद दिल्ली में इतिहास विभाग के अध्यक्ष थे और हमारे पड़ोसी भी कैवेलरी लाइंस में। उनका महादेवी जी से पारिवारिक संबंध था, दोनों इलाहाबाद में आस-पास रहा करते थे। उनसे हमारा भी पारिवारिक संबंध था। उनकी बेटियों से मेरी गहरी दोस्ती थी। एक दिन पता चला कि महादेवी जी उनके घर शाम को आने वाली हैं, मैं शाम को उनके घर पहुंच गई, वहां जाकर पता चला कि उनके पति डा. वर्मा भी आएंगे। जी हां, प्रसाद परिवार से जाना था कि उनका विवाह लगभग 14 वर्ष की अवस्था में हुआ था। पर डा. वर्मा से उनके व्यक्तित्व का मेल नहीं खाता था। अत: उस युग में इतनी छोटी उम्र में उन्होंने विद्रोह किया और उनसे अलग हो गईं। कितना आत्मविश्वास, स्वाभिमान, व्यक्तित्व की दृढ़ता, विचार-चेतना, जागरूकता और विद्रोह की प्रवृत्ति रही होगी उस किशोरी महादेवी वर्मा में। तभी तो वे यह कर पाईं उस परंपरावादी युग में परंपरावादी परिवार में पली-बढ़ी होने के बावजूद कितना प्रखर प्रचंड व्यक्तित्व रहा होगा उस किशोरी वधू का- जो छायावाद की 'मीरा' कहलाती थी।

महादेवी जी और प्रसाद परिवार में घरेलू बातें होती रहीं, इलाहाबाद की चर्चाएं, यादें-बातें भी हुईं, ठहाके, हंसी-मजाक भी। सामान्य स्त्री मात्र थीं महादेवी जी, परिवार की रिश्तेदार-सी। थोड़ी देर बाद डा. वर्मा आ गए। बातों का सिलसिला चलता रहा। डा. वर्मा ने कुछ देर बाद कहा, 'यहां आई हो तो मेरा घर भी देखती जाओ, कमला नगर, यहां से बहुत पास है।' वे उठकर खड़ी हो गईं, कहा, "चलो"। आगे डा. वर्मा कार चला रहे थे, महादेवी जी साथ बैठी थीं, मैं और डा. प्रसाद की बेटियां पीछे लद लीं। हमसे चलने को कहा नहीं गया था, पर जिज्ञासा-कुतूहल, उत्सुकता के मारे हम कार की पिछली सीट पर बैठ उनके साथ चल दिए (हम तब कैवेलरी लाइंस, दिल्ली विश्वविद्यालय में रहते थे)। 10-15 मिनट बाद हम उनके घर पहुंच गए- कमला नगर के घरों जैसा ही साधारण-सा तिमंजला घर था। नक्काशीदार बेल-बूटे वाले घरों के बीच वह घर सीधा-सादा सफेद रंग का था जो उन घरों से उसे अलग कर देता था।

डा. वर्मा कुछ लंबे थे गठीला शरीर, गेंहुआ रंग, प्रौढ़ावस्था सफ़ेद बाल, सामान्य-सा चेहरा, सीधा-सरल व्यक्तित्व- महादेवी जी के व्यक्तित्व के सामने फीका-फीका-सा लग रहा था। घर में नीचे ही रहे हम, सामने क्लिनिक था- उसके साथ ही ड्राइंगरूम था। मध्यमवर्गीय स्तर का, नारी-स्पर्श से विहीन, कलाहीन-सा। हम वहीं बैठे। महादेवी जी ने कहा, 'अरे, तुम इसे घर कहते हो यह तो कबूतर का दड़बा है। मेरे सरवेंट-क्वार्टर भी इससे अच्छे हैं। इलाहाबाद आना तो देखना मेरी कोठी, पूरा फर्श संगमरमर का है, बड़ी-बड़ी खिड़कियां दरवाजे हैं, चारों तरफ फूलों और फलों से भरे बगीचे हैं, हर दरवाजे खिड़की से हरियाली रंग और खुशबू महसूस होती है। मैं घबरा-सी गई, पता नहीं डा. वर्मा की क्या प्रतिक्रिया हो, पर उनके माथे पर शिकन तक नहीं थी, हल्की-सी मुस्कुराहट होठों पर उतर आई। पता नहीं कैसा रिश्ता था- वे उन्हें बहुत अच्छी तरह जानते थे शायद। दोनों ने ही दोबारा शादी नहीं की थी। अनौपचारिक, सहज, सरल, संबंध और व्यवहार था दोनों के बीच (शायद आत्मीय भी हो कौन जाने?) लौटते समय महादेवी जी मजाक करती रहीं, चुटकियां लेती रहीं, डा. वर्मा हल्के-हल्के मुस्कुराते रहे। बाहर ही हमें उतार कर वे वापस लौट गए। मैं अपने घर लौट आई। यह अनुभव, घटना मुझे खूब याद है पूरी डीटेल्स के साथ। क्योंकि इसमें महादेवी जी का एक नया रूप, उनके व्यक्तित्व का नया पक्ष सामने आया।

महादेवी जी की हास्यप्रियता उनके द्वारा बताई एक घटना से स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने बताया कि जब सबसे पहली बार वे कवि सम्मेलन में गईं तो पुरुष और स्त्रियां अलग-अलग बैठे थे। पंत जी को उन्होंने पहली बार देखा था। वे उन्हें जानती नहीं थीं, केवल नाम सुना था। उन्हें पुरुषों की पंक्ति में बैठे देख वे चौंकी, अपने पास बैठी महिला से पूछा यह स्त्री पुरुषों में क्यों बैठी है। उसका उत्तर सुनकर उन्हें आश्चर्य भी हुआ और हंसी भी आई। उन्हें पता चला कि वे पुरुष हैं और महाकवि सुमित्रानंदन पंत हैं। उनकी कमनीय कोमलता या केश-विन्यास से वे उन्हें स्त्री समझ बैठी थीं। यह बात उन्होंने पंत जी को कभी नहीं बताई होगी- मैं आशा यही करती हूं।

दूसरी घटना करुणार्द्र है। निराला जी की निर्धनता की कथा है। उन्होंने अपनी सबसे समर्थ, सशक्त तथा सर्वश्रेष्ठ रचना *राम की शक्तिपूजा* पास की पाठशाला से कागज मांगकर टूटे निब तथा मांगी हुई स्याही से लिखी थी। वास्तव में कविता, कवि की संवेदना, अभिव्यक्ति-क्षमता ही महत्वपूर्ण होती है- कागज-कलम, निब-स्याही के टुकड़े नहीं। पर घटना को सुनाते समय महादेवी जी में दर्द के साथ कवि का स्वाभिमान भी छलक रहा था। मैं तो मन-प्राण-आत्मा तक छटपटा गई- भीग गई, उस विवशता की गाथा को सुनकर।

वास्तव में नारीवादी समाज सेविका थीं महादेवी जी! महिलाओं की शिक्षा के लिए प्रयत्नशील थीं- निर्धन छात्राओं की आर्थिक सहायता भी करती थीं- अपने घर पर भी रखकर उनका पूरा ध्यान रखती थीं। रत्नों की पारखी थीं- श्रीमती दिनेशनंदिनी चौरड़या, जो गद्यगीत लिखती थीं, को अपने संरक्षण में ले लिया- उनकी रचना का प्रकाशन करवाया। उनकी प्रथम कृति को ही 17 वर्ष की आयु में सेक्सरिया पुरस्कार मिला। अत: ऐसे रत्नों को प्रस्तुत करने, खोजने में वे सदैव तत्पर रहती थीं। मैं क्योंकि श्रीमती दिनेशनंदिनी डालमिया से परिचित हूं केवल उन्हें ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर पा रही हूं। मुझे पूरा विश्वास है कि और भी बहुत-सी नारी लेखिकाएं होंगी जिन्हें उन्होंने अपना संरक्षण और प्रोत्साहन दिया होगा।

इलाहाबाद में महादेवी वर्मा की भांजी नीति से डा. प्रसाद के भांजे करुणासागर की शादी होने वाली थी। हमारा परिवार डा. प्रसाद के साथ बराती बनकर वहां गए। दो घर लगभग आमने-सामने थे- पुराने ढंग के बने बीच में आंगन, चारों तरफ बहुत सारे कमरे। सामने लॉन और तीन तरफ बगीचे फलों के। हम किशोर युवा हो चुके थे, पर बचपना बाकी था। हल्की गुलाबी सरदी के दिन थे- सारे दिन सुबह से दोपहर तक हम पेड़ों पर लदे रहते, अमरूद के पेड़ छोटे होते हैं, पर टहनियां खूब मोटी होती हैं। मुझे कच्चे अमरूद पसंद थे, कच्चे होने पर भी वे बहुत बड़े और रसभरे थे। मजा आ गया उन्हें खाकर,

वैसे अमरूद जीवन में फिर कभी नहीं खाए। हम सब बच्चों का नाश्ता और प्राय: लंच अमरूद ही होते थे। डिनर ही घर पर होता था। भीड़-भाड़ में किसी को पता भी नहीं लगता था कि हम कहां हैं, क्या कर रहे हैं। रीति-रस्मों में भाग ले लेते थे। पर फिर भाग जाते अमरूदों के पेड़ों की तरफ। परंपरागत शादी थी पर आर्यसमाजी ढंग से। अत: सभी कुछ सीधा-सादा-सरल और संक्षिप्त-सा था। मेहंदी की रात मेहंदी लगाकर हम सभी बच्चे मिलकर तरह-तरह का हल्ला-गुल्ला मचा रहे थे, कभी फिल्मी गाने की, कभी लोकगीत की एकाध लाइन गाकर नाच-कूद रहे थे- उसे संगीत की जगह मौज-मस्ती ज्यादा कहा जा सकता था। रात को जब महादेवी जी आईं, वही अपनी चिर परिचित सीधी-सादी खादी की वेशभूषा में, सन्नाटा-सा छा गया- सभी उन्हें बड़ी मौसी कहते थे और डरते थे। उन्होंने सभी परिवार के रिश्तेदारों को बुलाया और फिर ढोलक बजाकर खूब लोकगीत, बन्नी, बधाई, भात, विदाई- न जाने क्या-क्या गाया। आवाज भारी थी, पर उसमें लय थी- हम सभी ने उनका साथ दिया। संगीत बड़ा मधुर और सुंदर रहा। उनका वह घरेलू शादी के वातावरण में रिश्तेदारी निभाने वाला रूप, गाना-बजाना एक नया अनुभव था। उनसे डरना छोड़ उनके साथ मस्ती से हम सभी ने गाया और नाचा। जिद करने पर उन्होंने बैठे-बैठे ही हाथों और भावों की मुद्रायें बनाकर नाचने की रस्म भी पूरी की। क्या आप ऐसी महादेवी वर्मा को जानते हैं?

एक बार दिल्ली विश्वविद्यालय में वे भाषण देने आईं। विद्यार्थी मंत्र-मुग्ध से सुनते रहे, बेहद प्रसन्न भी थे इतनी महान् कवयित्री के दर्शन करके। पर उन्हें जल्दी थी। अत: प्रश्नों का उत्तर या विद्यार्थियों से बातचीत के लिए नहीं रुकीं। दूसरी बार वे मैथिलीशरण-भाषणमाला के लिए आईं। रेल से सीधे हमारे घर 16 कैवेलरी लाइंस में आई। थोड़ा विश्राम करके तैयार होने लगीं। हमारी कोठी डुप्लैक्स थी अत: मेरे कमरे के साथ वाला कमरा जो विशिष्ट अतिथियों, विशेषकर महिला अतिथियों के लिए था, उसी में वे ठहरीं। उनके साथ दो लड़कियां थीं- शायद विद्यार्थी थीं, जिन्हें उन्होंने संरक्षण दिया था और अपने पास और साथ ही रखती थीं। एक मद्रास की थी, दूसरी शायद यू.पी या बिहार की। पूरी तरह शांत, शिष्ट और मौन, एक शब्द भी मैंने नहीं सुना, जो महादेवी जी कहती थीं वही वे करती जाती थीं। तैयार होने के लिए वे मेरे बाथरूम में गईं, दोनों भी साथ गईं।

महादेवी जी का शरीर भारी था तथा वे काफी वृद्ध हो चुकी थीं यद्यपि देखने में चुस्त-दुरुस्त लगती थीं। लगभग एक घंटे तक वे बाथरूम में रहीं- केसर, चंदन और न जाने कितनी और सुगंध की लहरें बाहर का घर महका रही थीं। मेरा कमरा तो खूब ही महक रहा था। उनके जाने के बाद भी दो दिन तक वह सुगंध घर में बसी रही, उनके होने का अहसास बना रहा। कमरे में एक फाइल थी- उत्सुकतावश मैंने उसे खोला यह देखने के लिए कि वे क्या बोलेंगी, पर उसमें केवल कोरे कागज थे और *पथ के साथी* पुस्तक। भाषण में वह उनके सामने बंद रखी रही। धाराप्रवाह बड़ी प्रभावशाली सरल भाषा में वे दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) पर भाषण देती रहीं। हॉल में पूरा सन्नाटा था, केवल उनकी वाणी ही थी जिसने सभी को अपने जादू, सम्मोहन में बांध लिया था। सांसों की आवाज भी नहीं सुनाई दे रही थी। अपलक देखते हुए सभी ने वह भाषण सुना। लगभग एक घंटे का लंबा भाषण था, समय का पता ही नहीं चला। जब भाषण रुका, तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूंज उठा। जो श्रोता थे, वे एक महान कवयित्री के पावन दर्शन जो जीवन भर में केवल एक बार ही कर पाये थे, गद्‌गद् थे, सौभाग्यशाली थे। अपनी क्या कहूं, मैंने तो उन्हें बार-बार देखा था।

उसके बाद वे रुग्णावस्था में अ.भा. आयुर्विज्ञान संस्थान (दिल्ली) में आईं। वहां उनके अंतिम दर्शन किए। वे इलाहाबाद लौट गईं, फिर सूचना मिली कि वे नहीं रहीं। मन में खालीपन और दर्द भर गया। ❑

पृष्ठ 78 से आगे

जन-सेवा

पसीने-पसीने हो गए। फिर भी पूरे रौब के साथ जोनल इंजीनियर के कमरे में जा घुसे। उन्होंने देखा जो वर्मा उनको देखते ही पांव छूता था, वहां नहीं था। उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति बैठा था। आंखों पर ढीली-सी ऐनक लगाए।

मेहता साहिब ने उससे पूछा, "वर्मा साहिब नहीं दिखाई दे रहे?"

"उनकी बदली हो गई है", ऐनक वाले व्यक्ति ने उत्तर दिया। "उनकी जगह पर अब मैं काम देख रहा हूं। आप बैठिए।"

मेहता साहिब उसके सामने की कुर्सी पर बैठ गए।

"जी बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर," मेहता साहिब ने अपना हाथ आगे बढ़ाया। "मुझे मेहता कहते हैं। जानकी दास मेहता। मैं विजय एन्क्लेव की एसोसिएशन का प्रधान हूं...।"

मेहता साहिब से गलती हो गई थी। असल में वे कहना चाहते थे, "एसोसिएशन का प्रधान था" पर मुंह से निकल गया, "प्रधान हूं।" किंतु वे चुप लगा गये। उन्होंने गलती सुधारना आवश्यक न समझा।

"कहिए!" ढीली ऐनक वाले ने विनयपूर्वक पूछा।

"हमारे पंप-हाउस की पाइप फट गई है। पानी बह रहा है। लोगों को बड़ी तकलीफ हो रही है?... कई घरों में...।"

मेहता साहिब अभी यह बता ही रहे थे कि किसी ने उनके पीछे से हाथ बढ़ाकर अपना कार्ड इंजीनियर महोदय के सामने रख दिया। औपचारिक रूप से पूछा, "गुप्ता जी कैसे हैं ?" मेहता साहिब ने सिर घुमाकर देखा। उनके पीछे उनका प्रतिद्वंद्वी नालायक गोयल खड़ा था। उसे नये जोनल इंजीनियर का नाम भी पता था।

गुप्ता जी ने ऐनक नीचे करते हुए कार्ड पर नजर मारी तथा एक तरफ पड़ी कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। फिर सहज भाव से बोले, "चलिए, आपसे मुलाकात हो गई पाइप फट गई है, अभी ठीक करा देते हैं...।" गुप्ता साहिब ने सामने मेज पर पड़ी घंटी बजाई । "आपकी शिकायत लेकर अभी एक और सज्जन भी आए थे...।"

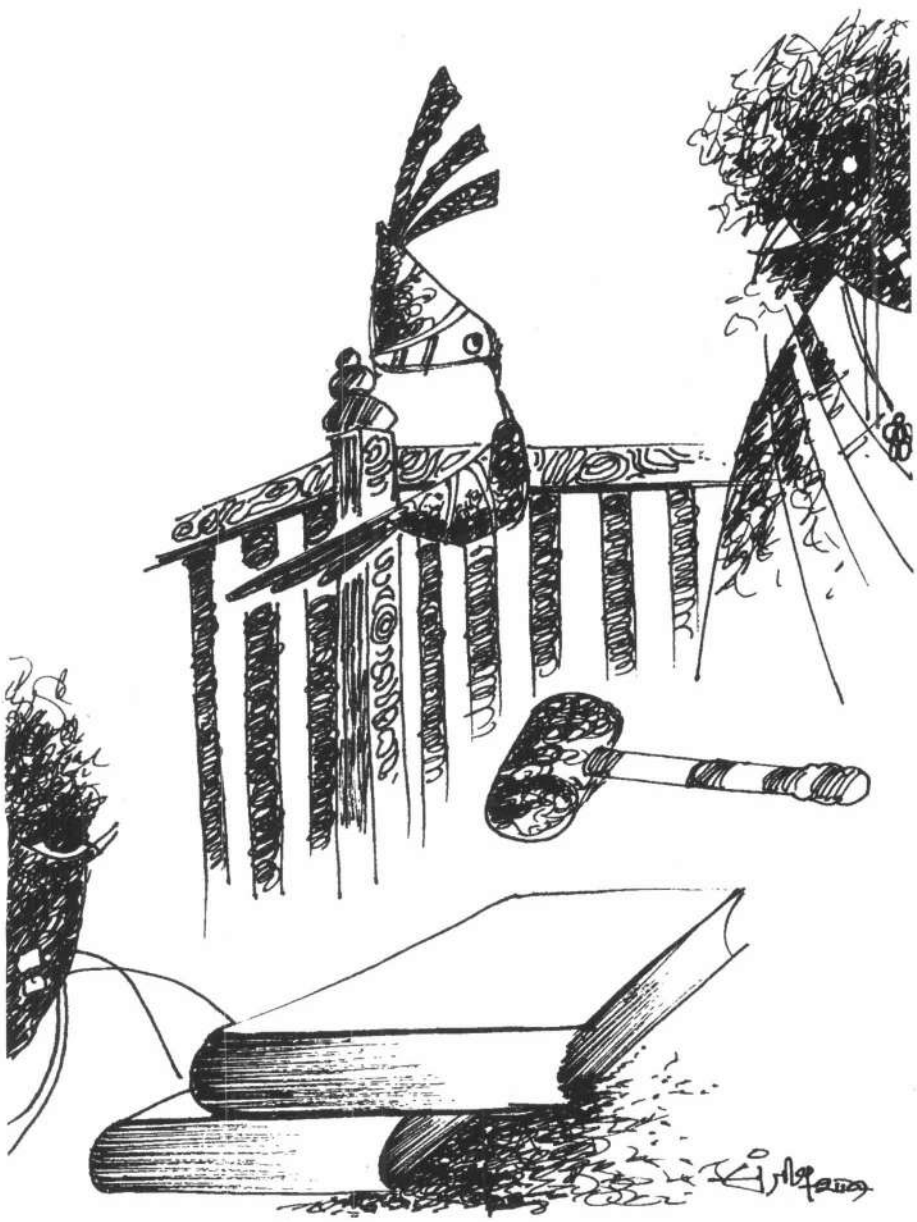
वे खोए-खोए से थे। दिमाग पर जोर डालने लगे। उन्हें याद आ गया। "यहीं बैठे थे कोई बुजुर्ग...।"

उन्होंने ऐनक ऊपर उठाकर सामने देखा। कुर्सी खाली थी। कहने लगे, "यहीं बैठे थे सामने। पता नहीं कहां चले गए...।" उनकी सोई-सोई आवाज में एक बेपरवाही की झलक थी। ❑

कहानी

डायरी के पन्नों पर

मृदुला सिन्हा



जज साहब मानो इस मामले में थक से गए थे। सुवर्णा और सौहार्द के दाम्पत्य झगड़ों के अनेक मोड़ों की कथा सुनते-गुनते कई वर्ष बीत गए। पृथ्वी ने सूरज की हजारों बार परिक्रमाएं कर ली। न्यायाधीश मदन मोहन जी वैवाहिक झगड़ों के निबटारे में देरी होने के सख्त विरोधी थे। उनका मानना था– ''दाम्पत्य के प्रारंभिक काल में ही झगड़े होते हैं। दाम्पत्य के जमने का भी यही काल होता है। यदि दोनों के बीच कोई विवाद हो गया तो शीघ्र निटारा होना चाहिए। पच्चीस-तीस वर्षों के बाद फैसले होने पर तो कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।''

जज साहब के अपने विचार और उनके न्यायालय की प्रक्रिया में कोई तालमेल नहीं था। उनकी लाख कोशिशों के बाद भी सुवर्णा और सौहार्द के मामले में फैसला सुनाने में देरी हो रही थी। दरअसल अधिकांश वैवाहिक झगड़ों से भिन्न था यह मामला। पति-पत्नी के बीच किसी दूसरी महिला या पुरुष के घुसपैठ की घटना उतनी ही सनातन है जितना पति-पत्नी के रूप में स्त्री-पुरुष का साथ रहना। पर इस मामले में तो बाहर से एक पुरुष और एक महिला, दोनों की घुसपैठ हुई थी। वह भी विपरीत लिंग मित्रता नहीं। सुवर्णा की मित्रता मेधा से और सौहार्द के घनिष्ट मित्र शिवालिक।

सौहार्द का अधिकांश समय शिवालिक के साथ बीतता। दफ्तर में दोनों साथ थे। लंच के समय ही मिलना होता। यहां अंतरंग बातें नहीं हो पातीं। इसलिए दोनों दफ्तर से साथ निकलते। चाय के बहाने किसी रेस्टरॉं में बैठते तो रात्रि भोजन का समय बीत कर सोने का समय आ जाता। इधर सुवर्णा और मेधा की जोड़ी की भी यही स्थिति थी। मेधा की मां ने एक दिन हिदायत दी थी– ''मेधा! अब तुम सुवर्णा का संग साथ छोड़ो। उसका विवाह हो गया। उसे सौहार्द के साथ उठने-बैठने दो।''

सुवर्णा के लिए उसकी मां की सीख थी– ''बेटी ! अब तुम सौहार्द के साथ अधिक समय

व्यतीत किया करो। आज कामकाजी पति-पत्नियों को आपस में बात करने का अवसर नहीं मिलता। मेरी समझ से दोनों के बीच तनाव का कारण भी आपसी मेल-जोल व वार्तालाप की कमी होती है।''

सुवर्णा और मेधा दोनों खिल-खिलाकर हंस पड़ी थीं। मां ने कड़क स्वर में कहा- ''हंसो मत। कहीं तुम्हारा आज का हंसना भविष्य में रोने का कारण न बन जाए।'' सुवर्णा समझ और संभल गई थी। वह जल्दी घर लौटने लगी। पर उसे अपने फ्लैट में शाम की चाय से लेकर रात्रि भोजन भी अकेले करना पड़ता। दाम्पत्य के दामन में एक छोटा-सा छिद्र हो गया। शक की घुसपैठ से बात बेडरूम, ड्राइंगरूम और फ्लैट की सीमाएं लांघ दोनों के दफ्तर, परिवार, परामर्श केंद्र से होते हुए कोर्ट तक पहुंच गई। दरअसल दाम्पत्य मनमुटाव के नन्हे से छिद्र में सबने उंगलियां डाल-डालकर देखीं। छिद्र बढ़ता गया। उंगलियां डालने वालों के प्रयास तो छिद्र भरने के थे। उन्हें क्या पता था कि छिद्र भरने के मामले में उनके वे प्रयास उल्टी दिशा की ओर बढ़ते गए थे। दाम्पत्य के दामन में पड़े छोटे-से विस्तार लिए छिद्र ने दामन के दोनों छोरों तक पहुंचकर उसे दो टुकड़े करने के कगार पर पहुंचा दिया। अपने हिस्से के उस फटे हुए टुकड़े को लेकर ही सुवर्णा ने कोर्ट जाने की हिम्मत की थी। पर किनारा अब भी जुड़ा था। इसलिए सौहार्द को भी जाना पड़ा।

इस स्थिति में आने में भी दो वर्ष बीत गए थे। इस बीच बहुत कुछ उलट-पलट हो गया। सौहार्द को मनाने में मेधा और सुवर्णा को समझाने में शिवालिक का अधिक समय लगने लगा। मानो मेधा और शिवालिक की सीधी चाल ने भी उल्टी दिशा ले ली। सौहार्द और सुवर्णा ने दोनों के प्रयास को अपने-अपने ढंग से लिया। सुवर्णा के लिए मेधा का बार-बार सौहार्द से मिलना, वही अमरबेल पैदा कर गया जो शक के नाम से किसी भी दाम्पत्य में बिना मिट्टी-पानी के भी उत्पन्न हो जाती है। अपने दफ्तर से मेधा सौहार्द के दफ्तर आती। उसी की कार में सामने की सीट पर बैठकर उसे समझाती बुझाती सुवर्णा के फ्लैट तक पहुंच जाती। प्रारंभ में उसे अपनी अंतरंग मित्र के व्यवहार पर आश्चर्य हुआ था। पर धीरे-धीरे सौहार्द के साथ उसका अधिक मिलना-जुलना, घूमना-फिरना शक से असमंजस, ईर्ष्या और विश्वास की सीढ़ियां पार करता नफरत तक पहुंच गया। सुवर्णा ने मेधा और सौहार्द से बात करनी भी छोड़ दी। इधर सौहार्द और शिवालिक के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही बीता। मेधा और शिवालिक का आपस में इतना अधिक मिलना-जुलना हुआ मानो उन्हें लूट में चरखा नफा मिला हो।

दरअसल दोनों सुवर्णा और सौहार्द के बीच आई दरार पाटने की उपाय योजना बनाते रहे। पति-पत्नी के बीच विश्वास, एक-दूसरे के लिए समर्पण और आपसी तालमेल और समझ के लिए ही दोनों के विचार प्रकट होते। इस क्षेत्र में दोनों को एक-दूसरे के विचार पसंद आ गए थे। दोनों ने एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होकर भी अपने भाव छुपा रखे थे। उनका पूरा ध्यान अपने-अपने मित्र के दाम्पत्य जीवन में सुख शांति लाना था। उन्होंने यह भी एहसास किया था कि वे दोनों ही उस मनमुटाव के कारण बने थे। इसलिए निदान बनने के लिए थोड़ा बहुत त्याग करने के लिए भी तैयार थे। उन दोनों का विवाह बंधन में बंधना सुवर्णा और सौहार्द के लिए संभवत: सुखद नहीं होता। उन्होंने अपने निर्णय को थोड़े समय के लिए स्थगित रखकर ही अपने-अपने मित्रों के लिए त्याग करने का मन बनाया था। आपस में अपने बारे में कम, अपने मित्रों के बारे में अधिक चर्चा होती।

पर देखते-देखते उनके हाथों से मामला खिसककर कोर्ट तक पहुंच गया था। जज साहब ने भी मित्र के नाते मामले के बारे में छानबीन करने के लिए मेधा और शिवालिक को तलब किया। मेधा ने सौहार्द और शिवालिक ने सुवर्णा की इतनी तारीफ की कि जज साहब की निगाह में भी दोनों शक के घेरे में आ गए। थोड़े समय तक जज साहब भी इन दोनों को ही उस दाम्पत्य में दरार का कारण समझे बैठे रहे। पर वह समय भी आसमान में छाए घने काले बादल की तरह छंट ही गया। मेधा और शिवालिक से मामला नहीं सुलझा पर जज साहब को इन दोनों के माध्यम से मामला सुलझाने के कई सूत्र मिले। उन्होंने सौहार्द और सुवर्णा को दो सप्ताह के लिए शिमला घूमने जाने के लिए बाध्य किया। सौहार्द को पत्नी के साथ दो बार सुवर्णा के मायके भी जाना पड़ा। पर तीनों बार दोनों के संग-संग रहकर लौटने पर भी मन-भेद के फासले में कोई अंतर नहीं आया था। जज साहब ने तो कोर्ट की कार्रवाई के दौरान फासले में थोड़ी वृद्धि ही अनुभव की थी। जज साहब हिम्मत हारने वाले नहीं थे। तलाक के बारे में अपनी धारणा बदलने वाले भी नहीं।

सुवर्णा के द्वारा सौहार्द से अलग मकान में रहने की दी अर्जी अस्वीकृत हुई। उन्होंने साफ शब्दों में कहा- ''तलाक की अर्जी देने और तलाक की मंजूरी मिलने न मिलने तक दोनों को यथास्थिति में ही रहना होगा. बार-बार स्थिति बदलना तलाक मामले के निपटारे में बाधक होता है।''

दफ्तर से छह महीने की लंबी छुट्टी पर जाने की अर्जी सौहार्द की थी। जज साहब ने उसके व्यवस्थापक को पत्र लिखकर आवेदन आग्रह अस्वीकृत करवाया। दोनों एक छत के नीचे रहने के लिए बाध्य थे। दोनों के बीच शक की दीवार चौड़ी होती गई थी। फ्लैट दो बेडरूम का था। आड़े वक्त में काम आ गया। संग साथ बैठने की जगह ड्राइंगरूम, कुंआरा ही रह गया। रसोईघर से सौहार्द के चाय या दूध लेकर दफ्तर के लिए निकल जाने के बाद ही सुवर्णा वहां प्रवेश करती। सौहार्द द्वारा संगमरमरी प्लेटफॉर्म पर दूध, पानी के मिश्रण के उबलकर गिरने, माइक्रोवेव का दरवाजा खुला पड़ा छोड़ जाने के कारण चाय बनाते हुए चाय के खौलने के पूर्व सुवर्णा का गुस्सा खौल जाता। इसलिए उससे भी चाय खौलकर चूल्हे पर गिरने की भूल हो जाती। और चूल्हा-चौका साफ करने हेतु उठाए पानी से ही अपना गुस्सा ठंडा करती सुवर्णा को अक्सर दफ्तर पहुंचने में विलंब हो जाता। दफ्तर के सभी सहयोगी, विशेषकर महिला सहयोगिनियां अपना काम छोड़ उसे घूर-घूरकर देखतीं। उस दिन सुवर्णा ने अपनी सहयोगिनियों का वार्तालाप सुन लिया था। एक ने कहा था - ''इसे तो घर में पति के लिए कुछ नहीं करना पड़ता। फिर देर क्यों होती है?'' दूसरी ने कहा - ''देर से सोती होगी। देर से जगती।'' तीसरी का आश्चर्य था - ''क्यों ! पति के साथ ही नहीं रहती तो सोने में देर क्यों?''

दूसरी ने उसकी नासमझी पर आश्चर्य प्रकट किया - ''अरे ! यही तो देर से सोने का बड़ा कारण है। उसे नींद ही नहीं आती होगी।''

सुवर्णा ने अपने बारे में और भी बहुत कुछ सुना था। कुछ कानों से सुनकर तो कुछ लोगों के हावभाव से अनुमान लगाकर। सुवर्णा को एक बात का आश्चर्य होता। दफ्तर, परिवार और समाज में उसके प्रति सहानुभूति रखने वालों की संख्या कम थी। अधिकांश शुभचिंतक सौहार्द के प्रति नरम दिखते। सुवर्णा की मां ने भी कहा था - ''बेटी ! सौहार्द को समझने की कोशिश करो। कहीं न कहीं तुम दोनों से ही गलती हुई है। एक हाथ से ताली नहीं बजती।'' सब उसे ही झुकने की सीख देते। सुवर्णा के ससुर जी ने यहां तक कहा - ''स्त्री तो धरती होती है। सब सहन करती है। सौहार्द की गलतियों को क्षमा कर दो। आखिर तुम दोनों को ही परिवार चलाना है।''

सुवर्णा की मौन अभिव्यक्ति थी – "मेरी बला से। मैं नहीं बनती धरती। मैं ही क्यों परवाह करूं परिवार की। जब सौहार्द को मेरी परवाह नहीं। उसने कब की मेरी चिंता। पति-पत्नी तो एक-दूसरे के पूरक होते हैं। फिर मेरे से ही झुकने और बर्दाश्त करने की अपेक्षा क्यों?"

सुवर्णा की ऐसी ही प्रतिक्रियाएं होतीं। मानो चूल्हे पर उबालने के लिए चढ़ाए दूध के प्रथम उफान में ही किसी ने अम्ल डाल दिया हो। दूध का फटना उसकी नियति थी। जज साहब दाम्पत्य की उस नियति के विरुद्ध निर्णय लेने की सोच रहे थे। पिछली तारीख की सुनवाई के उपरांत तो जज साहब का मन भी डोल गया। सुवर्णा ओर सौहार्द एक-दूसरे के प्रति बड़े कड़वे हो गए थे। कुछ लोग बीच बचाव नहीं करते तो कोर्ट में ही दोनों के बीच हाथापाई की नौबत आ जाती। दृश्य देख-सुनकर जज साहब के ललाट पर उभरी चिंता की लकीरों से कार्ट में उपस्थित सारे लोग प्रभावित हुए। कोर्ट की कार्यवाही आगे के लिए स्थगित कर जज साहब घर लौटे। सायंकाल चाय के समय पत्नी से एक शब्द नहीं बोले। रात्रि भोजन के समय भी नि:शब्द ही थे। शयनकक्ष में बिछावन पर पड़े आंखों में नींद उतारने के पूर्व पत्नी के कानों में कोर्ट में बीते मामलों के कुछ प्रसंग अवश्य डाला करते थे। कई प्रसंग सुनकर पत्नी कान बंद कर लेती। कहती – "ये सारी बातें कोर्ट में ही छोड़ आया करें। काले कोट उतारकर टांगने की जगह मैंने घर के प्रवेश दरवाजे के साथ ही बना रखी है। घर, घर है। कोर्ट, कोर्ट।"

उस रात शयनकक्ष में भी दोनों के बीच कोई वार्तालाप नहीं हुई। प्रात:काल प्रथम बार पत्नी सुबह की सैर के लिए अकेली ही निकल गई। जज साहब को बात समझ में आ गई। उन्होंने चाय मंगवाई। चाय का इंतजार करते हुए दोनों तकियों के बीच पत्नी की डायरी हाथ लग गई। पत्नी द्वारा प्रति रात डायरी लिखना उन्हें पसंद नहीं था। परंतु उन्होंने कभी रोका नहीं। वे पति-पत्नी के बीच बहुत कुछ व्यक्तिगत रहने देने के समर्थक थे। वे सिद्धांत और व्यवहार में साम्यता रखते थे।

जज साहब ने पहली बार पत्नी की डायरी के पन्ने पलटने शुरू किए। पढ़ते गए। आया ने चाय लाकर रख दी थी। चाय कब की ठंडी हो गई। उन्हें प्रत्येक पन्ने पर अपना नाम पढ़कर सुखद लग रहा था। मानो उनकी सहधर्मिणी का एक पल भी उनके बिना नहीं बीतता था। और जैसे बाथ टब में नहाते

दो शयनकक्षों में रहते हुए भी दोनों साथ थे। एक-दूसरे के मन में अपनी औकात आंकते हुए, भाव मापते हुए। सुवर्णा की आंखों से गुजर रहे सौहार्द की डायरी के पन्नों का एक भी पन्ना ऐसा नहीं था, जिस पर उसका नाम न अंकित हो। सुवर्णा पूरे दमखम से पसरी थी उन पन्नों पर। सौहार्द का मेधा से मिलना, मेधा द्वारा अपनी मित्र सुवर्णा की प्रशंसा के पुल बंधते पढ़कर दोनों की छवि के संजोए पुराने चित्र डगमगड हो रहे थे।

हुए एक प्राचीन दार्शनिक आरेकिमोडिस की तरह उन्हें भी उसी स्थान पर ज्ञान मिला। उस दार्शनिक को हाथी तौलने का सूत्र मिला था। जज साहब को अपनी एक गहन समस्या समाधान का सूत्र। उन्होंने कुछ निश्चय किया और 'यूरेका' की तर्ज पर ही नाश्ता की मेज पर प्रसन्न होते हुए पत्नी से बोले – "प्रतिभा ! आज तुम्हारे कारण एक जटिल मामला सुलझाने का सूत्र मिला है। मुझे लगता है कि अब सुवर्णा और सौहार्द के बीच समझौता ही नहीं, स्नेह का भी संचार हो जाएगा।" वे तो अपना 'यूरेका' लिए कोर्ट चले गए। पत्नी को पति के आह्लाद के प्रथम अंश से प्रसन्नता मिली थी। कथन का दूसरा खंड फिर उबाऊ था।

जज साहब ने अपनी कुर्सी पर बैठते ही सुवर्णा और सौहार्द के वकीलों को फोन मिलाने को कहा। दोनों को अचानक जज साहब के फोन सुनकर आश्चर्य हुआ। जज साहब ने दोनों से यही कहा, "यदि सुवर्णा और सौहार्द डायरी लिखते हैं तो पिछले पांच वर्षों की डायरियां मंगवाइए।"

वकील और जज साहब के लिए सुखद सूचना थी कि दोनों डायरी लिखते थे। दोनों की डायरियां आ गईं। जज साहब आधी रात तक उन डायरियों पर अंकित शब्द पढ़ते और अर्थ लगाते रहे। चूल्हे पर चढ़ी चावल की हांडी से चार चावल ही निकालकर देखना यथेष्ट होता है। पूरी हांडी के चावल के पक जाने का अंदाज लग गया। दोनों डायरियों पर एक ही तिथि में दर्ज एक प्रसंग पर, दो विचार, भाव और प्रतिक्रियाएं। जज साहब जिन्हें मिलाते-मिलाते प्रसन्न हो जाते थे। बार-बार यूरेका (मिल गया) के भाव में तैरने लगते। दूसरी रात भी यही स्थिति रही। दो दिनों बाद ही दोनों वकील के माध्यम से सुवर्णा और सौहार्द को बुलाकर डायरियां दे दी गई थीं।

डायरी हाथ में लेते ही सुवर्णा चौंकी – "वकील साहब! ये मेरी डायरी नहीं। आपने गलती से सौहार्द वाली मुझे दे दी। कहीं मेरी उसके पास तो नहीं पहुंच गई। यह तो ठीक नहीं होगा। मुझे मेरी डायरी चाहिए।"

वकील साहब शांतिचित थे। बोले – "आपकी डायरी सौहार्द के पास ही पहुंची है। पर गलती से नहीं। जज साहब की आज्ञा थी। आप यही डायरी ले जाइए। लिखने के लिए नहीं। पढ़ने के लिए।"

"वकील साहब! जज साहब से कहिए अब कुछ नहीं होने वाला। वे जल्द से जल्द मुझे सौहार्द से छुटकारा दिलवाएं। बस। रोज-रोज के इस नाटक से मैं तंग आ गई। स्वतंत्र होना चाहती हूं। वैसे भी हम दोनों के बीच अब कोई बंधन रहा ही नहीं। ऐसे बंधनहीन संबंध को घसीटने से क्या फायदा! हमारे बीच अब मनमेल हो भी नहीं सकता। असंभव!"

बुझे मन से सौहार्द की डायरी लेकर सुवर्णा घर लौटी थी। देर रात तक उस फ्लैट की दोनों शयनकक्षों की बत्तियां नहीं बुझीं। दूसरी सुबह खिड़कियों से छनकर आई सूर्य की तीव्र रोशनी में सौ पावर के बल्ब शरमाकर निस्तेज हो गए थे। दफ्तर जाने में देर हो रही देख दोनों ने चाय बनाने का इरादा भी छोड़ दिया था। फ्लैट से बाहर निकलते हुए अवश्य टकराए थे। वह भी इस भाव में कि रात भर तो साथ ही थे। और ऐसा ही साथ कई रात्रियों का साथ हो गया। दो शयनकक्षों में रहते हुए भी दोनों साथ थे। एक-दूसरे के मन में अपनी औकात आंकते हुए, भाव मापते हुए। सुवर्णा की आंखों से गुजर रहे सौहार्द की डायरी के पन्नों का एक भी पन्ना ऐसा नहीं था, जिस पर उसका नाम न अंकित हो। सुवर्णा पूरे दमखम से पसरी थी उन पन्नों पर। सौहार्द का मेधा से मिलना, मेधा द्वारा अपनी मित्र सुवर्णा की प्रशंसा के पुल

बंधते पढ़कर दोनों की छवि के संजोए पुराने चित्र डगमगड हो रहे थे। उसने तो मेधा को अपनी प्रतिद्वंद्वी मान रखा था। ऐसा था नहीं। डायरी के पन्नों पर दर्ज शब्दों में मेधा और सौहार्द के वार्तालाप का विषय सुवर्णा ही थी। पढ़-पढ़कर उसका सिर चकराने लगा। हृदय की धड़कनों की स्थिति भी बदल रही थी। एक बार तो मन की विचित्र स्थिति हो गई। पिछली सैकड़ों रात्रियों को वह सोने से पूर्व अपने कमरे की बंद कुंडी की जांच पड़ताल तक कर आती थी। पर उस रात तो एक बार कुंडी नीचे खींच, दरवाजा खुला रखने के लिए उसके हाथ बढ़े। उसने सप्रयास हाथ रोक दिया।

कमोबेश मात्रा में यही स्थिति सौहार्द की भी थी। सुवर्णा की डायरी के पन्नों से वह एक दिन के लिए अनुपस्थित नहीं हुआ था। दिनचर्या के प्रत्येक प्रसंग में कभी सुवर्णा के क्रोध, कभी द्वेष तो कभी नफरत का पात्र बनकर। उसके मित्र शिवालिक ने तो हद कर दी थी। उसने सुवर्णा से यहां तक कहा था – ''यदि तुम दोनों (सुवर्णा और सौहार्द) का मेल-मिलाप नहीं होता, मैं आजीवन कुंआरा रहूंगा। कम से कम अपनी मित्र मेधा और मेरी सोचकर समझौता कर लो। सौहार्द तुझे बहुत चाहता है।''

डायरी में दर्ज इस कथन को कई बार पढ़ा सौहार्द ने। उसी वक्त अपने मित्र को गले लगाने का मन कर आया। रात बाकी थी। एक छत के नीचे थे सुवर्णा और सौहार्द। सुवर्णा के कमरे का दरवाजा खटखटाने के लिए हाथों में सुगबुगाहट हुई। हिम्मत बटोरने में ही सुबह हो गई। मानो बड़े दमखम से सूर्य भी सहयोग के लिए आया हो। ऐसे मामलों के समझौते रोशनी में नहीं, अंधकार में हो जाते हैं। संबंधों में सब कुछ साफ-साफ नहीं दिखता।

चाय सौहार्द ने ही बनाई। एक नहीं, दो प्याला चाय बनी थी। उसने एक प्याला चाय वहीं स्टैंड पर प्लेट से ढक छोड़ दिया। बहुद दिनों बाद सुवर्णा को सुबह-सुबह बनी बनाई चाय मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसने ठंडी हुई चाय अपने गले की गर्माहट में सेंककर अंदर कर ली। सौहार्द दफ्तर के लिए निकला। मुख्य दरवाजा बंद करते हुए सुवर्णा से टकराने की अपेक्षा लिए। पर सुवर्णा को भी चाय पीनी थी। बनी बनाई चाय में थोड़ा-सा अधिक शक्कर मिलाकर पीते हुए सुवर्णा कहीं खो गई। सौहार्द ने उस सुबह भी चाय चूल्हे पर गिराई थी। चबूतरा तक गंदा किया था। वॉशबेसिन में पिछली रात होटल से लाए मुर्गे और पुलाव का अवशेष पड़ा था।



सुवर्णा और सौहार्द के बीच दूरी का कारण एक का शाकाहारी तो दूसरे का मांसाहारी होना भी था। और इसलिए दोनों अलग-अलग प्लेट ही नहीं भिन्न-भिन्न समय में ही खाना खाया करते। संबंधों का दही जमे तो कैसे? मनमुटाव बढ़ने के बाद सौहार्द ने मांसाहारी भोजन घर लाना छोड़ दिया था। होटल से ही खाकर आता। पिछली रात चिकन और पुलाव क्यों घर लाया, उसे भी नहीं पता। वॉशबेसिन से दुर्गंध आ रही थी। सुवर्णा ने चुपचाप धो डाला। क्यों और कैसे? उसे भी जानने-समझने का समय नहीं था।

अपने-अपने दफ्तर से चलकर कोर्ट पहुंचने के समय का पूर्व आकलन किए बगैर यह संयोग भर था कि दोनों ने एक साथ कोर्ट के कमरे में प्रवेश किया था।

न्याय की कुर्सी पर जज साहब के विराजमान होते ही दोनों ने मुस्कराकर उनका आभार प्रकट किया। कोर्ट में उपस्थित लोगों को जज साहब से कुछ नया सुनने की उम्मीद थी। कइयों ने मन ही मन जज साहब की ओर से सुनाए जाने वाले फैसले की भाषा भी निश्चित कर ली थी। एक ने अपने पड़ोस में बैठे हुए व्यक्ति से कहा – ''जज साहब इन दोनों से कहेंगे –तमाम साक्ष्य, गवाह और हमारे अथक प्रयास के बावजूद इस निष्कर्ष पर हम आए हैं कि आप दोनों...।'' तभी जज साहब ने पूछा – ''आप दोनों कुछ कहना चाहेंगे।'' सुवर्णा मुखरित हुई – ''जज साहब! आपको हमने बहुत परेशान किया। मैंने सौहार्द की डायरियां पढ़ ली हैं। अब मैं अपने दाम्पत्य जीवन में कोई दरार नहीं चाहती। यदि सौहार्द को कोई ऐतराज नहीं, साथ रहेंगे हम।''

स्वीकृति में सौहार्द का सिर सायास हिला था। जिसे सुवर्णा ने भी देखा-परखा। जज साहब के मुख पर प्रसन्नता गहरा गई थी। मानो अपने पच्चीस वर्षीय पेशे के पहले निर्णय से सुख मिला हो।

उन्होंने उन्हें घर जाने की अनुमति देते हुए कहा – ''आप दोनों डायरी लिखते रहिए और कभी-कभी एक-दूसरे की डायरी पढ़ते भी। चुपचोरी से ही सही।'' वर्षों बाद दोनों एक साथ हंस पड़े थे। दाम्पत्तीय उद्‌गार में कोर्ट का वह छोटा कमरा भीग गया था। ❑

महादेवी जी के काव्य की अनुभूति

हमारे देश में कबीर ने 'तानपूरा', सूरदास ने 'वीणा' और मीरा ने 'करताल' की ध्वनियों के साथ अपने गीतों को गा-गाकर जनता को मुग्ध किया / इस परंपरा को आधुनिक काल में छायावादी कवियों ने भी बनाए रखा / छायावाद के प्रमुख स्तंभ- प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा के गीतों ने भी अपनी प्रवाहमयी क्षमता से साहित्य की इस परंपरा को समृद्ध किया / महादेवी जी के गीतिकाव्य पर **ज्योति चौधरी**

भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य की परंपरा युग-युगांतर से चली आई है। गीतों की शुरुआत भाषा के उद्‌भव के साथ ही हो गई थी। कविता का मूल रूप ही गीत है। गीतों का प्रयोजन है आत्म-निवेदन या मनोरंजन। हृदय के कोमल भावों को अभिव्यक्त करने के लिए गीतों से अच्छा कोई अन्य साधन नहीं हो सकता। ये कहीं अलौकिक विरह-मिलन की कविता में तो कभी मनोरंजन उत्सव पर्वों में और कहीं दोनों एक साथ मिलकर दिखते हैं। गीतिकाव्य में कविता के अन्य गुणों के साथ ही संगीत को भी प्रधानता दी गई है। यह शब्द अंग्रेजी भाषा के 'लिरिक' शब्द का पर्याय है जो एक 'लायर' नामक वाद्ययंत्र पर बजाया जाता है। हमारे देश में कबीर ने 'तानपूरा', सूरदास ने 'वीणा' और मीरा ने 'करताल' की ध्वनियों के साथ अपने गीतों को गा-गाकर जनता को मुग्ध किया। इस परंपरा को आधुनिक काल में छायावादी कवियों ने भी बनाए रखा। छायावाद के प्रमुख गीतकार जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा के गीतों ने भी अपनी प्रवाहमयी क्षमता से साहित्य की इस परंपरा को समृद्ध किया। यहां महादेवी जी के गीतिकाव्य को समझने का प्रयास किया गया है।

महादेवी वर्मा जी विशुद्ध छायावादी कवयित्री थीं। गीतिकाव्य में उनका विशिष्ट स्थान है। उनका एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। महादेवी जी ने गीतिकाव्य की गंभीर, मनोदशा, सुसंस्कृत व्यक्तित्व और समृद्ध शब्द-संकेतों तथा अर्थ-ध्वनियों से व्यक्त किया है। उनके गीतिकाव्य में प्रमुख तत्व भावानुभूति, कल्पनाशक्ति, तन्मयता, गेयता और संक्षिप्तता, शिल्प इत्यादि का प्रयोग हुआ है। इनमें आधुनिक रहस्यवाद तथा छायावाद की सभी प्रवृत्तियां मौजूद हैं। उन्होंने आरंभ से अंत तक आत्मपरक कविताएं ही लिखी हैं, जो उनके झंकृत मन को प्रकट करती हैं। कविता उनके कंठ से अनुभूति पाकर निकली है। कवयित्री ने अपने हृदय के सूक्ष्म एवं गहन भावों को कविताओं में सफलतापूर्वक व्यक्त किए हैं। इनकी कविता संगीत कला, चित्रकला तथा कांव्यकला का समन्वय है। उन्होंने अपने विचारों और रचनाओं को एक अलग परिप्रेक्ष्य में रखने की कोशिश की है।

कविता किसी भी भाषा में हो, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय के भावों से निकलती है। विभिन्न परिस्थितियों में होने



ब्रिटेन की प्रधानमंत्री मार्गेट थैचर से ज्ञानपीठ पुरस्कार ग्रहण करते हुए महीयसी महादेवी वर्मा

पर भी मनुष्य-हृदय में एक जैसे ही भाव होते हैं चाहे वह सुख के हों या दुख के। यही कारण है कि हम देश, समय, समाज में भिन्नता होते हुए भी हृदयगत भावों को समझने में समर्थ होते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो विश्व का संगीत ही बेसुरा हो जाता। गीत रचना के लिए भाव होना ही पर्याप्त नहीं है उसके लिए कल्पनाशक्ति की भी आवश्यकता होती है और चिंतन की भी। अगर हम किसी गीत की कल्पना नहीं कर सकते तो उसका आनंद भी प्राप्त नहीं कर सकते। उन्होंने साहित्यिक गीतों को लोकगीतों से भिन्न अवश्य माना है, परंतु दोनों के मूल में एक ही प्रवृत्ति को स्वीकार किया है और सुख-दुख को उजागर किया है। साहित्यिक गीतों में चिंतन, कल्पना के भाव होते हैं जबकि लोकगीतों में मानवीय अनुभूति अपने असल रूप में व्यक्त होती है।

उनकी कविताओं में शब्दों, प्रतीकों, संकेतों, अलंकारों और छंदों का प्रयोग संयोग से हुआ है। उनके शब्द प्रतीक इस प्रकार हैं- सागर संसार के लिए, तरी जीवन के लिए, तम अज्ञान के लिए, प्रकाश ज्ञान के लिए, आत्मा दीपक के लिए इत्यादि। महादेवी जी के ऋतु संबंधी प्रतीकों में ग्रीष्म का प्रयोग रोष के लिए, वर्षा का करुणा के लिए, पतझड़ का दुख के लिए और वसंत

का आनंद के लिए तथा बुद्धि के लिए उन्होंने जुगनू का प्रयोग किया है। इसी तरह उन्होंने अपने काव्य में तारों के लौकिक भावों को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है –

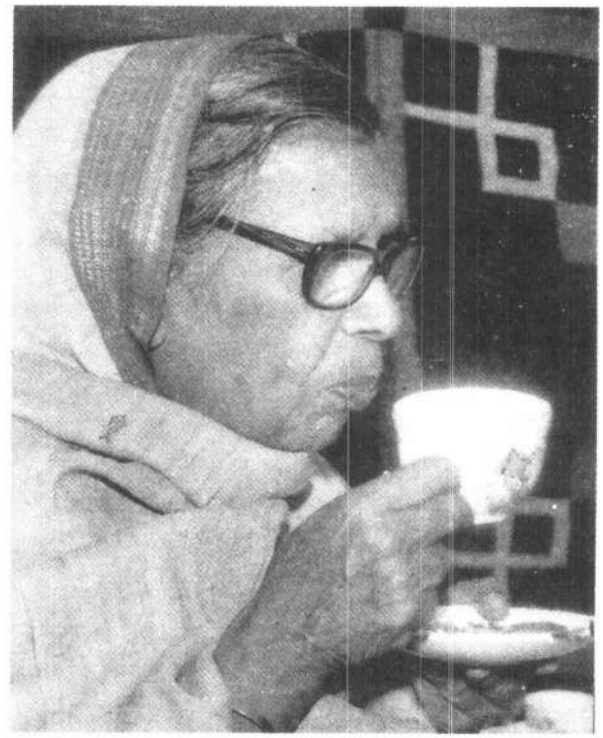
इन हीरक-से तारों को
कर चूर बनाया प्याला,
पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसव डाला !

उनके गीतों में रूपक, अनुप्रास इत्यादि शब्दालंकारों का प्रयोग भी अनायास हुआ है। अनुप्रास अलंकार जहां अपने आप आ गया है, उसे आने दिया गया है। *नीरजा* में एक स्थान पर यमक अलंकार आ गया है– *जगती जगती की मूक प्यास!* शब्द श्लेष शायद ही कहीं मिले। अर्थालंकारों में रूपक, उल्लेख, उपमेय, उपमा इत्यादि अलंकारों का प्रयोग उनकी कविताओं में कहीं-कहीं देखा जा सकता है। उपमा ऐसा अलंकार है जिससे कोई गीतकार अछूता नहीं रह सकता है। महादेवी जी ने वसंत और पावस ऋतुओं के वर्णन में इन उपमानों का प्रयोग किया है।

महादेवी जी की कविता में वेदना और करुणा, आनंद और उल्लास सभी कुछ है, जो उनके काव्य की मूल भावना है। उन्हें प्रकृति सौंदर्य, प्रेम की कवयित्री, छायावादी अथवा मानववादी, पलायनवादी, व्यक्तिवादी कहना ही पर्याप्त नहीं है। उन्होंने अपने काव्य में प्रत्यक्ष सौंदर्य और व्याप्त चेतना में निहित सामंजस्य की स्थिति बनाए रखी। उनके काव्य में जो कुछ भी ज्ञात और उपलब्ध है उसके आधार पर वह दार्शनिक कवयित्री कही जा सकती हैं। इसमें संदेह नहीं कि उनका काव्य केवल दार्शनिक ही नहीं बल्कि उनका गंभीर चिंतन भी है। महादेवी जी अपने आरंभिक काल में रहस्यवाद से और विशेषतया उपनिषदों से प्रभावित रही हैं। बाद में उन्होंने सामाजिक दृष्टिकोण को अपना लिया।

महादेवी जी ने छायावादी काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष दोनों को विकसित किया है। उनके काव्य की मूल विशेषताओं का अनुशीलन करने के लिए उनके व्यक्तित्व के दोनों पक्षों का मंथन करना आवश्यक है। *नीहार* महादेवी जी का प्रारंभिक कविताओं का संकलन है। इससें व्यक्तिगत दुख और अध्यात्मवाद की अभिव्यक्ति हुई है। *रश्मि* में कवयित्री का जीवन-मृत्यु, सुख और दुख पर मौलिक चिंतन हुआ है। *नीरजा* में प्रकृति में मानवीय भावनाओं और विरह वेदना प्रस्तुत की है। *सांध्य-गीत* में कवयित्री ने दुख और सुख, विरह और मिलन में समन्वय दिखाने का प्रयास किया।

भक्ति-काल में जो स्थान मीरा को प्राप्त था वही स्थान छायावाद में महादेवी जी को उपलब्ध है। इस सजल गीतों की गायिका को आधुनिक युग की मीरा भी कहा जाता है। जहां तक दुख-दर्द और पीड़ा-कसक, वेदना का संबंध है वहां मीरा और महादेवी में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। दोनों ही सम्पन्न परिवार से थीं और वहां सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं उपलब्ध थीं। यदि अंतर है तो केवल परिस्थितियों और शिक्षा-दीक्षा का। यद्यपि दोनों ने बड़े-बड़े भवनों में शिक्षा प्राप्त की तथापि मीरा एक राजकुमारी थीं और रहस्यवादी संतों की परम्परा के संस्कार लेकर उन्होंने सहज ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने अपने को श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया था तथा उनका प्रियतम सगुण साकार था। उनके गीतों में उनके अपने दर्द की पुकार दिखती है– 'मेरा दर्द न जाने कोय।' तो महादेवी सम्पन्न परिवार से थीं। जो बीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में पैदा हुईं, जहां वह भिक्षुणी बन पाईं। महादेवी ने वैराग्य-भावना के



प्रति अपने को समर्पित किया और आंसू बहाए, उनका प्रियतम निर्गुण निराकार है। उन्होंने अपने संबंध में कहा है कि– 'अश्रुमय कोमल कहां तू आ गई परदेशिनी री।' महादेवी के गीतिकाव्य में प्रतीक नहीं मिलते, यह युग प्रतीकों का नहीं है। इसलिए महादेवी में नवीनता भी है और उनकी वेदना मीरा से कम तीक्ष्ण है। मीरा की-सी सीधी अभिव्यक्ति महादेवी में नहीं है। महादेवी के विचार और कल्पना मीरा में नहीं मिलेंगी। इस प्रकार कुछ अंतर और कुछ समानताएं दोनों में हैं। अत: कहा जा सकता है कि दार्शनिक दृष्टि दोनों की एक जैसी ही है।

प्रकृति का सौंदर्य प्रेम, जीवन का दुख और इनके प्रति आत्मीयता का भाव, उनके काव्य-कला में देखी जा सकती है। वह जिज्ञासामयी, दार्शनिक और साधिका तो हैं ही, परन्तु उनके काव्य में जीवन की चाह और सौंदर्य की लालसा भी दिखाई देती है। उनकी संवेदना न केवल आध्यात्मिक बल्कि लौकिक भी है। उनके पास मानव की आत्मोपलब्धि, नारी का पूर्णत्व और सत्य का साक्षात्कार और उसमें सूक्ष्म भावों की चित्र-योजना है। निराशा, पलायन आदि उनकी रचना के औपचारिक गुण हैं।

उन्होंने जीवन के सौंदर्य और सत्य को एक साथ अपनाने का प्रयत्न किया है। वह रहस्यवाद, गीतिकाव्य, छायावादी, सौंदर्य और तद्युगीन साहित्य को प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं। उन्होंने अपने साहित्य में जो कुछ भी लिखा है शायद उसे जिया भी है तभी वह उस युग की समस्या का मार्मिक वर्णन कर सकी हैं। इनके आधार पर हम कह सकते हैं कि वे छायावादी हिंदी साहित्य जगत की महीयसी हैं।

महादेवी जी ने यद्यपि गद्य और काव्य दोनों को ही अपने साहित्य कला में स्थान दिया है। परंतु वह काव्य को ही सर्वोच्च कला स्वीकार करती हैं। वे सत्य को काव्य का साध्य तथा सौंदर्य को उसका साधक मानती हैं। वह काव्य को सत्य की अभिव्यक्ति समझती हैं। यह सत्य बुद्धि और भावनाओं

पर आधारित है। उनके काव्य में उत्कृष्ट प्रतिभा और उपयुक्त मानसिकता का स्वरूप मिलता है। अपने काव्य में वह प्रकृति अथवा संसार का पूर्ण उपयोग करती हैं। वह आस्थावान रचनाकार भी हैं। उनकी आस्था का स्वरूप भावनामय और आदर्शवादी है। काव्य के अंतर्गत वह अपने इसी विश्वास के कारण सत्ता के प्रति अपने विरोध को व्यक्त करती हैं, साथ ही उनकी सामाजिक चेतना भी प्रकट होती है।

आदर्श और यथार्थ विषयक चिंतन को व्यक्त करते हुए, वह इन्हें शरीर और प्राण की तरह ही मानती हैं और कहती हैं कि "वह यथार्थ जिसके पास आदर्श का स्पंदन नहीं, केवल शव-मात्र है और वह आदर्श जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं, प्रेत-मात्र है। अतएव आदर्श और यथार्थ एक-दूसरे के पूरक रहकर ही जीवन में एक नई विषमता उत्पन्न करते हैं, सामंजस्य नहीं।" वह कविता और कला को छायावाद से पूर्ण और आदर्शवादी निष्ठा से उत्पन्न बताती हैं। उन्होंने काव्य को जीवन का अनुभव ही नहीं माना, बल्कि स्वानुभूति की गरिमा और सौंदर्य का वैभव भी माना है। महादेवी जी के काव्य-चिंतन में यही बिंब-प्रतिबिंब भाव मौजूद हैं।

महादेवी जी की कविताओं में पीड़ा के तत्त्व की प्रधानता को देखकर इन्हें करुणा, विरह एवं वेदना की कवयित्री कहा गया है। महादेवी जी की वेदना उनकी अनुभूति से निकली और विकसित हुई है। वे सुख को क्षणजीवी मानती हैं और वेदना को चिरस्थायी। उनके काव्य में वेदना का आनंद, वेदना का सौंदर्य, वेदना के लिए आत्मसमर्पण है। उनकी वेदना काल्पनिक नहीं है, उनकी वेदना अनुभूति में कल्पना का मिठास है। दुख और पीड़ा को ग्रहण करने के कारण उनके जीवन के सुख-स्वप्न नष्ट हो गए, दुख और निराशा ने वहां घर कर लिया। जिसे उन्होंने आजीवन अपना लिया-

मैं नीर भरी दुख की बदली!
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

महादेवी जी ने सुख और दुख के रूप को पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं किया है। उन्होंने दुख के आध्यात्मिक और सुख के भौतिक रूप पर विचार किया है। जबकि सुख-दुख के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही स्वरूप होते हैं। वे सुख-दुख की अवस्था को अभिव्यक्ति और स्वर साधना का चित्रण समझती हैं। गेयता उनकी शिल्पगत विशेषता है। महादेवी जी वेदना और दुख की स्थिति को उच्च स्थान देते हुए कहती हैं, "दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांधकर रखने की क्षमता रखता है।"

जब कभी उनका हृदय किसी अभाव का अनुभव करता है तो वह उसी की खोज करने लगती हैं। वह सदैव शून्यता का अनुभव करती हैं, इस सूनेपन में प्राणों का ही दीपक जलाकर दीवाली मनाने का आयोजन उन्होंने इसलिए किया कि कभी प्रियतम से उनका मूक-मिलन हुआ था। परंतु आज सब सपना हो गया। यथा -

अपने इस सूनेपन की मैं हूं रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली।

महादेवी जी अपनी कविताओं में पीड़ा में प्रियतम और प्रियतम में पीड़ा को खोजती हैं। प्रियतम को अपने अंतर में बसा हुआ देखकर तुष्ट होती हैं। प्रियतम के विरह से भी जीवन की सार्थकता का अनुभव हो सकता है। यह उनके काव्य में देखा जा सकता है। जीवन को विरह का जलजात बताते हुए उन्होंने विरह के उपादानों का मनोरम वर्णन किया है-

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात !
आंसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल-कण से बने घन-सा क्षणिक मृदु गात !
जीवन विरह का जलजात !

उन्होंने अपने काव्य की विवेचना में छायावाद और रहस्यवाद को एक-दूसरे का पूरक माना है। एक सौंदर्य का दर्शन है तो दूसरा सत्य का अन्वेषण है। वह रहस्यवाद को जीवन का पूर्णत्व मानती हैं। उनके अध्ययन ने उन्हें सर्ववादी विचारधारा प्रदान की। वे रहस्यवाद को न केवल व्यक्त करती हैं बल्कि वह उनकी जीवनानुभूति भी है। रहस्यवाद का प्रसार चिंतन क्षेत्र में होता है। कोई घटना या प्रसंग का प्रभाव रहस्य के रूप में व्यक्ति के जीवन में स्थिरता पा सकता है। कवयित्री ने इसका बड़ा सजीव वर्णन किया है।

महादेवी जी में रहस्यवादी अभिव्यक्ति का प्रभाव सबसे अधिक मिलता है उसका मुख्य कारण उनका नारी हृदय का सहज संकोच तथा सामाजिक जीवन में नारी की सीमाएं ही हैं। नारीवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए उन्होंने रहस्यवादी, छायावादी और आदर्शवादी धारणा से यथार्थवादी विचारों को स्पष्ट किया है। उनकी पीड़ा व्यक्तिगत न होकर सामंती जंजीरों में जकड़ी सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त नारी जीवन की पीड़ा है। छायावादी काव्य में भारतीय नारी जीवन की सिसकती पीड़ा को जोड़ देना महादेवी जी के काव्य का मौलिक योगदान है। भारतीय समाज में परतंत्र नारी के करुणा का भी यह प्रतीक है। कवयित्री ने नारी की भावनाओं की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है -

कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने
याद में उन अंगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने !

महादेवी को बौद्ध दर्शन के अलावा बुद्ध के विचारों ने भी प्रभावित किया है। महादेवी की रचनाओं में बौद्ध-दर्शन के दुखवाद का भी प्रभाव विभिन्न रूपों में व्यक्त हुआ है। इनके गीतों में दुख कभी साधन बनकर आता है और कभी दुख इनका आराध्य बन जाता है। कुछ गीतों में इनका दुख इतना सामान्य हो जाता है कि वे सुख-दुख के समन्वय में विश्वास करने लगती हैं-

सब आंखों के आंसू उजले, सबके सपनों में सत्य पला।
जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरन्द भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल
देता झर यह सौरभ बिखरा !
दोनों संगी पथ एक, किंतु कब दीप खिला, कब फूल जला ?

उपर्युक्त पंक्तियों में कवयित्री सुख-दुख को एक ही सत्य के दो पहलू स्वीकारती है।

महादेवी जी ने अपने काव्य में प्रकृति को उचित स्थान दिया है।

महीयसी बनने तक प्रकृति सदैव उनके साथ रही है। उन्होंने छायावाद और प्रकृति के संबंध को इस प्रकार स्पष्ट किया है, "छायावाद का कवि न प्रकृति के किसी रूप को लघु या निरपेक्ष मानता है न अपने जीवन को, क्योंकि वे दोनों ही विराट रूप समष्टि में स्थिति रखते हैं और एक व्यापक जीवन में स्पंदन पाते हैं।" उनके काव्य में प्रकृति का वर्णन कई रूपों में है। जिनमें महादेवी के प्रकृति चित्रण संबंधी भाव दिखाई देते हैं–

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
नभगंगा की रजतधार में, धो आई क्या इन्हें रात ?

वे प्रकृति में विराट छाया देखती हैं और साथ ही अपनी छाया भी उसमें अनुभव करती हैं। वे प्रकृति को अपनी संगिनी, जीवन का अंग समझती हैं और प्रकृति उनके जीवन में विरह, मिलन, शृंगार, प्रियतम, आत्मा की छाया इत्यादि रूपों में आती है। उनके रहस्यवाद की कोमलता यही प्रकृति है। प्रकृति के अधिकांश चित्रों में उनके भाव दिखाई देते हैं, परंतु कहीं-कहीं स्वतंत्र दृश्यों का वर्णन भी किया है। हिमालय के चित्रण में किस प्रकार रूप और रंग का वर्णन मिलता है–

तू भू के प्राणों का शतदल !
सित क्षीर-फेन हीरक-रज से
जो हुए चांदनी में निर्मित,
पारद की रेखाओं में चिर
चांदी के रंगों से चित्रित,
खुले रहे दलों पर दल झलमल...

प्रकृति महादेवी के लिए शृंगार की वस्तु है। प्रकृति ने उनके भाव पक्ष को ही नहीं कलापक्ष का भी शृंगार किया है। अपने काव्य में उन्होंने प्रकृति और छायावाद के संबंधों को स्पष्ट किया है। उनका छायावादी काव्य संवेदनाओं पर आधारित है। मुख्यत: वेदना के दो पक्ष हैं– दुख और आंसू। दुख वेदना का अनुभव पक्ष है और आंसू उसके परिणाम हैं। समस्त दुख राग या तृष्णा से पैदा होता है।

'नयी कविता' के बारे में महादेवी जी का विचार है कि 'नयी कविता' मन को नहीं छू पाती, जिसे काव्य का दोष माना जाता है। इसी कारण नई कविताओं में कुछ भी नया नहीं लगता और कवि अपनी भावनाओं को पाठक से नहीं जोड़ पाता है। उन्होंने बौद्धिक सिद्धांतों के विरोध की भावना को व्यक्त करते हुए प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की अकाव्यात्मक स्थिति स्पष्ट की है।

सौंदर्य की कला और उपयोग की कला की विवेचना करते हुए उपयोगितावाद को सारहीन काव्य माना है। उनका मानना है कि "जब तक हमारे सूक्ष्म अंतर्जगत का बाह्य जीवन में पग-पग पर उपयोग होता रहेगा, तब तक कला का उपयोग संबंधी विवाद विशेष महत्व नहीं रखता। कला न स्थूल में निवासित हो सकती है, न सूक्ष्म में; क्योंकि उसकी भी जीवन की भांति समन्वयात्मक स्थिति है।"

महादेवी के काव्य में स्वप्न संयोग की अनेक मिश्रित स्थितियों का समावेश है किसी विशेष भेद की पूर्णता नहीं है। उनके स्वप्न सजग हैं, कल्पना की उड़ानें भी भरते हैं। उनके भाव चेतना के प्रभाव से नहीं दबते, बल्कि वे स्वप्नों में आते हैं और चेतन द्वारा प्रभावित रहते हुए अवचेतन हो जाते हैं। अर्थात ये भाव स्वतंत्र न रहकर परतंत्र हो जाते हैं और स्वप्न का रूप धारण कर लेते हैं। उनकी थाह पाने के लिए अन्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। इस परिवर्तन के पीछे व्यक्ति काअंतर्मन ही क्रियाशील रहता है। इसका एक उदाहरण महादेवी की इन पंक्तियों में झलकता है–

मैं पलकों में पाल रही हूं
यह सपना सुकुमार किसी का !

यह उनके स्वप्नों के संसार में ही दिखता है जाग्रत अवस्था में नहीं। यदि हम उनके व्यक्तित्व पर नजर डालें तो हमें विखंडता का आभाष होता है।

स्वप्न क्षणिक होने के कारण मन उचट जाता है और वह ऐसे प्रियतम का उल्लेख करती हैं जो उनके स्वप्न संसार में क्षण भर के लिए आता है और जब वह उसे रिझाकर स्थायी बनाने का प्रयास करती हैं तो वह दूर चला जाता है। अपने प्रियतम के मिलन के इन क्षणों को स्थायी बनाने के प्रयास विफल हो जाते हैं तथा शेष रह जाता है पश्चाताप। इस स्थिति का वर्णन कवयित्री इस प्रकार करती हैं–

तुम्हें बांध पाती सपने में !
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती
इस छोटे क्षण अपने में ।

यदि हम महादेवी के स्वप्नों पर विचार करें तो हम पाएंगे कि उनके स्वप्न मूल न होकर केवल स्मरण मात्र हैं। उनकी मौलिकता एवं स्वप्नों में समानता दिखती है। यह उनके गीतिकाव्य में भी देखा जा सकता है। उनके काव्य में स्वप्न ही अधिक दिखते हैं– स्वप्न सुख नहीं।

महादेवी जी के 'सांध्य गीत' में जीवन का बिम्ब-प्रतिबिम्ब का सफल उदाहरण उनकी इन पंक्तियों में देखिए–

अश्रु मेरे मांगने जब नींद में वह पास आया!
स्वप्न-सा हंस पास आया !!
हो गया दिव्य की हंसी से
शून्य में सुर चाप अंकित, ...

महादेवी जी का काव्य-चिंतन न केवल उनके सुसंस्कृत व्यक्तित्व और उनके विचारों को स्पष्ट करता है, बल्कि उनके काव्य को समझने में हमारी मदद भी करता है। उन्होंने अपने काव्य में स्थूल और सूक्ष्म, मूर्त और अमूर्त, हृदय और मस्तिष्क, सत्य और सौंदर्य को प्रस्तुत किया है, जो रहस्यवाद के तत्व पर आधारित है, जिसकी काव्य-कला छायावाद की उत्कृष्ट उपलब्धियों से संपन्न है। उन्होंने रहस्यवाद और छायावाद के विकास का निरूपण किया है। उनका दृष्टिकोण व्यापक सत्य का अनुभव कराता है। उनका काव्य आत्माभिव्यंजक गीतिकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। जिसका मूल तत्व रहस्य है और काव्य कला छायावाद। उनके विचार सिद्धांत रूप में स्वीकार किए जाते हैं।

महादेवी जी ने अपने काव्य में स्वयंभोगी तथ्यों की रचना अधिक की है जिनसे उनकी मूल संवेदना जुड़ी रही हैं और इसी कारण उनका मार्मिक चित्रण उभरकर आया है जो सीधे पाठक के हृदय और मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ता है। महादेवी जी के काव्य, चिंतन, में कोई बाह्य या आंतरिक विरोध नहीं है। उनका कला-पक्ष भी उतना ही सम्पन्न है जितना कि उनका भाव-पक्ष। अत: हम कह सकते हैं कि महादेवी जी सचेत और छायावादी युग की प्रमुख, प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि कवयित्री हैं। ❑

महादेवी वर्मा का रचना संसार

***रेखाचित्रों में महादेवी की अनुभूति मात्र प्रणयिनी की अनुभूति नहीं है, उसमें मां की ममता है, बहन का प्रेम है और है नारी की कोमल काया के भीतर हृदय की अनुभूति की कोमल अभिव्यक्ति / जन-जीवन में व्याप्त दुख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न, अभाव आदि के प्रति विराट सहानुभूतिपूर्ण करुणा और ममता के साथ-साथ कहीं-कहीं विद्रोह भी है, जो करुणा और ममता से ही अभिभूत है / महादेवी के रचना संसार पर* रघुनाथ उपाध्याय 'शलभ'

आधुनिक हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग की कविताओं का स्वरूप मुख्यत: नैतिकतावादी एवं सुधारवादी ही बना रहा। इतिवृत्तात्मक शैली में समकालीन कवियों ने सर्जनात्मक स्तर पर विशेष रूप से सुधारवादी दृष्टिकोण ही अपनाया, जिनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति विद्यमान रही। यह प्रवृत्ति कुछ दिनों तक बड़ी तीव्र गति से चली, किंतु आगे चलकर इस इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई, जिसके फलस्वरूप साहित्य में सर्जनात्मक बदलाव आया। काव्य के क्षेत्र में स्वानुभूति और सूक्ष्म भावानुगामिनी काव्यधारा का विकास हुआ। विश्वबंधुत्व, सर्वचेतनावाद और सर्वात्मवाद जैसे दार्शनिक तथ्य कविता में उभरकर सामने आए और मानवीय एवं सांस्कृतिक धरातल पर नई काव्यधारा के रूप में एक नए काव्य युग का सूत्रपात हुआ, जिसे 'छायावाद' के नाम से साहित्य में प्रतिष्ठा मिली।

आरंभ में अपनी अस्पष्टता को लेकर छायावाद आलोचकों की दृष्टि में काफी विवादित बना रहा, किंतु धीरे-धीरे स्थिति स्पष्ट होती गई और साहित्य के धरातल पर छायावाद समग्र नवीनता के साथ स्थापित हुआ। वस्तुत: छायावाद परम्परा और प्रयोग का अंतर्विरोध ही था, जो कथ्य और शिल्प के स्तर पर पूर्णत: नवीन था। सर्जनात्मक स्तर पर कवियों के दृष्टिकोण मानव की आशा-आकांक्षा, संवेदना-संघर्ष, देशभक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना से सम्बद्ध होकर पहली बार विशुद्ध मानवीय एवं सांस्कृतिक धरातल पर खुलकर सामने आए। इस काव्य आंदोलन के जन्म से लेकर विकास तक गति प्रदान करने वालों में प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा की मुख्य भूमिका रही। 'छायावाद' के ये ही चार मुख्य स्तंभ रहे। इन चार स्तंभों में महादेवी वर्मा विशुद्ध रूप से छायावादी बनी रहीं।

छायावादी काव्य-प्रांगण में महादेवी का आगमन सबसे बाद में हुआ, किंतु अंत तक छायावाद का दामन थामकर चलने वालों में महादेवी वर्मा अकेली रहीं। एक बार छायावादी चादर को जो महादेवी ने ओढ़ लिया, जीवन भर उसे ओढ़े रहीं, कभी उतारा नहीं और कभी उसमें दाग नहीं लगने दिया। काव्य की अनंत साधना में लीन महादेवी वर्मा प्रियतम पथ को आलोकित करते हुए अपने साहित्य संसार में जीवनपर्यंत पीड़ा को तलाशती रहीं। पीड़ा की इस निरंतर खोज में महादेवी कहीं थकती नजर नहीं आईं और उनके कदम कहीं रुके नहीं। उनकी काव्य-यात्रा का विकास उत्तरोत्तर होता रहा, जिसमें *निहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत* और *दीपशिखा* की रचना-प्रक्रिया क्रमागत रूप से कालबद्ध साधना की अनवरतता ही है, जिससे महादेवी जी अपने को कभी अलग नहीं कर सकीं। इस संलग्नता में वे सदा समान बनी रहीं। इसलिए वे जीवन के एक ऋजु मार्ग पर आघंत कदम बढ़ाती रहीं। इस आधार पर यह कहना गलत नहीं है कि छायावाद ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन।

दो किनारों में आबद्ध महादेवी वर्मा की साहित्य सरिता अविरल गति से प्रवाहित है अपनी एक गति और एक लय में। उसमें कहीं उफान नहीं, कहीं तूफान और हाहाकार नहीं। उसकी अतल गहराई में सिर्फ करुणा और वेदना ही विद्यमान है। शांतभाव में लीन जीवन की सच्चाई को तलाशने की अनवरत साधना में वे चिर निमग्न बनी रहीं। इस साधना में वे काव्य-कृतियों के साथ-साथ गद्य कृतियों की रचना भी करती रहीं, जिसमें चिरंतन सत्य को पाने की अभिलाषा एवं संवेदना का सत्य सन्निहित है।

महादेवी वर्मा की कविताओं में प्रकृति की विराट चेतना से उद्भूत असीम की जिज्ञासा के साथ-साथ आत्मा के सम्पूर्ण समर्पण का अनुसंधान भी विद्यमान है। काव्य संबंधी उनकी मान्यता चिरंतन है जिसका निर्वाह वे जीवनपर्यंत करती हैं। काव्य संबंधी उनकी धारणाएं युगीन प्रभावों से टकराकर अपना मार्ग नहीं बदलतीं। उनके काव्य विकास में 'पंत' अथवा अन्य छायावादी कवियों की भांति क्रमिक परिवर्तन नहीं हुआ। उनका कवि-व्यक्तित्व अपना निजत्व हर काल और हर परिस्थिति में बनाए रखा। उनकी काव्य कृतियों की शृंखला की शुरुआत *नीहार* से होती है, जो 1930 में पहली कड़ी के रूप में अपना अस्तित्व ग्रहण करती है।

नीहार उनका प्रथम प्रकाशित काव्य संकलन है, जिसमें आशा-आकांक्षा, सुख-दुख के धूप-छांव में जीवन की यथार्थता को समझने का प्रयास किया गया है। *नीहार* में जीवन की नश्वरता, सांसारिक अस्थिरता, वेदना और करुणा को अपनाकर गीतों को महादेवी ने जन्म दिया है। जिसमें भावुकता का पर्याप्त विकास नजर आता है। कविताओं का कलात्मक सौंदर्य गीत की दृष्टि से अत्यंत रमणीक बन पड़ा है। गीतों से एक ऐसा सहज संगीत फूट पड़ा है, जिसमें हृदय-वीणा की अपूर्व झंकार सुनाई पड़ती है। कविताओं में रहस्यवाद प्रथम बार ही उभरकर अपनी छायावादी प्रवृत्ति का परिचय प्रस्तुत करता है। उसमें कवयित्री के काव्य की एक रूपरेखा बनती नजर आती है। छंदों में एक अव्यक्त पीड़ा का हल्का आभास मिलता है, किंतु उसका कोई

स्थिर रूप नहीं दिखाई देता। असीम में खो जाने की एक चाह गीतों में उभरती नजर आती है, जिसमें कहीं कुछ दूर की पुकार है, पवन के झकोरे हैं, लहरों की करवटें हैं और सितारों का स्नेहिल संदेश भी। 'जब असीम से हो जाएगा मेरी लघु सीमा का मेल' कहकर चरम सत्य को पाने में ही महादेवी अपनी काव्य-सार्थकता समझती हैं। मिलन की असीम आकांक्षा उनके मन में जन्म लेती है, किंतु नारी सुलभ लज्जा का साम्राज्य उनके अंतर्मन में सदा बना रहता है–

हे नभ की दीपावलियो, तुम पल भर को बुझ जाना।
मेरे प्रियतम को भाता है, तम के परदे में आना।।

महादेवी की काव्य-शृंखला की दूसरी कड़ी के रूप में 35 गीतों के एक संकलन ने 1932 में अपना आकार ग्रहण किया। जिसने *रश्मि* के नाम से छायावाद को समृद्ध बनाया। इसमें *नीहार* की अपेक्षा कवयित्री की काव्य-साधना अधिक प्रौढ़ और पुष्ट होकर निखरी। गीतों में व्यथा को संगिनी बनाकर जीने का भाव व्यक्त हुआ है। *रश्मि* की भूमिका में कवयित्री ने अपने दुखवाद का संदेश यों दिया है –

''सुख और दुख के धूपछाहीं डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के लिए आश्चर्य का कारण है। संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सबकुछ मिला है, परंतु उस पर दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।'' *रश्मि* में उनका यही दुखवाद तीव्र हो उठा है। इसमें उनका रहयवाद भी सन्निहित है।

1934 में महादेवी जी का तीसरा काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ जिसमें 58 गीत संगृहीत हैं। *नीरजा* नाम से प्रकाशित यह काव्य-संकलन छायावाद की एक मुख्य घटना थी। महादेवी जी के काव्य-संचरण का यह तीसरा सोपान था, जिसमें कवयित्री के वेदनाकुल अस्तित्व की कहानी विद्यमान है। इसमें प्रणय का प्रकाशन, सौंदर्य की लालसा, अश्रु-प्रवाह और हृदय की भावमयी अभिव्यंजना है। चिंतन अधिक प्रौढ़ होने के कारण आस्था और विश्वास के भाव सघन हुए हैं। आत्मा-परमामा की प्रेम-व्यंजना से काव्यात्मक गहराई का परिचय मिलता है –

बीन भी हूं मैं, तुम्हारी रागिनी भी हूं।
दूर तुमसे हूं अखंड सुहागिनी भी हूं।।

नीरजा की मूल भावना का यथार्थ परिचय 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' शीर्षक कविता से मिलता है, जिसमें प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव मुखरित हुआ है–

युग-युग प्रतिदिन-प्रतिक्षण-प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन।।

सांध्यगीत उनका चौथा काव्य-संकलन है, जो 1936 में प्रकाशित हुआ। इसमें *नीरजा* के भाव-विस्तार के साथ अनुभूति की सघनता व्याप्त है। इसमें विरह का अभिशाप वरदान बन गया है और जीवन में निर्द्वंद्वता का संसार सृजित हुआ है। इतना ही नहीं, जीवन और मृत्यु का पार्थक्य भी मिट-सा गया है। गीतों में भावुकता के साथ-साथ चिंतन की गंभीरता भी विद्यमान है और वेदना मधुमय राग से अनुरंजित हो उठी है। दार्शनिक एकाग्रता के उच्चतर बन जाने से रहस्यभावना प्रधान हो चली है। फिर भी 'प्रसाद' के 'आंसू', 'निराला' की 'स्मृति' जैसी उदात्तता और एकतानता तथा 'पंत' के 'पल्लव' जैसी सौंदर्यानुभूति महादेवी में नहीं है, किंतु उनमें वेदना का जो विन्यास और विवृत्ति है, वह तीनों कवियों में नहीं है।

1942 में महादेवी वर्मा का पांचवां और अंतिम काव्य-संकलन *दीपशिखा* नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें 'दीप' आत्मा का तथा शिखा अनवरत साधना में तल्लीन निष्ठा की प्रतीक है। *दीपशिखा* में कुल 51 गीत हैं। वस्तुत: *दीपशिखा* ब्रह्म के प्रति जीव की निरंतर ज्वलित जाग्रत साधना की प्रतीक है। महादेवी जी की कविता के दो वृहत्त संग्रह अब तक प्रकाशित हैं। *नीहार, रश्मि, नीरजा* तथा *सांध्य गीत* की 185 कविताओं के संग्रह का नाम *यामा* है तथा दूसरा संग्रह *दीपशिखा* है इस प्रकार *नीहार* में आकर्षण और पीड़ा की अनुभूति, *रश्मि* में दार्शनिक सिद्धांतों, *नीरजा* में वीरह-व्यथा, *सांध्यगीत* में आत्मतोष और *दीपशिखा* में अनवरत साधना का प्रतिपादन हुआ है।

महादेवी वर्मा कवयित्री होने के साथ-साथ एक सशक्त गद्य लेखिका भी थीं। उनका गद्य साहित्य काफी प्रखर एवं अनुभूतिप्रवण था। जितना अधिकार उनका काव्य पर था, उससे कम गद्य पर नहीं था। गद्य कृतियों में *अतीत के चलचित्र, शृंखला की कड़ियां, स्मृति की रेखाएं, मेरा परिवार* तथा *पथ के साथी* आदि प्रमुख हैं। उनके गद्य साहित्य की तीन कोटियां हैं। पहले में उनकी विवेचना शक्ति का परिचय मिलता है, जो उनकी कविताओं की भूमिका और स्फुट निबंधों के रूप में है। दूसरे में उनके संस्मरण हैं और तीसरे में चांद की उनकी नारी विषयक संपादकीय टिप्पणियां हैं जिन्हें एकत्रित करके *शृंखला की कड़ियां* नाम दिया गया है। काव्यकार और गद्यकार के रूप में महादेवी का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न है। 'कवि महादेवी' और 'गद्यकार महादेवी' दो व्यक्तित्व हैं एक नहीं। उनका काव्य पूर्णत: आत्मकेंद्रिक रहा, जिसे आलोचकों ने भिन्न-भिन्न नाम दिया। किसी ने 'दुखवाद' कहा तो किसी ने 'रहस्यवाद' और किसी ने 'रुदनवाद' की संज्ञा दी। इसके ठीक विपरीत महादेवी का गद्य समाज केंद्रिक रहा, जिसमें जनजीवन की पीड़ा को स्वर मिला है और दुख-दैन्य के प्रति आत्मीयता के भाव गहरे हुए हैं। साथ ही समाज में स्वार्थों एवं अभिशापों का जोरदार प्रतिकार भी किया गया है। काव्य-कृतियों वाली उनकी वैयक्तिक पीड़ा गद्य कृतियों में आकर विस्तार पाती है और वह जन-जन की पीड़ा बन जाती है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ा में नहीं, समाज की पीड़ा में है।

अतीत के चलचित्र एवं *स्मृति के रेखाएं* में महादेवी के संस्मरणों एवं रेखाचित्रों को देखने से पता चलता है कि उसमें वर्णित पात्र ऐतिहासिक पात्र न होकर भारतीय जनजीवन के कुरूप चिह्न हैं, जिनमें से कुछ अशिक्षा और शोषण से दीन-हीन और सरल बन गए हैं तथा कुछ महादेवी की करुणा और ममता की सहानुभूति से निर्मित। वस्तुत: गीतिकाव्य में व्यक्तिप्रधान महादेवी की भावना रेखाचित्रों में आकर समाज प्रधान बन गई है। रेखाचित्रों में उनकी अनुभूति मात्र प्रणयिनी की अनुभूति नहीं है, उसमें मां की ममता है, बहन का प्रेम है और है नारी की कोमल काया के भीतर हृदय की अनुभूति की कोमल अभिव्यक्ति। जन-जीवन में व्याप्त दुख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न, अभाव आदि के प्रति विराट सहानुभूतिपूर्ण करुणा और ममता के साथ-साथ कहीं-कहीं विद्रोह भी है, जो करुणा और ममता से ही अभिभूत है। उनके रेखाचित्र जन-जीवन के प्रामाणिक दस्तावेज हैं।

शेष पृष्ठ 96 पर जारी

इलाहाबाद की याद और महादेवी जी

***जीवन का चिह्न केवल काल्पनिक स्वर्ग में विचरण नहीं है, संसार के कंटकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना भी है / जब तक बाह्य तथा आंतरिक विकास सापेक्ष नहीं बनते हम जीना नहीं जान सकते / प्रयाग में महादेवी वर्मा के साथ बिताए यादगार क्षणों के संस्मरण सुना रहे हैं* शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी**

महादेवी वर्मा पर कुछ लिखते-पढ़ते समय मुझे इलाहाबाद अपना-सा लगने लगता है। एम.ए. हिंदी का विद्यार्थी था, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में इसी समय साक्षात्कार लेने उनके यहां पहुंच गए। डा. रामकरन मिश्र, डा. बद्रीदत्त मिश्र, डा. संजय श्रीवास्तव साथ में थे। महादेवी जी के यहां कई बार जाना हुआ। छह-सात बार उनसे मुलाकात हुई और साहित्य पर चर्चा हुई। कई बार तो रामजी पांडेय से मेरी झड़प भी हो गई। महादेवी जी से मिलने को लेकर।

हम लोग (रामकरन, सुरेश बद्रीदत्त) महादेवी जी के यहां से एक बार लौट चुके थे। दूसरी बार जब पहुंचे तब भी डा. पांडेय ने पहली बार वाला नुस्खा अपनाया– देवीजी बीमार हैं किसी से मिल नहीं सकतीं।

मैंने आगे बढ़कर कहा– ''पहली बार भी तो आपने यही कहा था।''

डा. पांडेय किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। मैंने फिर थोड़ी तेज आवाज में कहा–

''हम लोग विद्यार्थी हैं और देवीजी बीमार हैं तो दर्शन तो करने दीजिए फिर हम लोग चले जाएंगे।''

पांडेय जी और हम लोगों की बातचीत को सुनकर महादेवी जी खुद बाहर आ गयीं– ''क्या बात है?''

हम लोगों को बल मिला, ''देवीजी, यह हम लोगों को वापस कर देते हैं, मिलने नहीं देते।''

महादेवी जी हम लोगों को लेकर खुद ही भीतर गईं और फिर तो थोड़ी देर में ही नाश्ते वगैरह की चिंता में पांडेय जी लग गए। इसके बाद भी हम लोग कई बार गए। एक दो बार तो अकेले भी जाना हुआ और तब पांडेय जी का व्यवहार अनुचित नहीं लगा।

महादेवी जी की कविताएं पाठ्यक्रम में पढ़ने के बाद महादेवी जी से मिलना कितनी खुशी दे रहा था नहीं मालूम, पर आज की तारीख में यह सब देखने का मन करता है कि काश! हमारे अपने विद्यार्थी भी इस तरह की जिज्ञासा रखते।

महादेवी जी से मिलकर यह कभी नहीं लगा कि साहित्यकार नामक जीव अलग लोक का प्राणी होता है। उनके कमरे में दक्षिण भारत के अनेक युवक और किशोर रचनाकर्मियों को मैंने देखा जो उनसे भूमिका या दो शब्द लिखवाने के लिए आते थे। वह मना भी नहीं करती थीं। शायद, इसी अवांछित सक्रियता को रोकने के लिए डा. रामजी पांडेय सक्रिय रहे होंगे। पर महादेवी जी के लिए वांछित और अवांछित क्या? सरस्वती का दरबार रचनाकर्मियों के लिए न खुले तो एक विडंबना ही होगी।

महादेवी जी कहती थीं – ''कविता कविता होती है, वह नयी-पुरानी नहीं होती।''

महादेवी से मिलने वाले लोग यह जानते हैं कि नयी पीढ़ी के प्रति उनमें कितनी सहज आत्मीयता थी। एक लिखित प्रश्नों की सूची हम लोग महादेवी जी को दे आए थे। गए तो थे साक्षात्कार लेने पर महादेवी जी ने मना कर दिया। ''परीक्षा लेने आए हो क्या ? अपने प्रश्न छोड़ जाओ। समय पाकर मैं उत्तर दे दूंगी।'' महादेवी जी ने कहा।

हम लोग भी खुश हुए चलो महादेवी जी की लिखावट हम लोगों के पास रहेगी। यह लिखित साक्षात्कार ही महादेवी जी का आखिरी साक्षात्कार है।

प्रश्न देने के बाद कई बार मुझे एवं डा. बद्रीदत्त मिश्र को महादेवी जी के यहां जाना पड़ा। एक बार तो बुलाकर महादेवी ने उपस्थित लोगों से परिचय कराते हुए कहा – ''ये हैं शैलेन्द्र! हैं तो हिंदी के छात्र एम.ए. के, पर परेशान करने में ये भारती से कम नहीं हैं।''

मैं झेंप गया था। तब डा. रामजी पांडेय ने कहा – ''आपको खुश होना चाहिए। दुखी नहीं होना चाहिए। देवी जी ने डा. धर्मवीर भारती की बात की थी।''

महादेवी जी का उत्तर मिला भी और प्रकाशित भी हुआ। मेरे मित्र वीरेन्द्रसिंह उन दिनों *स्वतंत्र भारत* में थे। जब मैंने कहा– ''महादेवी जी का आखिरी साक्षात्कार मेरे पास है।'' तब उन्होंने कहा – ''यह कैसे हो सकता है? वह तो मेरे पास है।''

इधर कुछ वर्ष पूर्व मेरे एक अन्य मित्र कृपाशंकर चौबे ने सूचना दी कि महादेवी जी का आखिरी साक्षात्कार उनके द्वारा लिया गया है। बहरहाल इन दोनों मित्रों द्वारा लिए गए साक्षात्कार उपलब्ध नहीं कर सका। अपने लिखित साक्षात्कार के आखिरी होने की सूचना भी मेरे एक मित्र ने *नवभारत टाइम्स* पढ़कर मुझे दी। फिर भी मैं दावा नहीं करता पर इतना तो तय है कि महादेवी का आखिरी लिखित साक्षात्कार अभी मेरे पास सुरक्षित है।

एक बार महादेवी जी से मैंने बरहज (अपने जन्म स्थान) की बात की।

आश्चर्य, महादेवी जी जानती थीं उस स्थान को। वहां परमहंस राघवदास थे। उन्होंने मुझे बरहज निमंत्रित किया था। मैंने कहा, "देवीजी, अब तो आप बरहज चलें।" हंसती हुई बोली, "अब तो डॉक्टरों के कहने पर ही निकल पाऊंगी।"

निराला के संस्मरण महादेवी जी तो संजोकर रखती थी। बच्चों की बात वह पर्याप्त सुनती थीं। इलाहाबाद में ही अन्य साहित्यकारों से भी मिलने का सौभाग्य मिलता रहा पर महादेवी जी बच्चों को बोलने का जितना अवसर देती थीं, आप रामकुमार वर्मा जी के यहां उतना नहीं बोल सकते थे। श्रद्धेय दोनों थे, लेकिन रामकुमार जी पर प्रशासक, आलोचक-अध्यापक की अतिरिक्त छाप दिखाई देती थी। यद्यपि माहदेवी जी इन तीनों रूपों से परिचित थीं पर एक सहज आत्मीयता का ताप उनके यहां मिलता था। रामविलास शर्मा ने एक जगह पर लिखा है-

"*सप्तपर्णा में* अपनी बात शीर्षक देकर उन्होंने प्राचीन भारतीय साहित्य पर एक लम्बा रोचक निबंध लिखा है। कवयित्री महादेवी जी विदुषी रूप में यहां कालिदास, भवभूति, अश्वघोष पर ही अपना मत व्यक्त नहीं करती वरन् स्त्रियों के लिए वर्जित वेद और वैदिक साहित्य पर भी अपने सुदीर्घ चिंतन का फल प्रस्तुत करती हैं। जिन लोगों को आधुनिक हिंदी काव्य से, विशेषकर छायावादी काव्य से, उसमें भी महादेवी जी के काव्य से ममत्व हो, वे धैर्य से इस निबंध का अध्ययन करें।"

(*भाषा युगबोध और कविता, रामविलास शर्मा,* पृ. 142 से साभार)

साहित्य का तात्पर्य क्या होना चाहिए जो लोग उसे आदेश या अध्यादेश के रूप में चाहते हैं उन्हें निराशा होगी महादेवी के साहित्य से। ऐसा नहीं है कि महादेवी यह भाषा या इस तरह के विचार नहीं रखती थीं। 'जीने की कला' महादेवी के लेखन काल की आरंभिक रचनाओं में से है और यहीं पर वह कह चुकी थीं- "जीवन का चिह्न केवल काल्पनिक स्वर्ग में विचरण नहीं है, संसार के कंटकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना भी है। जब तक बाह्य तथा आंतरिक विकास सापेक्ष नहीं बनते हम जीना नहीं जान सकते।"

सच तो यह है कि आज जो स्त्री-विमर्श और नारी विमर्श पर हवाई तलवारें लेखन में भांजी जा रही हैं उस पर भी महादेवी जी ने गंभीता से विचार किया था। अपने साक्षात्कार के संदर्भ में बात करूं तो महादेवी जी ने मेरे दो प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया था, क्यों? मैं आज तक नहीं समझ पाया। शायद वह विवाद से बचना चाहती थीं वे दो प्रश्न थे- (1) राष्ट्रभाषा की कोई समस्या नहीं है, क्या आप इसे मानती हैं- हिंदी भारत में और कितना संघर्ष करेगी? (2) निराला जी और अज्ञेय जी (दोनों लोग) आपके समकालीन साहित्यिक थे, दोनों ने काव्य जगत में नयी धारणाएं प्रचलित कीं, पर्याप्त सफलता पाई। काव्य के संबद्ध में दोनों लोगों की वैचारिक भिन्नता के संबंध में आपकी क्या धारण है ? इन दो प्रश्नों का उत्तर महादेवी जी ने नहीं दिया था। आज के साहित्य पर महादेवी जी का कहना था- "आधुनिक साहित्य अवसरवाद से ग्रस्त है। न वह साम्प्रदायिक है न असम्प्रदायिक क्योंकि दोनों ही स्थितियों में एक आस्था की आवश्यकता होती है। अवसरवाद में व्यक्ति मोहग्रस्त न होकर स्वार्थग्रस्त रहता है।"

मैथिलीशरण गुप्त से लेकर हमारी पीढ़ी के यश मालवीय तक ने महादेवी जी के साहित्य, व्यक्तित्व पर बहुत कुछ कहा है। पर इलाहाबाद में बिताए गए अध्ययन काल के वे दुर्लभ क्षण, जब हम लोग महादेवी जी के यहां जाते थे, अब नहीं आने वाले हैं। ❑

पृष्ठ 93 से आगे

महादेवी वर्मा का रचना संसार

यद्यपि *स्मृति की रेखाएं* एवं *अतीत के चलचित्र* में महादेवी के जीवनसंस्मरण सन्निहित हैं, फिर भी उनमें रेखाचित्रों की संख्या अधिक है। *स्मृति की रेखाएं* में पहला रेखाचित्र देहात की एक वृद्ध महिला का है, जिसका नाम भक्तिन है। वह अज्ञान और अशिक्षा के कारण अनेक दुर्गुणों के साथ-साथ गुण भी रखती है, जो उसके आकर्षक व्यक्तित्व का परिचय कराते हैं। दूसरा रेखाचित्र एक चीनी फेरी वाले का है, जो अपना देश छोड़कर अपनी खोई हुई बहन की तलाश में फेरी लगाता फिरता है। इसके अतिरिक्त इस संग्रह में गांव की गरीबी, श्रमपूर्ण पहाड़ी जीवन की अभावग्रस्तता, धोबियों के पारिवारिक जीवन की झांकी आदि महत्वपूर्ण रेखाचित्र हैं। *अतीत के चलचित्र* के पहले रेखाचित्र में श्रमजीवी ग्रामीण नौकर रामा का ईमानदार चरित्र उभरकर सामने आया है। दूसरे रेखाचित्र में बाल विधवा का चित्र है, जो परिवार के अत्याचार और उपेक्षा भरे वातावरण में अभिशापपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। उसमें उसकी मूकवेदना मूर्तिमान हो उठी है। तीसरे रेखाचित्र में विमाता के दुर्व्यवहार से पीड़ित निरीह बालिका की कहानी है। चौथे में भंगियों के पारिवारिक चित्रण के साथ-साथ भारतीय नारी के रूप में उपेक्षित 'सबिया' की कर्मठता तथा उत्सर्ग भावना अंकित है। इसके अतिरिक्त सब्जी बेचने वाले अंधे अलोपी, बदलू कुम्हार, पहाड़ी महिला लक्ष्मी आदि के रेखाचित्र जनजीवन के विविध रूप ही हैं। उनके रेखाचित्रों में विद्रोह की वाणी है और सामाजिक चेतना की धार भी। इन कृतियों में महादेवी जी ने कुछ उपेक्षित प्राणियों के चित्र अपनी करुणा से रंजित कर इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं कि हम उनके साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगते हैं। पाठक के लिए वे प्रेरणा के स्रोत हैं, जिसमें अपेक्षित मानवीय गुणों के विकास की संभावनाएं बनती नजर आती है।

इस प्रकार महादेवी के साहित्य संसार में उनका दोहरा व्यक्तित्व दिखाई देता है, किंतु उनके साहित्यकार का परिचय हमें कवि रूप में ही अधिक मिलता है, क्योंकि गद्य-कृतियों में भी उनका कवि हृदय हर जगह हावी रहा है। काव्य में उनकी बिरहाकुल आत्मा का निवास है तो गद्य में समाज सापेक्ष विद्रोही आत्मा का। काव्य हो या गद्य हर जगह उनकी करुणा और वेदना को विस्तार मिला है। दोनों ही साहित्य रूपों में वे पिघलती नजर आती हैं। काव्य में निज मन के विरह ताप से पिघलती हैं तो गद्य में जनमन के ताप से। करुणा और वेदना उनके निज मन की है और जन-मन की भी। वे विरह और पीड़ा में ही जीना चाहती हैं, इसलिए 'मिलन के नाम' से वे सदा कतराती रहीं। काव्य में महादेवी पीड़ा का संसार रचती दीख पड़ती हैं। इसलिए गद्य कृतियों में जन-मन की पीड़ा के प्रति वे संवेदनशील नजर आती हैं। उनकी साहित्य-साधना को पीड़ा से ही प्रेरणा और पोषण प्राप्त होता है। इसलिए उनकी कुछ काव्य पंक्तियां साहित्य जगत के लिए किंवदंतियां बन गई हैं। जैसे- 'तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा', 'मिलन का मत नाम लो', 'मैं विरह में चिर हूं', 'मैं नीर भरी दुख की बदली' इत्यादि। वस्तुतः महादेवी में समर्पण का भाव तो है ही, त्याग और तपस्या की दृढ़ प्रतिबद्धता भी है। इसलिए वे मरने-मिटने के अधिकार को खोना नहीं चाहतीं -

रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार। ❑

महादेवी के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

के. मुहम्मद

छायावाद-रहस्यवाद की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा वेदना और दुखवाद की विशिष्ट गायिका हैं। उनके संपूर्ण काव्य को पढ़ने से लगता है कि उनके मन की करुणा-सघन वेदना ही उनके गीतों के रूप में मुखरित हो रही है। उनकी वेदना आलोचकों के लिए अनुमान और चिंतन का विषय बनी है। यों इस संबंध में स्वयं महादेवी जी ने ही अपनी ओर से कहा है-

''सुख और दुख के धूपछांही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह लोगों के आश्चर्य का कारण है! ...संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परंतु उस पर दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना इतनी मधुर लगी है।''

महादेवी के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए उनके काव्य की मूल प्रेरणाओं को जानना जरूरी है। स्वयं महादेवी ने अपने काव्य सृजन की प्रेरणा इस प्रकार बताई है-

''एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परंतु एक ओर साधनाभूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बंधनेवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर, मां से पूजा आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।''

इस प्रकार महादेवी की कवि-प्रतिभा के निर्माण में मुख्य रूप से उनके माता-पिता के संस्कार, बचपन के सुख की अधिकता की प्रतिक्रिया, बौद्ध दर्शन का प्रभाव आदि का हाथ रहा है। महादेवी के चिंतन या उनकी दार्शनिक विचारधारा के निर्माण में भी ये प्रेरणाएं कारणभूत हैं।

महादेवी की दार्शनिक विचारधारा का दर्शन हमें उनकी प्रारंभिक कृति *नीहार* से ही मिलता है। प्रारंभिक कृति होने पर भी उनके जीवन-दर्शन की रूपरेखा इसमें भी स्पष्ट है।

नीहार में संगृहीत रचनाओं में उनकी स्पष्ट धारण है कि संसार स्वार्थमय और दुखमय है। इस स्वार्थप्रधान, विषादसंकुल विश्व से दूर एक अलौकिक अनंत, शाश्वत, आनंदमय संसार है, जो वस्तुतः अत्यधिक आकर्षक और भव्य है। इस संसार का निवास बहिर्मुख जीवन में न होकर मानव मन के अन्तरतम में है।

संसार के दुख का कारण है- इसकी क्षणभंगुरता, अस्थिरता, विध्वंस, नाश, जरा, मृत्यु, असफलता। इस प्रकार प्रारंभिक रचना में मुख्य रूप से केवल संसार की अस्थिरता, क्षणभंगुरता, स्वार्थपरता, विश्वासघात आदि का प्रतिपादन किया गया है। समूचे जगत की नश्वरता का चित्र आंखों के सामने सजीव हो जाने पर महादेवी कह उठती हैं :

निश्वासों का नीड़ निशा का, बन जाता जब शयनागार
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावालियों के वंदनवार
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार
आंसू से लिख-लिख जाता है, कितना अस्थिर है संसार।

महादेवी की दूसरी प्रौढ़ कृति *रश्मि* में दार्शनिक विचारधारा अधिक स्पष्ट है। *रश्मि* संग्रह की कविताओं में अद्वैतवादी दर्शन की स्पष्ट छाप है। उपनिषदों के अद्वैतवाद में ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, दृश्यमान जगत मिथ्या है। सारा संसार भ्रममय है, स्वप्नवत है। 'ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या' के भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

सांध्यगीत में दार्शनिक विचारधारा की एकाग्रता मिलती है। इसमें सुख-दुख का समन्वय किया गया है। यहां कवयित्री की साधना का स्वरूप पूर्णरूपेण स्पष्ट है। रहस्य-भावना भी यहां प्रधान है। महादेवी के चिंतन का एक उदाहरण :

तोड़ देता खीझकर जब तक न प्रिय वह मृदुल दर्पण
देखते उसके अधर, सस्मित, सजलदृग, अलख आनन!

दीपशिखा में आकर महादेवी ने अपने परम विश्वास और सुदृढ़ आस्थाओं की अभिव्यक्ति की है। यहां कोई अस्थिरता नहीं है। वे दृढ़तापूर्वक कहती हैं-

भीति क्या यदि मिट चली
नभ से ज्वलित पग की निशानी,
प्राण में भू के हरी है, पर सजल मेरी कहानी।

महादेवी के काव्य में विरह की जितनी भी अभिव्यक्ति मिलती है, वह सब दर्शन और रहस्य भावना संबंधी है। उन्होंने सर्वत्र विरह और मिलन की बातों में आत्मा और परमात्मा के मिलन का ही चित्र प्रस्तुत किया है।

दुखवाद महादेवी की दार्शनिक विचारधारा का मूल तत्व है। कुछ कविताओं में तो दुख अपने चरम रूप में अभिव्यक्त हुआ है, जहां आत्मा परमात्मा में मिलने को अत्यधिक व्यग्र दिखाई देती है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में :

शेष पृष्ठ ७७ पर

महादेवी के काव्य में आस्था तत्त्व

ब्रज भूषण शर्मा

महादेवी वर्मा की काव्य चेतना शब्द-शब्द में औदात की दीप्ति निराशा को आनंद रस से छलका देती है। यह उनकी आस्था शक्ति का परिचायक है। गहन रहस्यमय विषय भाव को लेकर भी उनमें कहीं विषय-व्यतिक्रम नहीं है। गहन से गहन अभिव्यक्ति भी एक सरल चितवन से भरी हुई है।

आस्था कवि की सृजना शक्ति का महती स्रोत है, जो कवि की कल्पना और भावना आयाम को विस्तार और विराटता तो देती ही है, परंतु उससे भी बढ़कर वह उसके अंतस में निहित व्याकुल चेतना को एक विचित्र सृजन शक्ति प्रदान करती है। कवि का अपने सृजन के प्रति आश्वस्त और विश्वस्त होना बहुत आवश्यक है। उसकी रचना का प्रत्येक पग उसके सृजन विश्वास का चरण होता है। एक पद की रचना से पहले ही चमत्कृत करने वाले अनेक सोपानों को वह पार करता है और तब सहज में ही अकस्मात एक भाव सौंदर्य आभा का प्रकाश प्रस्फुटित होकर उसकी भाव चेतना में एक आनंदमय सौंदर्य का उजाला-सा फैला देता है, तब एक मुस्कान-सी हृदय में भर जाती है, सृजन का माधुर्य खिलखिला उठता है, उसकी आत्मा उत्फुल्ल हो उठती है और उसके हृदय में चित्त प्रसादन का आनंद किल्लोल करने लगता है।

सृजन सौंदर्य की प्रभा से कवि के चिंतन में एक विराटता छाने लगती है, तब सहज ही, परंतु काव्य की सृष्टि होने लगती है, व्यष्टि-समष्टि में आनंद स्नात हो उठती है। इदं और अहं की एकतानता रागात्मकता से भर जाती है। और कवि का हृदय एक रहस्यमय भाव से उद्वेलित हो उठता है। तब महादेवी की वाणी अनायास मुखरित हो उठती है। कह उठती हैं :

तुम विद्युत बन आओ पाहुन

और फिर उनका हृदय जिज्ञासा से भर जाता है और उनकी वाणी कह उठती है :

कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?

कवयित्री का भाव तत्त्व आनंद स्रोत के अनंत माधुर्य से भर जाता है। परंतु चित्त का लीला रहस्य क्रीड़ा की उमंग, उत्सर्ग और प्राप्ति का विचित्र विनिमय उनके हृदय को एक चमत्कृति से राग रंजित कर देता है। वे कह उठती हैं :

सब बुझे दीपक जला लूं
घिर रहा तम आज दीपक-रागिनी अपनी जगा लूं।

उनका हृदय मधुर अभिव्यंजना भाव से भर जाता है। अनेक प्रश्न गूढ़ तत्त्वों की ओर इंगित करते हैं। हृदय में सब कुछ है लेकिन उन इच्छाओं को, अभिव्यक्त करने का मन नहीं होता –

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूं,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूं,
फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूं,
एक होकर दूर तन से छांह वह चल हूं,
दूर तुमसे हूं अखंड सुहागिनी भी हूं !

रहस्य और विरह भावना का विरोधाभास इनके काव्य सौंदर्य को निरंतर प्रभा प्रफुल्ल और देदीप्यमान करता रहा है। कैसा मधुर विश्वास है। अश्रुधारा प्रवहमान है, अपने मन की पीड़ा को कैसे लाघव से उन्होंने व्यक्त किया है –

बज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन सुधा दो घूंट मदिरा मांग लाया ?

उनका हृदय चुपचाप, शांत नीरवता में दीपक की भांति जलता हुआ, वह अपनी पीड़ा को छिपाकर कह उठती हैं –

मैं दृग के अक्षय कोषों से
तुझमें भरती हूं जल
सजल-सजल मेरे दीपक जल !

अपने प्रियतम का पथ आलोकित करने की प्रबल आकांक्षा, मधुर मिलन का भाव उनकी समस्त काव्य रचनाओं में भरा हुआ है। उनके जलने में भी मधुरता है, उनका हृदय दीपक स्नेह भाव पूरित है। एक आस्था और विश्वास से, अपराजय भाव से भरकर वे कह उठती हैं–

कह न ठंडी सांस में अब भूल वह जलती कहानी
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी !

भावों का उद्वेग, प्रेम की विह्वलता, विलास प्रवण नहीं है, वह त्याग और औदार्य से परिपूर्ण है।

महादेवी वर्मा की काव्य रचना आत्म संवाद से भरी हुई है। शांत आत्ममुग्धता का अलौकिक साम्राज्य कभी आत्मा को अपने में समेट लेता है तब चित्त सहज ही बुदबुदा उठता है –

इच्छाओं के कम्पन से
सोता एकांत जगा दो
आशा की मुस्कराहट पर
मेरा नैराश्य लुटा दो

महादेवी वर्मा की काव्य चेतना शब्द-शब्द में औदात की दीप्ति निराशा को आनंद रस से छलका देती है। यह उनकी आस्था शक्ति का परिचायक है। गहन रहस्यमय विषय भाव को लेकर भी उनमें कहीं विषय-व्यतिक्रम नहीं है। गहन से गहन अभिव्यक्ति भी एक सरल चितवन से भरी हुई है। काव्य में उपदेशात्मकता न होने पर भी उद्देश्यात्मकता रचना की शक्ति को बनाए हुए है। वक्रता और ध्वनि तत्त्व न होने पर भी ये दोनों गुण स्वयं ही व्याप्त हो गए हैं। इनका काव्य लोक हृदय को छूने की शक्ति भी रखता है–

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी

और इसके साथ ही जब वे कह उठती हैं –

इन आंखों के रस से गीली,
रज भी है दिव से गर्वीली,
मैं सुख से चंचल दुख बोझिल
क्षण-क्षण का जीवन जान चली
मिटने को कर निर्माण चली।

विरोधाभास का सौंदर्य इनके काव्य की एक गहन शक्ति है। व्यष्टिगत हृदय लोकजीवन के कितने निकट आ जाता है। यह इनकी रचना के भाव तत्त्व को बड़ी प्रखरता प्रदान करता है। यह गुणात्मकता कवि की प्रतिभा से बढ़कर उसके हृदय में लबालब भरी स्नेह सिक्त भावभूमि का दर्शन कराती है। जीवन की अनेक विरोधात्मक परिस्थितियों को झेलती हुई इनकी काव्य सृजना आस्था में विषय भाव के औदात में कहीं भी कमी नहीं हुई है। वेदनाग्रस्त हृदय निरंतर कोमलता, मृदुलता, मसृणता से अपनी रचना शक्ति को प्रभावित करता रहा है, जो इनकी आस्था का द्योतक है।

महादेवी वर्मा के गद्य लेखन में आत्मकथा का भाव बना है। प्रत्येक पात्र इनकी हृदयस्थली को प्रस्तुत करता है। गद्य रचनाओं में बसुधैव कुटुम्बकं प्रत्यक्ष न होकर सहज ही जीवन मूल्यों द्वारा अनुस्यूत हो गया है। गद्य रचना महिमामयी होते हुए भी इनकी काव्य रचना का वैभव अतुल्य रूप से चमक उठा है।

महादेवी जी आस्था और जीवन शक्ति की परिचायक कवयित्री हैं, उन्होंने कहा है – "काव्य का सत्य तो तीव्र संवेदनों की तरल उज्ज्वल ज्वाल में गल-गल कर रूप और जीवन के ऊष्मा से स्पंदन पाता है।" ❑

महादेवी के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

पृष्ठ 96 से आगे

नहीं अब गाया जाता देव!
थकी अंगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आस
मिला लो यह अस्फुट झंकार !

महादेवी ने प्रकृति और मानव जीवन के वैषम्य को भी वाणी दी है। ऐसे स्थलों पर उनकी करुणा का विशेष सजीव रूप देखने को मिलता है। वास्तव में यहां महादेवी का आशय अस्त मानवता के क्रंदन को ही वाणी देना है।

उदाहरण –

देखें खिलती कलियां या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूं?

महादेवी वैज्ञानिकता पर आधारित बुद्धिवाद में विश्वास नहीं करतीं। इस दृष्टि से वे भाववादी दार्शनिक विचारधारा की पोषक हैं। जीवन के नाना प्रश्नों का उत्तर बुद्धि से ही नहीं दिया जा सकता।

वास्तव में बुद्धि की सत्ता अपर्याप्त है, इसलिए महादेवी भावातिरेक को क्रियाशीलता का एक रूपांतर मानती हैं। यही भावातिरेक हमारे अंतर्जगत का स्पर्श करके बाह्यजगत में अभिव्यक्त होने के लिए व्याकुल हो उठता है। महादेवी इसके उचित उपयोग के लिए बुद्धि का दिशानिर्देश भी स्वीकार करती हैं। यहीं भावना और बुद्धि दोनों का संतुलन दिखाई देता है। ❑

वाराणसी में इंडो–पाक मुशायरा

न रोको रास्ता इसका, इसे हर शिम्त आने दो।
मोहब्बत रंग है खुशबू है, इसको फैल जाने दो।।
गिरा दो हवस की दीवार और मौसम बदल डालो।
जो मुद्दत से है आजूदां वह चेहरे मुसकराने दो।।
दुश्मनी के पर्वत से, प्यार का रास्ता निकाला है।
क्यों जमाने की बात करते हो, यह जमाना तो देखा–भाला है।

भारत और पाकिस्तान के बीच दोस्ती और दो मुल्कों के आवाम के बीच मोहब्बत और शांति पैगाम देने वाला यह कलाम, लाहौर से आई पाकिस्तान की मशहूर शायरा सुल्ताना मुनव्वर ने पेश किया। मौका था वाराणसी में आयोजित इंडो–पाक मुशायरा। भारतीय राष्ट्रीय एकता परिषद, वाराणसी के तत्वावधान में गत 4 नवंबर को बेनियाबाग में आयोजित इस मुशायरे का लुत्फ लगभग दो लाख लोगों ने उठाया।

विश्व शांति, अमन चैन, भाईचारा, सांप्रदायिक सौहार्द और हिंद–पाक दोस्ती को समर्पित इस मुशायरे का आयोजन राजीव गांधी की याद में 1993 से किया जा रहा है।

इस मौके पर भोपाल से आए मंजर भोपाली ने अपनी ग़ज़ल पढ़ी–

वक्त के तकाजों पर हम अगर जीए होते।
क्यों हमारे होठों पर आज मरसीये होते।।

पाकिस्तान के लाहौर से आई शायरा फौजिया मुगल ने अपना

इंडो–पाक मुशायरे में सल्तनत ऑफ ओमान के डा. रईस अहमद खां को राजीव गांधी सद्भावना सम्मान प्रदान करते हुए श्री प्रमोद तिवारी। साथ में हैं पाकिस्तान की शायरा मुनव्वर सुल्ताना और फौजिया मुगल



कलाम पेश करते हुए कहा–

वो सामने है फिर भी मेरा दिल उदास है
शायद मेरी निगाह को सिद्दत की प्यास है।।
पहुंचा दिया तलब ने हमें किस मुकाम पर
अब अपनी सांस पर भी तुम्हारा कयास है।

इसके बाद मुजफ्फरनगर के शायर खालिद जाहिद ने पढ़ा–

दुनिया उलझ रही है तो उलझा रहा हूं मैं।
आंधी से कुछ तो सोच कर टकरा रहा हूं मैं।।

उज्जैन की शबाना शबनम ने कहा–

इतना तो हौसला मुझे परवरदिगार दे।
एक गमजदा हयात को हंस कर गुजार दे।।

लखनऊ के तारिक कमर ने अपना कलाम इस तरह पढ़ा–

चरागों को बुझाना चाहती है।
हवा भी आबोदाना चाहती है।।
अमीरे शहर आंखें बंद कर ले।
गरीबी मुस्कराना चाहती है।।

शायर अलताफ जिया (मालेगांव), हामिद बहराइची, इमरान प्रतापगढ़ी, तनवीर गाजी, हसन काजमी (दिल्ली), नईम अख्तर बुढ़हानपुरी और उर्दू अकादमी ऑफ अमरीका की शायरा अना देहलवी ने भी इस मौके पर अपना कलाम पेश किया। मुशायरे का उद्घाटन उत्तर प्रदेश कांग्रेस विधान मंडल दल के नेता प्रमोद तिवारी ने किया तथा संचालन अनवर जलालपुरी ने किया।

मुशायरे में भाग लेने के लिए आए शायरों और अतिथियों का स्वागत करते हुए मुशायरा कमेटी के अध्यक्ष अशफाक अहमद मेमन ने कहा कि यह आयोजन न केवल हिंदुस्तान और पाकिस्तान के अवाम को एक-दूसरे के और नजदीक लाने का जरिया है बल्कि इससे दोनों मुल्कों के बीच नफरत की दूरियां पाटने और आतंकवाद को रोकने में भी मदद मिलेगी।

प्रस्तुति : सुरेंद्र कुमार उपाध्याय

सुधा सम्मान–2007 समारोह

प्रस्तुति : तुषार उप्रेती

'जनादेश' सेंटर फॉर एक्शन रिसर्च ट्रेनिंग एंड एडवोकेसी शिल्पायन, नई दिल्ली की ओर से गांधी शांति प्रतिष्ठान के सभागार में गत जनवरी की 28 तारीख को 'सुधा सम्मान–2007' समारोह का आयोजन किया गया।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए *हंस* पत्रिका के संपादक राजेन्द्र यादव ने दिवंगत साहित्यकार कमलेश्वर को याद करते हुए कहा कि कमलेश्वर का जाना साहित्य जगत में नया शून्य पैदा कर गया है, जिसकी भरपाई कर पाना किसी भी जीवित साहित्यकार के बस की बात नहीं लगती है। उन्होंने कहा कि साहित्य कभी भी एक्सक्लूसिव नही होता, वह समाज से जुड़ा होता है। मंच का संचालन अलका सिन्हा ने किया।

इस अवसर पर भाषा और पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए विभिन्न रचनाकर्मियों को राजेन्द्र यादव ने सम्मानित किया। सम्मानित लोगों में 'लोकसभा चैनल' की वर्तिका नंदा, दलित कहानीकार अजय नावरिया, अंगिका भाषा के रचनाकार डा. अमरेन्द्र, संस्कृतिकर्मी रंजन और समाजसेवी राहुल तायल शामिल थे। स्मृतिचिह्न सहित दस-दस हजार रुपये सम्मान स्वरूप दिए गए।

इस अवसर पर *हंस* पत्रिका के संपादक राजेन्द्र यादव ने शिव कुमार शिव के उपन्यास *तुम्हारे हिस्से का चांद* का लोकार्पण किया। इसके बाद मुशर्रफ आलम जौकी, सुभाष चंद कुशवाहा, हरे प्रकाश उपाध्याय ने अपने विचार रखे। समारोह के आयोजकों में प्रसून लतांत, प्रांजल धर, आशुतोष इत्यादि भी थे।



सुधा सम्मान समारोह–2007 में पुरस्कृत रचनाकार बाएं से तीसरे अजय नावरिया, डा. अमरेन्द्र, वर्तिका नंदा और सुप्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र यादव

कमलेश्वर को साहित्य जगत की श्रद्धांजलि

'कमलेश्वर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इस प्रतिभा का संघर्ष व उसकी छाप साहित्य, पत्रकारिता, फिल्म और टी.वी. सीरियल- हर क्षेत्र में देखने को मिलती है। उनकी जुबान ऐसी थी जिसने हिंदी-उर्दू के बीच के भेद को मिटा दिया था। वे उर्दू वालों को भी उतने ही स्वीकार्य थे जितने हिंदी वालों को।' वरिष्ठ कथाकार और *हंस* पत्रिका के संपादक राजेन्द्र यादव ने पचास से भी अधिक साल पुराने अपने मित्र को याद करते हुए यह बात कही। कमलेश्वर को एक जिंदादिल इंसान बताते हुए उन्होंने कहा कि उनकी उपस्थिति को आप नकार नहीं सकते थे। वह मूलत: कहानीकार थे। बातचीत और लेखन में किस्सागोई उनका सबसे विलक्षण हथियार था। वह बहुत संवेदनशील और आत्मीय मित्र थे।

मशहूर बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी ने कहा कि कमलेश्वर एक विशिष्ट गद्यशिल्पी के साथ ही एक अच्छे इंसान भी थे। हमने एक विलक्षण लेखक ही नहीं, एक अच्छा इंसान भी खोया है। प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक और गीतकार गुलजार ने मुंबई के दिनों को याद करते हुए कहा कि उनके साथ बिताए पल-पल की यादें ताजा हैं और वह कभी भुलाने वाली नहीं हैं। उनकी कहानियों ने नई पीढ़ी को नई दिशा दी है।

वरिष्ठ कथाकार अमरकांत ने कमलेश्वर के संघर्षों को याद करते हुए कहा कि एक साहित्यकार अपने संघर्षों से किस बुलंदी तक पहुंच सकता है, कमलेश्वर इसकी मिसाल थे। वरिष्ठ कथाकार कृष्ण बलदेव वैद ने कहा कि वह यारों का यार था। उसने कई पापड़ बेले लेकिन लौटकर बार-बार अपनी जगह आता रहा। इस लौट आने के लिए भी मैं उसे प्यार करता हूं। कवि अशोक वाजपेयी ने कहा कि उनकी रचनाओं में अलग तरह की ऊर्जा थी जो पाठकों को बांधे रखती थी। पत्रकार-संपादक आलोक मेहता ने कहा कि कमलेश्वर ने हर क्षेत्र में प्रयोग किया है। वे बहुत अनुशासित थे और हमेशा कुछ बेहतर करने की सोचते थे। वरिष्ठ कथाकार कामतानाथ ने समांतर कहानी आंदोलन के संदर्भ में कमलेश्वर को याद करते हुए कहा कि उन्होंने इस आंदोलन की देशव्यापी भूमिका तैयार की थी। जब-जब कहानी की दिशा में भटकाव आया, उन्होंने कलम उठाई और एक समीक्षक की तरह मार्ग दर्शन करते हुए उसे रास्ते पर ले आए।

राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कमलेश्वर के निधन पर शोक जताते हुए कहा कि इस प्रसिद्ध लेखक ने कहानी में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उपराष्ट्रपति भैरोंसिंह शेखावत ने अपने शोक संदेश में कहा कि कमलेश्वर का व्यक्तित्व बहुआयामी था और उन्होंने साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से समाज और देश की जो सेवा की उसके लिए उन्हें हमेशा याद किया जाएगा।

साहित्य अकादमी, जनवादी लेखक संघ और हिंदी अकादमी, दिल्ली ने कमलेश्वर की स्मृति में शोकसभा का आयोजन किया, जिसमें साहित्य जगत ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी। वरिष्ठ आलोचक प्रो. मैनेजर पांडेय ने कहा कि नई कहानी आंदोलन में अकेले कमलेश्वर थे जिन्होंने 'जार्ज पंचम की नाक' लिखकर नई कहानी में व्यंग्य के लिए जगह बनाई। डा. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा कि वे ऐसे सच्चे आधुनिक लेखक थे, जो परंपरा को गहराई से समझते थे। कमलेश्वर जैसा धर्मनिरपेक्ष मेरी नजर में सिर्फ हरिशंकर परसाई थे। ममता कालिया ने कमलेश्वर को जीवन और ऊर्जा से भरा रचनाकार बताया। उन्होंने कहा कि कमलेश्वर का सबसे बड़ा अवदान यह रहा कि वे मीडिया और साहित्य को करीब लाए। डा. शेरजंग गर्ग ने कहा कि कमलेश्वर की खूबी यह थी कि वे अनेक मित्रों को अपने साथ जोड़ लेते थे। महेश दर्पण ने कहा कि कमलेश्वर का जाना एक ऐसी आवाज का जाना है जो हमारी आवाज को पुख्ता बनाती थी।

हिमांशु जोशी ने कमलेश्वर को याद करते हुए उनके उपन्यास *कितने पाकिस्तान* को वैश्विक रचना बताया। पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कहा कि कमलेश्वर हमारी पीढ़ी के साहित्यिक संस्कार बनाने वाले और सोचने के संस्कारों में हलचल पैदा करने वाले लेखक थे। केदारनाथ सिंह ने उनके अधूरे कार्य हिंदी-उर्दू का समेकित इतिहास का उल्लेख करते हुए कहा कि वे अपने अंतिम समय तक सक्रिय रहने वाले रचनाकार थे। कथाकार गिरिराज किशोर का कहना था कि कमलेश्वर ने कथाकारों की एक पूरी पीढ़ी तैयार की थी।

साहित्य अकादमी के अध्यक्ष गोपीचंद नारंग ने कमलेश्वर को याद करते हुए कहा कि वे हाशिए के लोगों, गरीबों और मजलूमों के समर्थक थे। प्रभाकर श्रोत्रिय ने कहा कि कमलेश्वर के चरित्र में दोमुंहापन कभी नहीं रहा। प्रो. निर्मला जैन ने कहा कि वे अव्वल दर्जे के संप्रेषक थे, उन्होंने पत्रकारिता की, पर उसमें खो नहीं गए। कवि विष्णु नागर ने कहा कि वे अपने समय के सबसे सक्रिय लेखक थे। उन्होंने लेखन के अलावा सामाजिक-सांस्कृतिक रसूख भी बनाया। मुसीबत में फंसे लोगों को उन्होंने हमेशा चुपचाप मदद की। कथाकार रमेश उपाध्याय ने कहा कि साहित्यकार के साथ-साथ एक आत्मीय मित्र और इंसान चला गया। कथाकार प्रदीप पंत ने कहा कि उनकी कहानियों में गहरी पारिवारिक और सामाजिक संलग्नता थी और निजी जीवन में भी वे बेहद पारिवारिक प्राणी थे। फिल्मकार अनवर जमाल ने कहा कि फिल्म माध्यम की भाषा पर भी कमलेश्वर की उतनी ही पकड़ थी जितनी साहित्य में। रंगकर्मी सफ्शुल इस्लाम ने कहा कि हम सब लोग जिनको पढ़कर राजनीतिक बने थे और प्रगतिशील आंदोलन में आए थे, कमलेश्वर उनमें से एक थे। उनके साथ एक दौर खत्म हो गया। ❑

प्रस्तुति : **शिप्रा सिंह**

समीक्षा

आलोचना के नए अनुभव

कवि परंपरा–तुलसी से त्रिलोचन

प्रभाकर श्रोत्रिय; भारतीय ज्ञानपीठ; 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003; पृ.सं. : 261; मूल्य : 195 रुपये।

प्रभाकर श्रोत्रिय में आलोचकीय शऊर है तो संपादकीय विवेक भी। वे आलोचना की शास्त्रीयता और उसकी परंपरा से भलीभांति परिचित हैं। परंपरा उनके लिए रुढ़ शब्द नहीं। परंपरा की जमीन से वे आलोचना के आधुनिक लबो-लहजे को खोज निकालते हैं। अपने एक वक्तव्य में वे कहते भी हैं, ''आज का डी.एन.ए. खुद बताता है कि परंपरा पीछे ही नहीं ले जाती, बल्कि जीवन की निरंतरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।''

प्रभाकर श्रोत्रिय की आलोचना संबंधी लगभग डेढ़ दर्जन पुस्तकें छप चुकी हैं और हर बार वे अपनी मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए, जड़ होती आलोचकीय दृष्टि से टकराते हैं।

कवि परंपरा–तुलसी से त्रिलोचन पुस्तक में भी वे परंपरा को बचाए रखने की कोशिश में जुटे प्रतीत होते हैं। किताब में इक्कीस कवियों पर लेख हैं। सभी कवि महत्वपूर्ण हैं और हिंदी काव्य जगत में उनकी अपनी जगह भी है। इक्कीस कवियों का चयन प्रभाकर श्रोत्रिय का निजी चयन है। यहां कोई आग्रह है न पूर्वाग्रह न वाद न विचारधारा! दरअसल, ये इक्कीस कवि हिंदी कविता के फलक को व्यापकता प्रदान करते हैं।

इस पुस्तक को पढ़ना कविता के ऐसे 'दृश्य' के बीच होने जैसा है, जिसकी पाठकों को शायद इंतजार भी थी। यहां उन्होंने बड़े विश्वसनीय बल्कि मोतबर अंदाज में लेख लिखे हैं। उन्होंने बड़ी प्रखरता और सूझबूझ के साथ विषयों को उठाया है। कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे समकालीन आलोचना के मिजाज से क्षुब्ध हों और बहस के लिए आमंत्रित कर रहे हों।

पुस्तक में इक्कीस कवियों पर लिखे गए लेख इसलिए भी विशिष्ट और महत्वपूर्ण हैं कि इनमें 'अकादमिक उबाऊपन' नहीं। यानी ये लेख आलोचनात्मक होने के बावजूद, बेहद पठनीय हैं। यहां आलोचक के अतिरिक्त, श्रोत्रिय के भीतर का अदीब (सृजक) भी मौजूद है जिसके होने से आलोचना में भी खास तरह की रागात्मकता पैदा हो गई है।

अपने समय के उदार लेकिन सख्त नजरिया रखने वाले श्रोत्रिय इस तरह आलोचना लिखते हैं कि वह कवि की कविता से होते हुए उसके अंतस तक झांक लेते हैं। यही वजह है कि पाठक, आलोचना के भीतर कवि विशेष से संवाद करता प्रतीत होता है। एक तरह से यह जीवंतता आलोचक की भाषा, व्यवहार, अनुभव और उदारवादी चिंतन से छनकर आई है।

पुस्तक के पहले कवि तुलसीदास पर लंबा लेख है और बिल्कुल नए नजरिए से लिखा गया है। तुलसीदास के विषय में श्रोत्रिय लिखते हैं, ''तुलसी को लोग समाज सुधारक, परंपरा पोषक, भक्त कवि, ज्ञानी जैसे कई टुकड़ों में अलग-अलग देखते हैं। तुलसी को हिस्सों में देखेंगे तो तुलसी नजर ही नहीं आएंगे। उनके व्यक्तित्व और सृजन में समग्र एकात्मकता है न कि विखंडित पाखण्ड।''

तुलसी के विषय में दिए गए वक्तव्य का एक अर्थ यह भी है कि स्वयं आलोचक समग्रता का पक्षधर है। इतना ही नहीं, वे प्राय: सभी कवियों पर लिखते वक्त एक वातावरण बना लेते हैं। तब पूरा माहौल कवि का माहौल हो जाता है। तुलसीदास पर लिखे गए लेख को पढ़ते हुए भी ऐसा लगता है जैसे आलोचक ने नए तुलसी का आविष्कार किया हो। यह आविष्कारक दृष्टि प्रभाकर श्रोत्रिय की है। ...कबीर पर वे लिखते हुए समाज पर भी तंज करते हैं, ''क्या यह विडंबना नहीं कि आज हम स्थूल घटनाओं और स्थितियों की आवृत्तियों का प्रतिरोध करने के लिए कबीर को पुकार रहे हैं। शायद यह याद ही आत्मदण्ड के रूप में हमारे बीच कबीर को अधिक प्रासंगिक बनाती है।''

श्रोत्रिय का मौलिक चिंतन, जिज्ञासाओं को जन्म देता है। वे परंपरा को खोजते-बीनते, अधकचरे और बेमानी विचारों पर प्रहार करने से नहीं चूकते। कबीर को अक्सर इस अधकचरे नजरिये से देखा गया। श्रोत्रिय लिखते भी हैं, ''कोई उनकी सामाजिक, मानवीय चिंता को भूलकर, कोरे धार्मिक संत की तरह उनकी आरती उतार रहा है तो कोई उनके आध्यात्मिक-दार्शनिक स्वरूप को नजरअंदाज कर, उन्हें भौतिकवादी, क्रांतिकारी और समाज सुधारक घोषित कर रहा है। यानी कबीर के बहाने अपने ही मतवादों की स्थापना में लगे हैं।''

सूर के विषय में उनकी बड़ी सधी हुई टिप्पणी है, ''भक्ति की सीमा लांघकर, सूर ने प्रेम की जिस गरिमा को स्थापित किया, उससे प्रेम ही भक्ति और सामाजिक शील में बदल गया।'' श्रोत्रिय एक बात बहुत पते की कहते हैं, ''अगर समग्रता से देखें तो यह साफ हो जाता है कि पूरा भक्ति साहित्य लोक साहित्य है, जनसाहित्य।''

मीरा को प्राय: सभी लेखकों / आलोचकों ने 'प्रेम दीवानी' कहकर अपनी राह आसान बना ली। लेकिन उनकी रचनात्मकता का सही मूल्यांकन न हो सका। श्रोत्रिय ने मीरा पर लंबा लेख लिखा है और बहुत सारी नई बातें उनके लेख में मीरा को उनका सही मुकाम दिलाने का प्रयास करती हैं। वे एक जगह लिखते हैं, ''हाथ में तंबूरा, दिल में प्रेम और कण्ठ में गीत लिए, मीरा चलती-फिरती आग की लपट थी।''

श्रोत्रिय का मैथिलीशरण गुप्त पर लंबा लेख है। गुप्त पर लंबा लेख लिखने की जरूरत उन्हें कई कारणों से महसूस हुई। हमारे समय की आलोचना ने मैथिलीशरण गुप्त को खारिज करने का खूब प्रयास किया। लेकिन श्रोत्रिय, गुप्त की रचनात्मकता को पुनर्मूल्यांकित करते समय गहरी संवेदना से काम लेते हैं।

निराला के कविकर्म पर श्रोत्रिय का चिंतन अधिक प्रखर नजर आता है। वे निराला की- 'राम की शक्ति पूजा' के बहाने, निराला की समग्रता को टटोलते हैं। निराला का रचना संसार न सिर्फ व्यापक है, बड़ा भी है। श्रोत्रिय लिखते भी हैं,

"कविता बड़ी तब होती है, जब उसका संसार बड़ा होता है।"

वे अपनी आलोचना दृष्टि से इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परंपरा का अर्थ, अतीत में धूनी रमाना नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति के उच्च संस्कारों को आलोचना के जरिए जीवित रखना भी है। अपने तमाम लेखों में उन्होंने यही किया है।

श्रोत्रिय कई बार संकेत रूप में तथा कई बार स्पष्ट अंदाज में आलोचना के उस सिद्धांत की ओर ध्यान दिलाते हैं जो एक रेखीय है। श्रोत्रिय इस आधे सच के खतरनाक परतुओं पर उंगली रखते हैं। और पाठकों के सामने इस अंदाज से रू-ब-रू होते हैं कि आलोचना जैसी शुष्क विधा में भी पाठक से दोस्ताना बना लेते हैं। शायद यही वजह है कि अपने समय के दो बेहद जटिल कवि-मुक्तिबोध और अज्ञेय की रचनात्मकता को बड़े संतुलित और सधे हुए ढंग से विवेचित करते हैं। यह सलाहियत उनमें ही है कि वे दो भिन्न किनारों पर खड़े कवियों को, उनकी जमीन पर जाकर, उनकी रचना/ कविता की गंध को महसूस कराते हैं। मुक्तिबोध के विषय में उनके लेख की बिल्कुल आखरी पंक्ति, एक संवेदनशील आलोचक की गहरी अनुभूति का अहसास कराती है। "उनकी कविता को पढ़कर अपने को ही दुबारा सम्पूर्णता में पाने का अहसास होता है।"

बाबा नागार्जुन पर उनका लेख एक फक्कड़ कवि के फक्कड़पन के साथ जुगलबंदी की तरह है। वे लिखते हैं, "बाबा कोरे जनकवि नहीं थे, एक सर्जक-जन-पक्षधर थे।" वे जड़ आलोचना का विरोध करते हुए अपनी ठोस दलील देते हैं, "कविता पारखियों का बाबा पर आरोप भी है कि वे तात्कालिक घटनाओं, व्यक्तियों, उद्वेगों पर लिखते थे। उनकी कविताओं का कोई स्थाई मूल्य नहीं है।...लेकिन यही तो उनका निजीपन है। जो अपनेही बनाए क्लासिक फ्रेमिक को फाड़ता-तोड़ता बढ़ जाता है।...बाबा ने गहरी से गहरी और उथली से उथली कविताएं लिखी हैं, परंतु कहीं भी वे अनुपस्थित या आधे उपस्थित नहीं हैं।"

उनकी आलोचना में कोरे सिद्धांतवाद से टकराने की जिद साफ-साफ दिखाई देती है। शमशेर के एक वक्तव्य का हवाला देते हुए वे कहते हैं, "एक सांचा है, उस सांचे में आप फिट हो जाइए।" यानी श्रोत्रिय की आलोचना उस 'खांचों' की कैद से मुक्ति की आलोचना है।

धर्मवीर भारती पर लिखते वक्त वे स्पष्ट करते हैं कि भारती न शमशेर जैसे हैं न अज्ञेय जैसे। लेकिन वे यह भी कहते हैं कि भारती यदि शमशेर या अज्ञेय जैसे होते तो *कनुप्रिया* न लिख पाते। यह बहुत बड़ा विश्लेषण है जो श्रोत्रिय ने तीनों कवियों के विषय में किया है।

बेशक तुलसी और त्रिलोचन पर लंबे लेख हैं और नरेश मेहता पर सबसे छोटा। लेकिन नरेश मेहता उनके प्रिय कवि रहे हैं और उन्होंने नरेश मेहता पर कई किताबें भी संपादित की हैं। यह छोटा-सा लेख अपने घनत्व में बड़ा है, जो नरेश मेहता के व्यक्ति और रचनाकार दोनों की भूमिकाएं स्पष्ट करता है। श्रोत्रिय लिखते हैं, "नरेश मेहता जीवन और कविता में 'दो' नहीं लगते। इस नकली जमाने में उनका एक हो जाना ही जैसे कई लोगों के लिए विस्मय और अविश्वास का कारण था। इस युग में शब्द और कर्म किसी व्यक्ति में गुंथे मिल जाएं तो समझ लीजिए, हमने अलभ्य पा लिया।"

कवि त्रिलोचन पर दो लेख हैं। एक लेख लगभग संस्मरण है तो दूसरे में उनकी कविता पर विचार व्यक्त किए गए हैं। दोनों लेख बहुत 'शानदार' हैं। पहला लेख तो जैसे एक 'फकीर' कवि पर फकीराना अंदाज से लिखा गया है। कवि त्रिलोचन को जानने के लिए प्रभाकर श्रोत्रिय की निम्न पंक्तियां, एक कवि के बहुत सारे आयाम की तस्दीक प्रतीत होती हैं। वे लिखते हैं, "त्रिलोचन से आप संसार के कई कवियों और लेखकों पर चर्चा कर सकते हैं। परंतु तुलसी और निराला उन्हें बहुत प्रिय हैं। यों वे संस्कृत के शास्त्री हैं। पर 'लोक' में भी उनकी गहरी पैठ है। भाषा त्रिलोचन का प्रिय विषय है। वे कहीं न कहीं घूम फिरकर भाषा तक जरूर आ जाते हैं। वे सीधी राह चलने वाले पथिक हैं। उनमें कोई छल-छद्म और वक्रता नहीं।"

हम कह सकते हैं कि हिंदी कविता की दुनिया त्रिलोचन तक नहीं। उसके बाद हिंदी कविता के नए दरवाजे खुलते चले गए हैं। यह किताब तुलसी से त्रिलोचन तक है तो इसका यह मतलब नहीं कि इस पर सवालिया निशान लगाए जाएं। हर आलोचक की अपनी सीमाएं होती हैं और वह उन्हीं सीमाओं में अपना बेहतरीन देने की कोशिश करता है। किताब में यह कोशिश पूरी ईमानदारी से व्यक्त हुई है। यहां, आलोचना का परंपरा के प्रति लगाव तथा आधुनिक दृष्टिबोध तो जाहिर होता ही है, आलोचना के नए अनुभवों से भी गहरा जुड़ाव महसूस होता है।

—ज्ञान प्रकाश विवेक

अस्तित्व के वास्तव से परिचित कराती कविताएं

क्या-क्या टूट गया भीतर : मनोज कुमार शर्मा; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110051; पृष्ठ : 104; मूल्य : 150 रुपये।

शकुंतला स्मृतिजाल : नमिता गोखले; अनुवादक : शुचिता मीतल; पेंगुइन बुक्स भारत; मूल्य : 175 रुपये।

मनोज कुमार शर्मा की कविताएं आगामी कविता की ऐसी दस्तकें हैं जिनकी नादमयता में हम लोक भाषा की महीन किंतु अविच्छिन्न उपस्थिति देख सकते हैं। असल में उदारीकरण और विश्व बाजार के इस काल खण्ड में भाषा की घोर संप्रेष्यता अनिवार्य है। और हिंदी जब-जब निकटस्थ लोक भाषा का सम्पुट लेती है तब-तब वह अपने किताबीपन से मुक्ति पाकर ज्यादा मुक्त समाज के लिए व्यापक और उदार रूप में आकृतिवान हो उठती है। काव्य रसिकों के लिए ठेठ राजस्थानी विन्यास की ये हिंदी कविताएं एक नए शैल्पिक आग्रह की कविताएं भी लग सकती हैं किंतु भाषिक बुनावट संबंधी कोई भी पड़ताल स्पष्ट कर देगी कि यह रूपगत निर्मिति लोक तात्विक संस्पर्श से उभरी है।

क्या-क्या टूट गया भीतर की कविताओं के विषय बेहद परिचित विषय हैं। ज्यादातर कविताओं में आज के संदर्भ साफ-साफ उभरते हैं, खासतौर पर वे विषय जो एक नागरिक के रूप में भी हमें बेचैन करते हैं और एक भोक्ता के रूप में त्रासदी की चुभन को हमारे हर आचरण से जोड़ देते हैं :

झेलम, तुम्हारा ये उफन-उफन पड़ना
मुझे बताओ तो जरा
ये बर्फ से जुदाई का किस्सा है
या
उसकी जकड़न से आजादी की उमंग

इन पंक्तियों से हम उस परिस्थिति से पुनर्परिचित होते हैं जो आजकल हमारे मनोलोक में सैकड़ों प्रश्न उभारती है और हम उस निरुतर स्थिति को झेलने के लिए विवश हैं। जो अन्य मामलों के वैश्विक अनुभव की तरह ही हमारा अपना हिस्सा हैं। निजता के सुखमय संसार में विश्व किस रूप में पसर पड़ता है उसकी गाथा से चाहे हम परिचित न हो पाएं अनुभवजन्य त्रास से हम अपनी तमाम सदाशयता में ग्रस्त हैं। मनोज शर्मा की 'परिवार', 'अवसाद' तथा 'स्वतंत्रता की सत्तावनवीं वर्षगांठ' जैसी कविताएं उस साक्षात का क्रूर और निर्मम अहसास कराती हैं जिसने हमें घेर रखा है। एक निपट कवि के तरह सादृश्यों के बहाने अपने अंतरमर्म को व्यक्त करने की परंपरा से मनोज कुमार शर्मा हटे नहीं हैं और इसी विन्यास में वह सत्य छिपा है जिसे हमने लोक संसिक्त के रूप में आरंभ में विन्यास संबंधी चर्चा में बलपूर्वक उनका एक वैशिष्ट्य घोषित किया है।

'शून्य' कविता को लें तो यह केवल अंक जोड़ने से दस गुना होने वाला गणितीय फार्मूला नहीं है अपितु अपनी बेचारगी के यथार्थानुभव से खुद को मुक्त करने की बेजोड़ कोशिश का हिस्सा है, हिस्सा इसलिए कि गुणात्मक विस्तार के लिए क्षेत्र नहीं, दिक् का बिन्दुभर पड़ाव भी महासागर के समान है।

मनोज शर्मा की छोटी-छोटी चिंताओं का यह आवेगपूर्ण बखान वैश्विक स्तर पर आदमी की असहाय स्थिति का ही बखान है। शायद एक अच्छी कविता का लक्ष्य भी यही है। 'गणित' शीर्षक छोटी-सी कविता में एक अविष्कार की तरह उभरता है :

हर चीज में हिसाब / रिश्तों में भी

एक ऐसा अहसास है जिसकी अर्थव्याप्ति दूर-दूर तक इस नई प्रताड़ना की अनुगूंज छोड़ती है जैसे वह अब हमारी अवश्यभावी नियति हो।

संवाद शैली में लिखी अनेक कविताएं हमारे संपूर्ण अस्तित्व या कहें अस्तित्व के वास्तव से परिचित कराती हैं। 'हल्का-फुल्का' कविता में एक निजतापूर्ण अनुभव हमारे समग्र प्रजातांत्रिक समानतावाची झूठ को सामने रख उस सत्य की प्रतीति कराता है कि हमारा अभिशाप अगर कुछ है तो वह हमारी आर्थिक पराभवता। साथ ही साथ विज्ञापनों की मोहक, सपनीली दुनिया का झूठ जो इन पंक्तियों में आकृतिवान हो उठता है-

साड़ी की दुकान का सैल्समैन
पत्नी से अतिप्रिय बोलता है
जेब को कसकर भींचे मेरा खून खौलता है।

स्मरण रहे यह पद्य वित्त सुखी परिवारों का अनुभव है जो सुखी हैं तो इसलिए कि अपनी आर्थिक परिसीमाओं को पहचानते हैं। मनोज कुमार शर्मा की कविताओं के बहाने आसानी से हिंदी की आज की कविता पर बातचीत की जा सकती है। यहां हमारा उद्देश्य कोई तुलना करना या तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करना नहीं है अपितु सामान्य रूप से आज की युवा कविता में जो क्षोभ, गुस्सा अथवा असहमति की मुद्रा निरंतर कठोर से कठोर रूप में उभरकर सामने आती है वह एक तरह से युवा सृजनात्मक व्यवहार के सामान्य सिद्धांत के अंतर्गत व्यक्त होने वाला भाव तो है किंतु वह समकालीन जटिलता के संबोधी स्वर का प्राकट्य भी है। हमारे तत्कालीन बोध में लक्षित क्षोभ एकार्थी नहीं है। वह तत्काल के प्रति विग्रह से भरा हुआ तो है, वह परंपरा से भी अपनी असहमति व्यक्त करता प्रतीत होता है। मनोज शर्मा के पास जो भाषा है वह आकस्मिक-सी नहीं है बल्कि वह धीरे-धीरे किसी उफनती हुई बाढ़ ग्रस्त नदी की वास्तविकता की तरह है।

मनोज कुमार शर्मा ने हिंदी कविता के पारम्परिक वितान पर भी जाने अनजाने आक्रमण किया है। हिंदी के पुराने छंद दोहे को लेकर इधर सरगर्मी है। दोहे का उत्कृष्ट इतिहास की वस्तु है। उच्छिष्ट हमारे वर्तमान में पसरा हुआ है। ऐसे समय में दोहे छोड़ व्यंग्य के लिए श्री शर्मा ने अढ़ाये प्रयोग को अपने वस्तुगत व कलागत रूपों में जीवित किया है। भारत भूषण अग्रवाल के तुक्तक तथा इसी के समानुरूप अन्य प्रयोग याद दिलाते हैं कि भारतीय काव्य परंपरा में 'पैरोडी' किस्म की अर्थवान क्षमता मनोज कुमार शर्मा के 'अढ़ायें' में है। एकदम राजस्थानी चाशनी में डूबे ये अढ़ाये कविता में व्यंग्य के सहज काव्यात्मक प्रयोग हैं बनिस्पत मंचीय अकुंशहीन चुटकुले बाजी के उन प्रयोगों के जो बोधात्मक स्तर पर अरुचि पैदा करते हैं।

मनोज कुमार शर्मा के अढ़ाये एकदम मौलिक हैं साथ ही साथ इस तथ्य के भी प्रमाण हैं कि लोक संपन्नता के ये प्रयोग हिंदी की व्याकरणगत लोक संपन्नता के प्रमाण हैं।

पार्वत्य कथा : शकुंतला

पेंगुइन बुक्स की हिंदी शृंखला के अंतर्गत भारतीय अंग्रेजी की सुविख्यात लेखिका नमिता गोखले का *शकुंतला स्मृति जाल* उपन्यास कई अर्थों में नया है। न सिर्फ वह सद्य प्रकाशित कृति के कारण नया है, न अंग्रेजी के प्रतिष्ठित प्रकाशन समूह द्वारा हिंदी में प्रकाशित ग्रंथों की आरंभिक कड़ी का प्रकाशन होने के कारण नया है, न इस कारण कि वह अंग्रेजी से पहले हिंदी में प्रकाशित हुआ है इसीलिए नया कहा जायेगा बल्कि उसके नये होने का अगर कोई एकमात्र कारण है तो वह है उसका वस्तु विन्यास। नमिता गोखले ने अपनी अद्‌भुत भाषा में रचकर भारत के दिक् और काल के जटिल भावाधार को तदनुरूप वाणी दी है। वह इसलिए भी नया है कि भारत के अंतरंग को भारतीय भाषा में ही संपूर्णता से अभिव्यक्त किया जा सकता है। भारत का दिक् और काल बहुत जटिल है। उसे भारतेत्तर भाषाओं में अभासित करने के असंख्य प्रयत्न हुए हैं। परंतु अंग्रेजी में इतिहास, मिथ और निजंधरी कथाओं के गल्पात्मक रसायन से शायद नमिता गोखले ही पहली कथाकार हैं जिन्होंने उसे रचा है। ध्यान रहे कि मूलरूप में अंग्रेजी में लिखे उपन्यास का हिंदी रूपांतर शुचिता मीतल ने किया है किंतु हिंदी में उपलब्ध यह रूपांतर भाष्य या अनुवाद की प्रतीति नहीं देता। इसीलिए कहना पड़ रहा है कि भारत की जटिलता का संवहन और उसका संप्रेषण भारतीय भाषा में ही संभव है।

अंग्रेजी भाषा में भारत केंदित लेखन की अलग ही परंपरा है। भारतीय अंग्रेजी लेखकों यथा माइकेल मधुसूदन दत्त, श्री अरविंद, मुल्कराज आनंद, राजा राव, आर. के. नारायण, रामानुजम, पी.लाल, सलमान रुश्दी ने अपनी एक अलग परंपरा कायम की है- नमिता गोखले उसी परंपरा में सक्रिय हैं।मोटे तौर पर माना जा सकता है कि भारतीय अंग्रेजी लेखकों की मुख्य चिंता भारत संबंधी विस्मय को व्यक्त करना नहीं है। परंतु विस्मय में डालने वाले भारत का अतीत और भारत ज्ञान अध्येताओं, जिज्ञासुओं और सर्जकों को उस दृष्टि से अवश्य परिचित कराता है जिससे भारत और भारतीय के अंतरंग से साक्षात संभव होता है।

भारतीय अंग्रेजी लेखकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से भारतीयता का भाष्य अपनी कृतियों द्वारा किया है। भारत की खोज का यह प्रयत्न हमें अतीत के विलक्षण ज्ञान से दो-चार होने की प्रेरणा देता है। हम आसानी से समझ जाते हैं कि यह दिव्य या अपौरुषेय कहा जाने वाला ज्ञान मानव रचित है और यह मनुष्य को ही आवाक् कर सृजेता के मानवेतर होने का भाव जगाता है।

वास्तव में ज्ञान का ऐसा सौष्ठवाची रूप एक ऐसे एकांत का सृजन है जिसमें काल, समूह इतिहास आदि सब शामिल हैं और उसी को अपने गल्पाख्यान में नमिता गोखले वाणी देती हैं। *शकुंतला* इसलिए गल्पाख्यान है कि इसमें किसी काल खंड की तारतम्य वाली, कार्य-कारण शृंखला से जुड़ी तर्कपूर्ण कहानी दीखने वाली वृत्तांतपूर्ण गाथा का अनुगमन नहीं है। जिन प्रश्नों से 'शकुंतला' के पात्र जूझते हैं वे एक ओर शास्त्राधारी अनुभवों से उपजे हैं तो दूसरे नितांत सामाजिक कारणों से रूपाकृत हुए हैं। असल में यह हमारे लोक स्वभाव की स्थिति से जुड़े हैं और फिर स्थूल रूप से भारत से जुड़े हुए हैं। लोक की मनोचेतना का संसार पर्याप्त उदार होता है। वह अपने आचरण में भी उदार रहता है। तथा उसका सातत्य हमारी स्मृति में आचरणों संबंधी अनुशासन को बनाये रखने तथा लोक जीवन के बहुवर्णी अनुराग से जोड़े रखने का काम भी करता है।

'शकुंतला' एक पार्वत्य कथा है। उपन्यास के आरंभिक हिस्से में हम उसके परिजनों, उसके सामाजिक परिवेश से परिचित होते हैं। यह केंद्रीय चरित्र संयोग से प्राचीन वाङ्मय की अनिंद्य सुंदरी, दिव्य चरित्र, दुष्यंत प्रिया की स्मृति दिलाता है। दोनों शकुंतलाएं भिन्न हैं किंतु यह पार्वत्य कथा अपने सुविज्ञ भाई के मार्फत प्राचीन शकुंतला के बारे में सुनती है।

उपन्यास के कथाधार में यद्यपि सूचनात्मक रूप से दोनों शकुंतलाएं हैं किंतु यहां वर्जित शकुंतला भी एक ऐसे चरित्र के रूप में उभरती है जो काल के अन्यान्य सीमांतों की यात्रा करती है। यह शकुंतला विवाहोपरांत अपने पति द्वारा एक सेविका घर में ले आने से विचित्र संदेह से भर जाती है। संदेह के इसी घेरे में वह अपने मनोलोक में अनेक अन्य चीजों की उपस्थित पाती है। यहीं से पार्वत्य कन्या शकुंतला का दूसरा रूप उभरने लगता। कथा के गोपन में मिथकीय शकुंतला और औपन्यासिक चरित्र शकुंतला दोनों केवल सांकेतिक रूप से मिले होते हैं किंतु औपन्यासिक चरित्र शकुंतला इतिहास के एक ऐसे कालखंड से गुजरती हैं जहां एक बड़े भारत के भीतर बहुत से भारत मिले हुए हैं। साधु-संन्यासियों, जातिवादी क्रूरताओं, आडंबरों और पाखंडपूर्ण आचरण के अनेक भारत एक साथ उपस्थित हैं। वे विस्मयकारी नहीं हैं। विस्मयकारी है शकुंतला जो एक भारतेतर विधर्मी, व्यवसायी के साथ रमण करती हुई काशी तक जलमार्ग से पहुंचती है।

यह कालखंड नमिता गोखले के कथापटल का ऐसा चित्र है जो बेहद सजीव, मानवीय और संवेदनशील प्रश्नों से भरा हुआ है। उस काल के व्यावसायिक केंद्र, भारतीय धर्म की स्वीकृत मर्यादाएं, विधर्मी व्यवसायियों का अलगाव, खान-पान की स्वच्छंदता आदि कुछ ऐसे चित्र हैं जो प्राचीन काशी को जाग्रत रूप में सचल रखते हैं। शकुंलता का अंत एक तरह से ऐसा अवरोहण है जो 'स्त्री' प्रश्न को गहरे अर्थों से भरता है।

शकुंतला के माध्यम से नमिता गोखले समय और परंपराओं के लंबे गलियारों की यात्रा कराती हैं। वे भारत के तांत्विक विन्यास से भी विग्रहरत हैं और भारत के विद्यमान स्वरूप में वैश्विक घात-प्रतिघातों से भी। और इस विग्रह की असामान्य स्थिति किसी किस्म का विचलन उपस्थित नहीं करती अपितु वह भारत के सातत्य के प्रतीक के रूप में ही उस तनाव का उल्लेख करती है। जो स्त्री-पुरुष, कुलीन-अकुलीन, देशी-विधर्मी आदि न मिलने वाले ध्रुवांतों के रूप में, सहज ढंग से व्यक्त होता है। जैसा हमने कहा है भारत एक अत्यंत जटिल-सी चीज है, भारत भावाधार की यही जटिलता है जो अनेक सरल समीकरणों से बना हुआ है। पश्चिम के लोग इससे हतप्रभ होते हैं, भारत के लोग इसे प्रारब्ध के रूप में स्वीकार करते हैं। किंतु विवेचक और विश्लेषक इसके भीतर प्रवेश कर इसे इतिहास का प्रभाव घोषित करते हैं, जबकि तमाम तरह की असामान्यताएं वास्तव में विविधताओं के कारण उत्पन्न होती हैं। विविधताएं जो विद्यमान हैं परंतु कभी-कभी विलुप्त होकर मनोलोक के भीतरी प्रकोष्टों में प्रदीप्त रहती हैं और व्यक्तियों यथा समुदायों को प्रभावित करती रहती हैं। असल में शकुंतला के द्वारा नमिता गोखले उस अनिर्वच का बखान करती हैं जो भारत है और सदैव से भारत के रूप में भारतीय अस्मिता के साथ गुंथा रहता है। नमिता गोखले ने खुले रूप में भारत के अतीत को सामने रखा है। उन वर्जनाओं का चित्रण भी किया है जो हमारे सांस्कृतिक अनुभव का हिस्सा हैं और अनेक प्रकार की युक्तियों का परिदर्शन भी दिया है जिनसे भारत होने का भाव जुड़ा हुआ है।

— **गंगा प्रसाद विमल**

नागर परिवेश के मध्यमवर्गीय परिवार

सच तो यह है : उषा महाजन; कल्याणी शिक्षा परिषद, 3320-21, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-10002; पृष्ठ : 128; मूल्य : 150 रुपये।

उषा महाजन के नए कहानी संग्रह *सच तो यह है* में नागर जीवन के मध्यवर्गीय परिवार की आंतरिक संरचना के स्तर पर संवेदना और संबंधों में जो नित नए-नए मोड़ बन रहे हैं, को उकेरने की कोशिश की गई है। बदलते हुए समय और समाज में स्त्री किस तरह अपनी परिस्थितियों को बदलने के लिए तड़फड़ा रही है और दूसरी तरफ मर्द किस तरह नए-नए शिकंजों में कसकर उसे 'यूज' करने में लगा है, इसका अक्स इन कहानियों में दिखता है।

उषा जी की कहानियां हमें स्त्री जीवन की गहराइयों में ले जाती हैं और वहां स्त्री के मन में चल रहे अंतर्द्वंद्व को सामने लाती हैं। सबके साथ होते हुए भी जिस तरह से 'अकेलेपन' का शिकार औरत होती है, उस 'अकेलेपन' के पीछे के सूत्रों को ये कहानियां उघाड़ती हैं। इन कहानियों की प्राय: स्त्रियां तन और मन दोनों स्तर पर विभिन्न आयामों में युद्धरत हैं। संग्रह की कुल सत्रह कहानियों में से लगभग पंद्रह कहानियों के केंद्र में स्त्री के सुख-दु:ख उनकी पराधीनता और मुक्ति के संघर्ष हैं। इन कहानियों में गौर करने की चीज है कि औरतें समझौतापरस्त नहीं हैं। वे लड़ती हैं, अड़ती हैं और आत्मनिर्भर होने का प्रयास करती हैं। इन कहानियों की औरतें विकल्प तलाशती दिखाई देती हैं। 'मुक्ति' की बुआ ससुराल में त्रस्त होने और भाई के घर में स्थायी वास न मिलने की स्वाभाविक स्थिति में अपनी जिम्मेदारियों के निर्वाह के बाद, बिना किसी को बताये चुपके से 'संध्या होम' में शिफ्ट कर जाती है। यह उसका स्वाभिमान की रक्षा

में चुना गया विकल्प है।

वहीं 'निर्णय' की मां अपने एकमात्र पुत्र से उपेक्षित, निर्वासित और एकाकी जीवन के विरुद्ध पुत्र के विरोध के बावजूद ढलती उम्र में विवाह का निर्णय लेती है। मां का यह निर्णय, स्त्री का क्रांतिकारी चुनाव है। उसी तरह 'सच तो यह है' एक निम्नवर्गीय स्त्री रुनू की कहानी है, जिसका जाहिल पति हरदम उस पर अत्याचार करता है। पर रुनू भी उसके अत्याचारों के आगे झुकती नहीं है, उसके पास बेहतर भविष्य का सपना है, जिसे वह लाख कष्टों के बावजूद पाना चाहती है। पति के लाख अत्याचारों के बावजूद अपने बचाये पैसे वह उसे नहीं देती, बल्कि इसके लिए वह हर कीमत चुकाने के लिए तैयार है। 'बेटी' कहानी की निक्की का भी प्रतिरोध का अपना तरीका है- वह ससुराल के अत्याचार और वहां से भगाये जाने के बाद मां के घर लगातार उदास रहती है। मगर जब उसे 'बेटी' होती है तो वह 'खुश' हो जाती है। यह गहरे दर्द से पैदा हुई सही चेतना है। इन कहानियों की औरतें अपनी स्वायतत्ता के लिए पढ़ती हैं, कमाती हैं और आत्मनिर्भर होने की कोशिश करती हैं। पर यह पुरुषवादी व्यवस्था इतनी निर्मम और शातिर है कि उसे बंधनों से मुक्त नहीं होने देती। एक पुरुष कई-कई औरतें एक साथ रख सकता है, मगर औरत की हल्की-सी 'आह' भी उसे बर्दाश्त नहीं होती।

कहानी 'वह' की स्त्री नायिका देह और मन दोनों से अतृप्त है। वह प्यार और सहचर्य के अभाव से पीड़ित है। उसके इस अभाव को उसका परिवार भौतिक समृद्धि से भरना चाहता है तो दूसरी तरफ पुरुष डाक्टर उसकी भावनाओं और संवेदनाओं को नहीं देखता, उसे तो सिर्फ पैसे की भूख है। 'औकात' की पढ़ी-लिखी और आत्मनिर्भर लड़की प्रियंका का हल्का-सा भी खुलापन, उसका होने वाला मंगेतर बर्दाश्त नहीं कर पाता, जबकि वह खुद कई लड़कियों के साथ रातें गुजार चुका है और उससे 'शादी' सिर्फ इस कारण नहीं कर पाया है कि वह उसकी मां की पसंद नहीं थी। 'मर्द' की कमीनगी 'लिफ्ट' और 'मुआयना' जैसी कहानियों में भी दिखती है। 'मुआयना' का पुरुष अपनी औरत को पीटते-पीटते मर जाता है। वह उसकी मार से गूंगी हो चुकी है और जब बाद में नारी संरक्षण समिति उसकी डाक्टरी जांच कराती है तो यह भी पता चलता है कि बरसों से शादीशुदा होने के बावजूद वह शारीरिक रूप से कुंवारी है- उसका कौमार्य तो भंग ही नहीं हुआ।

'पुल' में विंध्या का पति बिशन अपने कैरियर और व्यवसाय में सफलता तक पहुंचने के लिए उसे 'पुल' के रूप में इस्तेमाल करता है। दूसरी तरफ सोमेश, जो कि उसे भोग रहा है, उससे कभी कोई जुड़ाव महसूस नहीं करता। उसके लिए विंध्या सिर्फ 'सेक्स आइटम' है। विंध्या की भावनाओं और अस्मिता का ख्याल दोनों को नहीं है। इसी तरह एक कहानी है 'रेत का महल'। इस कहानी में एक स्त्री अपने पति और पुत्र दोनों से लांछित और आहत होती है। जिस पुत्र के लिए वह जीवन की हर खुशी बलिदान कर देती है, अपनी जरूरतों को स्थगित कर उसकी जरूरतों और सम्मान का ख्याल करती है, वही पुत्र उसे अंततः गलत ठहराता है। 'वह एक लड़की' की मृदुला अपने बाप की सामंती सोच और पिछड़े व्यवहार के दुश्चक्र में 'पागल' हो जाती है। 'उस पार' में सुखेसर विलियम से अपने दुर्व्यवहार का बदला उसकी कमसिन बेटी से बलात्कार कर चुकाता है।

'अहिल्या यह भी तो' और 'एंटिक' जैसी कहानियां पुरानी पीढ़ी की स्त्री और नयी पीढ़ी की स्त्री के जीवन शैली के फर्क को उजागर करती हैं। नयी पीढ़ी की स्त्री अपने समय की नयी परिस्थितियों और प्रवृत्तियों से प्रभावित है। मानवीय भावनाओं और रिश्तों की बुनियाद कमजोर हुई है। ये कहानियां नए दौर के स्त्री-पुरुष संबंधों के अंतर्द्वंद्व पर भी प्रकाश डालती हैं। तो 'अब्बू जी' और 'दुश्चक्र' जैसी कहानियां, एक मध्यमवर्गीय परिवार किस तरह अपने सगेपन के भीतर बेगानेपन के दुश्चक्र में पड़ता जा रहा है, को स्पष्ट करती हैं। ये कहानियां नयी पीढ़ी के अर्थलालची और संवेदनहीन होने का सबूत देती हैं तो दूसरी तरफ बुजुर्गों का अपने ही परिवार में बेगाने हो जाने की ट्रेजडी को भी रेखांकित करती हैं। पर कहानियां कहीं-कहीं अति नाटकीयता और कथाकार के 'बहुत बताने' के लोभ में कमजोर हो गई हैं। कथा भाषा को संवेदनपूर्ण, सूत्रमयी और प्रवाहपूर्ण बनाने की बहुत गुंजाइशें हैं।

–हरे प्रकाश उपाध्याय

अनछुई खुशबू से महकती रचनाएं

खातून (कहानी-संग्रह) : सुमन शर्मा; अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, नई दिल्ली; मूल्य : 55 रुपये।

पचपन साल से अधिक उम्र में कोई अपनी पहली पुस्तक प्रकाशित कराए तो उसे क्या कहा जाएगा- अपनी रचनाशीलता पर आत्मविश्वास की कमी या बस लापरवाही? सुमन शर्मा की इस किताब पर दोनों बातें लागू होती हैं। किंतु इसे पढ़ने के बाद 'देर आयद दुरुस्त आयद' कहावत को अवश्य उद्धृत किया जा सकता है। एक बात मैं शुरू में स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यह पुस्तक मैंने समीक्षक की दृष्टि से नहीं बल्कि एक पाठक की हैसियत से पढ़ी। पुस्तक पढ़ लेने के बाद घंटों तक इसके पात्र दिल-दिमाग पर छाए रहे और कई सवालों के जवाब मांगते रहे। अपने आस-पास के जीवन से उठाए गए जीते-जागते पात्रों, खासकर निर्धन और वंचित वर्ग की कामकाजी लड़कियों व महिलाओं के मन में पैठकर उनके उभरे और कुचले गए सपनों की सच्ची तस्वीर खींचते हुए सुमन शर्मा ने ऐसे लोगों की आशाओं, आकांक्षाओं व विफलताओं और हताशाओं को स्वर दिया है जो आज की कथा-कहानियों की शिल्पगत सजावटों के दौर में बहुत कम सामने आ पाते हैं।

खातून, पोचिया, बीजी, संध्या जैसी अपनी नियति को ही अपनी संपत्ति मानकर जी रही महिलाओं की आंखिन देखी और मर्म से महसूस की गई आंतरिक-बाहरी परिस्थितियों का जैसा बेबाक और सहज वर्णन लेखिका ने किया है उससे एक बात साफ झलकती है कि कोई महिला लेखिका ही इस शिद्दत और हार्दिकता के साथ यह सब बता सकती थी।

सुमन शर्मा का संवेदनशील मन इन पात्रों की आशा-निराशा का मात्र साक्षी नहीं रहा, बल्कि उनके सुख-दुख में सक्रिय रूप से भागीदार रहा है। शायद यही कारण है कि इन कहानियों या रेखाचित्रों की नायिकाएं साहित्य के अनेक पात्रों की तरह सीधे मन से जा जुड़ती हैं। दिल्ली की एक सरकारी बस्ती में रहने वाली एक अधपगली लड़की पोचिया की कहानी मानवीय स्वार्थपरता और सामूहिक दया-ममता को एक साथ सामने लाती है। लेखिका सहज शब्दों में पोचिया के चरित्र के केंद्रीय गुण को यों व्यक्त करती है- "पोचिया का वही मुस्कुराता चेहरा रहा जो ज्यादा अच्छे-बुरे की

पहचान का आदी नहीं था। उसके चेहरे पर एक समभाव रहता था। लियोनार्दो दि विंची की *मोनालीसा की स्माइल* की तरह रहस्यमय मुस्कान रहती थी उसके चेहरे पर। जैसे 'मैं समझती हूं', 'सब ठीक है' या 'क्या फर्क पड़ता है' इसी तरह की सहज और निश्छल अभिव्यक्ति अन्य पात्र-पात्राओं के चरित्र को पढ़ते हुए देखी जा सकती है।

पुस्तक में अधिकांश संस्मरण महिला पात्रों पर केंद्रित हैं किंतु एक संरस्मरण पुरुष पात्र पर केंद्रित है। 'दादा जी' में लेखिका ने अपने दादा के चरित्र के माध्यम से हिमाचल प्रदेश के सामाजिक और पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डाला है। इसे पढ़ते हुए आज से चार दशक पहले का हिमाचली परिवेश आंखों के सामने उभर आता है। पुस्तक में संरस्मरणात्मक और आत्मकथात्मक रेखाचित्रों और कथाओं के साथ-साथ बारह कविताएं भी संकलित हैं, जो गद्य रचनाओं के बीच-बीच में रखी गई हैं। ये कविताएं काव्य शैली की दृष्टि से उच्चकोटि की भले ही न हों, अन्य रचनाओं की भांति लेखिका की संवेदनशीलता और जीवन को बारीकी से समझने की कोशिश का एहसास जरूर कराती हैं। 'दर्द' कविता की ये पंक्तियां उल्लेखनीय हैं :

वे (दर्द) निकल भी नहीं सकते
क्योंकि वे अभिशप्त हैं
और जिनके शापों से शापित हैं
वे दूर बैठे हैं।

लेखिका की सामाजिक चेतना और पर्यावरण के प्रति चिंता उनकी दो कविताओं- 'असम की नदियां' और 'जंगल गुम कर दिया है' में देखी जा सकती है। विकास और भौतिक सुखों के नाम पर वनों की अंधाधुंध कटाई पर लेखिका की चिंता और पीड़ा को इन पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता है :

छोटी-सी मुट्ठी में बेहिसाब सिक्कों को
बंद करने की प्रवृत्ति
रात की चांदनी को निगल गई है।

'बुढ़ापा' और 'जीवन' इस संग्रह की अन्य उल्लेखनीय कविताएं हैं। इस आलेख के प्रारम्भ में पुस्तक के प्रकाशन में देरी को लेकर जिस लापरवाही की ओर संकेत किया गया है, वही उपेक्षा और उदासीनता इसके संपादन के संदर्भ में भी दिखाई देती है। किसी तरह अपनी रचनाओं को पुस्तक रूप देने की इच्छा से आगे बढ़कर इसे प्रभावी और आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने की चिंता भी होती तो यह बेहतर किताब बन सकती थी। रचनाओं को थोड़ा संवार कर और संपादित करके बेहतर रूप दिया जा सकता था।

— **सुभाष सेतिया**

कर्ण कथा का अवांतर पाठ

महारथी कर्ण (दो भागों में) : सुशील कुमार; कल्याणी शिक्षा परिषद, 3320-21 जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 पृष्ठ: (प्रथम भाग 400), (द्वितीय भाग 400); मूल्य : 400 रुपये (प्रत्येक खंड), 800 रुपये (दो खंड)।

महाभारत के पात्रों पर लिखना कोई नई बात नहीं। खास तौर पर महारथी कर्ण तो हमेशा से प्रिय चरित्र रहा है- साहित्यकारों का। सुशील कुमार इसी कड़ी में नया नाम हैं। आज जब हिंदी साहित्य में दलित विमर्श का भेड़ियाधसान मचा हुआ है तो कर्ण की याद आनी स्वाभाविक ही है। कर्ण का चरित्र *महाभारत* के महाआख्यान में भी कुछ ऐसा उभरकर सामने आता है कि वह इस पौराणिक कथा के मुख्य पात्रों की बराबरी में उभर जाता है- जैसे भीष्म, द्रोण, अर्जुन इत्यादि। उसकी कहानी आज के संदर्भ में और भी प्रासंगिक हो उठती है जब दलितों के अधिकार और हको-हुकूक की बात करने वाले कई स्वयंभू मठ कर्ण को अपनी जागीर बनाने पर आमादा हैं।

अभी हाल में किसी लेखक ने यह कहा कि भारत में अब महापुरुषों का भी कॉपीराइट होने लगा है। यह बात कहीं न कहीं कर्ण के साथ लागू होती है। उसके युग ने तो उसके साथ न्याय नहीं ही किया, किंतु क्या वर्तमान समय में हम कर्ण के चरित्र को सही अर्थों में समझने की कोशिश करते हैं? महारथी के अद्‌भुत चरित्र में राष्ट्रकवि दिनकर ने भी महाकाव्य लिखा। कहीं न कहीं सुशील कुमार इस मायने में चूक जाते हैं कि दो खंडों में करीबन सात-आठ सौ कागद कारे करने पर भी वह कर्ण के चरित्र को कोई नया आयाम, कोई नई भूमिका, कोई नया प्रसंग नहीं दे सके। उनका यह प्रयास महज पुनरावृत्ति लगता है। वैसे, महापुरुषों के चरित्र लेखन पर जितना प्रामाणिक कार्य मराठी में हुआ है, हिंदी साहित्य में उसे लेकर उतना ही टालू और घालमेल का रवैया अपनाया जाता रहा है। उदाहरण के लिए, शिवाजी सावंत की 'मृत्युंजय' पढ़ने के बाद 'महारथी कर्ण' का पाठ वैसा ही है जैसे रेशमी कपड़ों से निकलकर टाट का कुर्ता पहन लेना।

प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य तौर पर अवांतर कथाओं का ही आख्यान है। शायद लेखक यह समझ नहीं पाया है कि उसे कर्ण के चरित्र को उभारना है (एक दलित इतिहासपुरुष के तौर पर) या उस वक्त की स्त्रियों के दर्द को दिखाना है, या फिर तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था के अंतर्द्वंद्वों को उभारना है। लेखक का यही कन्फ्यूजन पाठक को एक ऐसे बियाबान में धकेल देता है जहां उसके पास कथाओं के गुल्म तो बहुत हैं लेकिन मार्मिकता का एक भी पुष्प नहीं। कर्ण दरअसल एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधि है जिसे सिर्फ उसके जन्म के आधार पर मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। कहने की बात भले हो- जन्मना जायते शूद्र: संस्कारात् द्विज उच्च्यते- व्यवहार में हमने क्या किया? शंबूक की गर्दन काटी, एकलव्य का अंगूठा मांगा और कर्ण को ताउम्र जलील किया। आज के संदर्भ में जब दलित हितों और अधिकारों की मांग करने वाले, उनका सच्चा हमदर्द बनने वाले कई स्वयंसेवी संगठन (?) अपना राग बजाने में लगे हैं, तो कर्ण के चरित्र को समझना और समझाना निहायत जरूरी है।

कर्ण राजपुत्र (कुलीन) होते हुए भी सारी उम्र सूतपुत्र (शूद्र) कहलाता रहा। सामंती व्यवस्था के उस दौर में अपने तमाम अधिकारों से वंचित रहा। किंतु उसका चरित्र प्रकर्ष पर तब आता है जब अपने जन्म का भेद जान लेने पर भी वह सिर्फ मित्रता के नाम पर दुर्योधन का साथ छोड़ने को राजी नहीं होता। सत्ता और धन को पैरों से ठोकर मारने का ऐसा उदाहरण बहुत कम ही देखने को मिलता है। असल में सुशील कुमार के इस उपन्यास में कई चीजों पर एक साथ ध्यान केंद्रित करने से कथा का प्रवाह अराजक हो गया है। वैसे भी दूसरे के.एम. मुंशी बनने के लोभ ने भी सुशील जी का खासा नुकसान किया है। बल्कि कहा जाए तो इसमें लेखक का कोई खास नुकसान नहीं, लेकिन कर्ण के चरित्र संबंधी भ्रम के फैलने का अधिक खतरा है।

पौराणिक कथा को वैज्ञानिक और युगीन बनाने के लिए खासे शोध और मेहनत की जरूरत होती है। मुंशी जी ने यह मेहनत की थी, इसीलिए महाभारत पर लिखी उनकी सात खंडों की पुस्तक श्रृंखला खासी अद्यतन प्रतीत होती है। सुशील कुमार के उपन्यास में भी यह कोशिश है, लेकिन खिचड़ी रूप में। पुराण के गल्प को वर्तमान साहित्य बना लेना आसान काम नहीं। इस प्रयास में *महारथी कर्ण* पौराणिक मिथक और वैज्ञानिक या फिर कहें युगीन सच का अजीब-सा घालमेल हो गया है।

लेखक ने कर्ण के मुख्य चरित्र को कहीं न कहीं नेपथ्य में धकेल दिया है। अवांतर कथाएं मुख्य भूमिका में दीखती हैं। चाहे वह शंख अचिरा का मामला हो या फिर वसुमति और दुर्योधन की रानी का। सुशील कुमार का शायद यह लोभ रहा होगा कि वह एक ही फलक पर स्त्री मुक्ति, सामंतवाद के खिलाफ संघर्ष, प्रेम और दलित विमर्श के तमाम चित्र उकेर सकेंगे। अफसोस इस बात का है कि इस प्रयास में अत्याचार बेचारे पाठक पर होता है। पृष्ठों की भारी-भरकम संख्या और अत्यधिक मूल्य निश्चय ही पाठकों को इस उपन्यास से दूर रखेंगे, खास तौर से तब जब उपन्यास में नया कुछ भी नहीं है, शिल्प, शैली या कथ्य की दृष्टि से।

–अभिषेक श्रीवास्तव

सामाजिक सरोकारों का प्रकाश स्तम्भ

अंधेरा (कहानी-संग्रह) : अखिलेश; राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, संस्करण-प्रथम 2006; पृष्ठ : 180; मूल्य : 200 रुपये।

'शापग्रस्त', 'आदमी नहीं टूटता' और 'मुक्ति' जैसे सफल कहानी-संग्रहों के बहुचर्चित यथार्थवादी कथाकार अखिलेश का नया कहानी संग्रह *अंधेरा* राजकमल प्रकाशन द्वारा हाल ही में प्रकाशित हुआ है। संग्रह में चार चर्चित लंबी कहानियों का चयन किया गया है। अपनी रचनाधर्मिता के प्रति बेहद जागरूक कथाकार अखिलेश की इन कहानियों को पढ़कर लगता है कि उनमें (अखिलेश) सार्वभौमिकता के साथ-साथ स्थानीयपन भी है। इन कहानियों में बड़ी तीखी यथार्थ चेतना झलकती है। ये कहानियां समकालीन ग्राम्य जीवन के सघन, यथार्थ ठोस प्रश्नों, समस्याओं, विडंबनाओं, परिस्थितियों और सामंतवादी विचारधारा को पाठक वर्ग के सामने खोलने में सक्षम हुई हैं।

इस संग्रह की कहानियों से गुजरते हुए लगता है कि अखिलेश ने उस जीवन को नजदीक से देखा एवं महसूस किया है जो इन कहानियों के पात्र जी रहे हैं। जिससे ये कहानियां जीवंत और सशक्त हो उठी हैं। जहां एक ओर हमारे राजनीतिज्ञ, शुभचिंतक या फिर कहूं- देश के ठेकेदार सामाजिक समानता, भाईचारा, दलित और शोषक वर्ग के बीच की खाई को मिटाने एवं ग्राम्य विकास की बातें करते हैं, वहीं दूसरी ओर अखिलेश की ये कहानियां समाज में फैली अनेक बुराइयों, दलितों पर शोषक-वर्ग के अत्याचारों, सामाजिक विषमताओं और विकास के नाम पर कागजी योजनाओं का कच्चा चिट्ठा खोलती हैं। ये कहानियां सहृदय पाठकों को एक छोटे-से सामाजिक परिवेश से धीरे-धीरे निकालकर यथार्थ धरातल पर विचार मुद्रा में लाकर खड़ा कर देती हैं।

संग्रह की प्रथम कहानी 'वजूद' में रामबदल जंगली वनस्पतियों के औषधीय गुणों का जानकार होते हुए भी उनका प्रयोग बैद जी के डर से नहीं कर पाता क्योंकि औषधियों पर केवल दबंग बैद जी का ही प्रभुत्व है। रामबदल के बदन के कपड़ों पर लिपटी औषधीय 'महक' का आना बैद जी को सहन नहीं होता, परिणामस्वरूप बैद जी बड़े ही क्रूर एवं अमानवीय ढंग से रामबदल को मौत के मुंह में धकेल देता है। आगे चलकर यही 'महक' रामबदल के पुत्र जय प्रकाश को मदहोश कर देती है। उसे अपने पिता की आहट सुनाई पड़ने लगती है। जिससे उसमें नई चेतना जाग्रत हो जाती है। वह कहना कुछ चाहता है, अनायास उसके मुंह से निकलता कुछ है। अचानक वह बैद महाराज को धक्का देकर गिरा देता है और उसकी नाक पर घुटने से वार करता हुआ चिल्लाता है। इस तरह 'वजूद' कहानी के चरमोत्कर्ष में अखिलेश ने शोषितों की युवा पीढ़ी को अपना वजूद याद दिलाते हुए शोषकों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने की प्रेरणा देने का कार्य तो किया ही है साथ ही सामाजिक असमानताओं को बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया है और सामंतवादी मानसिकता से शोषित लोगों की पीड़ा को हमारे सामने रखा है।

'यक्षगान' कहानी के अंतर्गत अखिलेश ने नाबालिग सरोज पांडेय की प्रेमकथा के माध्यम से गोरखनाथ जैसे राजनेताओं के चरित्र का भांडाफोड़ किया है। समकालीन भारतीय राजनीति में पुरुषों के हाथ का मोहरा बनी मीरा यादव जैसी कुटिल राजनीतिज्ञों के चरित्र, राजनीतिक अवसरवादी हथकंडों और राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण का चित्रण कहानीकार ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से किया है। पत्रकारों, संपादकों की चापलूसियों से मीडिया की वस्तुस्थिति को उजागर किया है। आज सरोज जैसी भोली-भाली नासमझ लड़कियों का दैहिक एवं मानसिक शोषण रोजमर्रा की घटना बन चुकी है। सरोज लेखक के नाम अपने पत्र में यही बताने की कोशिश करती है कि देह-शोषण में लिप्त प्रभावशाली लोगों की गिद्ध दृष्टि नित नया मांस खोजती है, जिसे लेखक अपनी कहानी के लिए ढूंढ पाने में असमर्थ है। ये कहानी नित समाचार-पत्रों की सुर्खियां बनी उन मासूम युवतियों की गाथा है जिनकी धमक कभी जम्मू सैक्स स्कैण्डल तो कभी देश की राजधानी में, तो कभी आर्थिक राजधानी मुंबई में कास्टिंग काउच के नाम पर, तो कभी देश के छोटे-बड़े शहरों में गूंजती है। कहानीकार की यह कहानी देश की कानून व्यवस्था एवं राजनीतिज्ञों के चरित्र को आईना दिखाने का बेहतर प्रयास है। अखिलेश की इस कहानी का कथानक काल्पनिक न होकर वास्तविकता के ज्यादा करीब है, जो बड़ी सहजता से हमारे सामने आया है।

संग्रह की तीसरी कहानी 'ग्रहण' में दलित बिपदराम की तुलना लेखक ने राष्ट्रपिता गांधी से करते हुए उसके जीवन में व्याप्त दीनता एवं अभावों की कहीं पर समानता की है तो कहीं अपनी इस दशा में गांधीजी से भी इक्कीस दिखाया है। जैसे बिपदराम कम खाने, कम कपड़ा पहनने, बीमारी के स्वयं ठीक होने, अपमानित होने तथा लाठी-डंडों की मार खाने में वह गांधीजी से भी ज्यादा दिखाई देता है। अर्थात् कहानी में बिपदराम का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। दरिद्र बिपदराम के साथ ईश्वर ने भी अन्याय ही किया है। उनके यहां जो पुत्र हुआ, उसके मल त्याग करने के लिए स्थान नहीं था। डाक्टर एक छोटे आपरेशन से उसके पेट में छिद्र करके मल त्याग करने का रास्ता खोलता है। इस विकृति के कारण गांव के लोग उसे 'पेटहगना' कहते हैं जिससे वह सामाजिक

अपमान तो झेलता ही है, एक ओर पुरोहित और उसके पुत्रों द्वारा तो दूसरी ओर स्कूल के अध्यापकों द्वारा भी बेवजह प्रताड़ित किया जाता है। एक दिन यही प्रताड़ना विकृत राजकुमार उर्फ पेटहगना के अंदर विद्रोह एवं चेतना का कारण बनती है। कहानी के अंत तक आते हुए वह पुरोहित एवं उसके पुत्रों से बदला लेता है। महीपाल बाबा की समाधि पर लेखक ने फूलों की संख्या बढ़ने से यह दर्शाया है कि दलित पेटहगना ने शोषण के विरुद्ध जो संघर्ष प्रारंभ किया है, उसमें वह अकेला नहीं है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने एकजुट होकर एक आंदोलन की ओर संकेत किया है।

संग्रह की अंतिम कहानी 'अंधेरा' यूनीवर्सिटी के छात्र प्रेमरंजन और रेहाना की प्रेम कहानी है। जब देश के बड़े शहर धार्मिक उन्माद और सांप्रदायिक दंगों की चपेट में सुलग रहे थे, उसी पृष्ठभूमि से अखिलेश ने अपनी कहानी में अलग-अलग संप्रदायों के नायक-नायिका के प्रेम को बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है। प्रेमरंजन और रेहाना कभी हिंदू कट्टरपंथियों की नजरों से तो कभी मुस्लिम कट्टरपंथियों की नजरों से छुपने की नई-नई तरकीबें सोचते हैं। अनेक कष्टों और बाधाओं को पार करते हुए अपने प्रेम को परवान चढ़ाते हैं। कहानी अच्छी बन पड़ी है, यह अच्छी मानसिकता के साथ लिखी गई प्रभावपूर्ण कहानी है।

अखिलेश की ये कहानियां कथानक और परिवेश की दृष्टि से परिपक्व हैं। इनमें कथाकार की अभिव्यक्ति और सृजनशीलता स्पष्ट झलकती है। कहानियों की विषयवस्तु सशक्त है जो परिपक्वता के चरम उत्कर्ष पर सामाजिक विडंबनाओं, दलित शोषण, राजनीतिक चालबाजियों, पत्रकारों और संपादकों के चरित्र को उजागर करती हुई पहुंचती है। इन कहानियों में आम-जीवन के तनावों, द्वंद्वात्मक स्थितियों का चित्रण है। इन कहानियों के पात्र सहृदय पाठकों का साधारणीकरण करने मे सक्षम हुए हैं। कहानीकार जिन उद्देश्यों को लेकर चला है, मुझे लगता है सफल हुआ है। कुछ हद तक यह पाठकों पर भी निर्भर करता है।

निष्कर्षत: ये कहानियां लंबी होते हुए भी अपनी रसात्मकता और विषय-विशेष के कारण पाठकों को बांधे रखती हैं। इन कहानियों में नया दृष्टिकोण, नई विचारधारा परिलक्षित होती है। इनमें व्यापक सामाजिक अनुभव, गहरी जीवन-दृष्टि और नया शिल्प सौंदर्य है। यह संग्रह उस प्रकाश स्तंभ के समान है जिसका उजाला लंबे समय तक समाज में व्याप्त अंधकार को चीरता रहेगा। सहज सरल अंदाज में लिखी गई इन कहानियों में क्षेत्रीय मुहावरों का प्रयोग कहानियों को गति देने के लिए बखूबी किया गया है। अत: ये कहानियां चेतना और जीवनबोध को जाग्रत करती हुई सामाजिक सरोकारों से लगालब हैं। इन कहानियों में अखिलेश अपने प्रति और सृजनशीलता के प्रति बेहद ईमानदार दिखाई देते हैं।

—रमेश प्रजापति

जीवन के समुंदर में अस्तित्व की खोज

अस्तित्व (उपन्यास): ज्ञान प्रकाश विवेक; प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ; पृष्ठ: 215; मूल्य : 150 रुपये

अस्तित्व उपन्यास सरयू की संघर्ष गाथा है। आरंभ में ही उसके पिता कहते हैं मछेरे का समुंदर से क्या रिश्ता है? समुंदर जीवन है और समुंदर ही उसके जीवन का सबसे बड़ा संकट। यह बात मछेरे पर ही नहीं, वरन मुख्य पात्र सरयू पर भी लागू होती है। वह अपने 'स्व' को लेकर सजग है; आधुनिक मध्यवर्गीय स्त्री की तरह एक ओर यह उसके व्यक्तित्व को गरिमा देता है, तो दूसरी ओर उसके संघर्ष में उलझने की वजह भी बनता है अन्यथा वह भी एक और औसत स्त्री ही बनती, जिसके साथ हमारा समाज जीने का आदी रहा है और जिसका निरूपण रघुवीर सहाय कुछ इन शब्दों में करते हैं: *पढ़िए गीता/ बनिए सीता, फिर इन सबमें लगा पलीता / किसी मूर्ख की हो परिणीता/ निज घर बार बसाइए।*

उपन्यास मोटे तौर पर दो हिस्सों में बंटा है। पहले हिस्से में भरा-पूरा मध्यवर्गीय परिवेश है, अपने विरोधाभास के साथ जिसमें रूमानियत है, यथार्थ भी; स्वप्न है, जागरण भी और त्याग है, तो छलावा भी। सरयू एक भावनात्मक दुनिया में जीती है। उसके साथी हैं- उसके पापा, अमर सर और विनय। करुणा-त्याग और समर्पण के साथ जीवन जीने की कोशिश में रत लोग। इस संसार का वर्णन करने में लेखक का मन खूब रमा है। भाषा तर्क के बजाय भावना में और दृश्य के बजाय दृश्य की कल्पना में उतरती है। इसका रूप लयात्मक हो जाता है। सर्दियां कुछ ऐसे गुजरती "सर्दियों में हम देर से निकलते और जब धूप निकलती तो उसको शाल की तरह लपेटते और चटाई की तरह बिछाते" तो सांझ का रूप कुछ इस तरह है, "सांझ जैसे रूमाल हो और दिनभर की सरगर्मियां उसमें बांधकर रख ली हो।"

इस संसार में एक दूसरा पक्ष भी है- मां कल्याणी, भाई समीर और अन्य लोग। ये समय के साथ चलने वाले व्यावहारिक लोग। जिंदगी की सुख-सुविधाओं को हासिल करने में जो अवसर है, रास्ता है, उसी को अपनाओ। इसलिए सरयू तो आउटडेटेड विषय 'हिंदी साहित्य' की छात्रा है, लेकिन बाजार में सिक्का तो मैनेजमेंट और टेक्नोलॉजी का चलता है। तो समीर भय्या दुनिया की रफ्तार से पीछे कैसे रहते। अकारण नहीं है कि सरयू उन्हें 'कलेण्डर' कहती है।

सरयू अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। आरंभ में ही यह आभास होता है कि वह इसमें अकेली पड़ने जा रही है। लेखक की पंक्तियों से ही जाहिर होता है, 'हर लड़ाई खुद लड़नी पड़ती है। जीवन कुरुक्षेत्र का मैदान नहीं है कि कोई कृष्ण हमारा साथ देने चला आएगा। शुरुआत में उसे पिता, अमर सर और सबसे महत्वपूर्ण विनय का साथ मिला। विनय के साथ भावनापूर्ण संबंध हैं, लेकिन यह किसी परिणाम तक पहुंचने से पहले टूट जाता है। प्रेम संबंधों की कोमलता को आर्थिक मजबूरियों ने झुलस दिया। विनय उस निम्न वर्ग का प्रतिनिधि बनकर उभरा है, जो सपने देखता है और उन्हें पूरा करने की जद्दोजहद भी करता है, लेकिन अंत में समर्पण कर देता है। उपन्यास में पाल कहता है, "जिंदगी पिछले दरवाजे से अकेलापन भरती है और सामने के दरवाजे से दुनियाभर के हंगामे।" विनय के जीवन में तो अकेलापन ही आता है, हंगामे तो बस क्षणिक ही रहते हैं। विनय का साथ छूट जाने के बाद सरयू पुन: एक द्वंद्व में है। ग़ालिब के शब्दों में कहें तो :

ईमां मुझे रोके है तो खींचे है मुझे कुफ्र
काबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे

उसके पास विवाह का प्रस्ताव है या कहें तो उच्च वर्ग का गेट पास। मध्यवर्गीय संस्कार उसे खींचते हैं, तो सुरक्षित भविष्य और अहं उसे उच्चवर्ग की ओर बढ़ने को ललकारता है। अंतत: वह सत्ताधारी वर्ग की उस दुनिया में प्रवेश कर ही तो जाती है, जिसे हावर्ड फास्ट ने 'इस्टेबलिशमेंट' का नाम दिया था- इस दुनिया में अतुल और उसके पापा की हुकूमत चलती है। उसके पास फैक्टरी है, महत्वाकांक्षा है और मकसद भी। कमी है तो

भावनाओं की। बाहर से वह सौम्य, शालीन और भरा-पूरा है लेकिन अंदर कुछ खाली है, जिसके होने से परिवार बनता है। खालीपन की भरपाई ये शान-शौकत और दिखाने से करते हैं। परिवार आधुनिकता और खुलेपन का दावा करता है लेकिन वास्तव में कर्मकाण्डीय जकड़न का शिकार है।

इस हिस्से में प्रवेश करते ही सरयू का रूप बदलता है, वह पाठक को अपरिचित-सी लगती है। लगता है कि पाल लेखक के नियंत्रण से बाहर निकल आया है। पहले हिस्से की संवेदनशील सरयू का अहं अब दंभ में बदलने लगता है। अब वह सोचती है, "कल-परसों तक मैं इन्हीं भीड़भाड़ वाली बसों में खड़ी होती थी। लोगों की अश्लील दृष्टि को महसूस करते हुए।" अपने अतीत के प्रति हेय दृष्टि, सरयू में आया यह परिवर्तन वास्तव में मध्यवर्गीय चरित्र का हिस्सा है। इनमें आदर्शवाद का पुट तो रहता है लेकिन वह मात्र भावना से प्रेरित होता है, बुद्धि से संचालित नहीं होता है। भावना का ज्वार जितनी तेजी से उफनता है, उतनी ही तेजी से शांत भी हो जाता है। सरयू फैक्टरी की मालिक बनते ही जिस सहजता से चीजों को सम्हालती है, वह असहज लगता है। पहले एक पक्षी तक का ख्याल रखने वाली सरयू अब दूसरों को अपने हित में इस्तेमाल करना भी सीख गई है।

पात्र ही नहीं, बल्कि भाषा में भी परिवर्तन आता है। उसका मिजाज बदलने लगता है। वह कोमलता को छोड़कर कठोरता पर और संवाद छोड़कर तर्क विवाद पर उतरती है। पूरे हिस्से पर तनाव छाया है। इस 'इस्टेबलिशमेंट से सरयू जितना संघर्ष करती है, उतना ही अकेली पड़ती जाती है। अकेला लड़ने वाला तो हारने को अभिशप्त होता है। अतुल ने उसको फैक्टरी और घर दोनों मोर्चों पर मात दी। अंत में वह पुनः उस जगह वापस आ जाती है, जहां कुछ समय पहले सब कुछ शुरू हुआ था- अपने घर पर। लेकिन शायद अब सब कुछ वैसा ही नहीं रहने वाला था। "मैं गेट के पास खड़ी थी, घर से बाहर। सोचती। खुद को टटोलती। दुविधाग्रस्त। संशय में डूबी व्यथित, अकेली!... हाथ बार-बार गेट तक जाता। लौट आता।"

यह असमंजस मात्र एक स्त्री का ही नहीं, वरन आज की आक्रामक और तेज दुनिया में अनफिट पा रहे प्रत्येक व्यक्ति का भी है। यह मध्यवर्गीय मानस एक ओर अपने अहं को गंवाना नहीं चाहता तो दूसरी ओर सत्ता से तालमेल भी नहीं बैठा पाता है। फलतः अपने को एक चौराहे पर पाता है, जहां पर उसे भविष्य की तलाश है, शायद अस्तित्व की भी।

आज विशेषतया एक स्त्री और सामान्यतया मध्यवर्गीय मानस अस्तित्व के जिन सवालों से जूझ रहा है, उसे लेखक ने *अस्तित्व* में बहुत संवेदनशील रूप में प्रस्तुत किया है। भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग और लयात्मक रूप के कारण यह उपन्यास साहित्य में अपना एक स्थान रखता है।

—रमेश यादव

स्थूल सत्य के पार की कहानियां

गुफा का आदमी (कहानी संग्रह) : संजीव; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110003; पृष्ठ : 120; मूल्य : 100 रुपये।

कथाकार पात्रों, स्थितियों, घटनाओं और मनोवृत्तियों के माध्यम से जब अपने समय से रूबरू होता है, तो सत्य और यथार्थ के कई रूपों से उसकी मुठभेड़ हो ही जाती है। जिस पात्र या स्थिति को वह देखता है, कथा रचना के समय उसकी भीतरी परतों में प्रायः उसे ऐसे सत्यों के दर्शन हो जाते हैं जो तब तक उसकी सोच के दायरे में अपनी कोई स्पष्ट तस्वीर नहीं बनाए होते। जब संजीव जैसा कथाकार हो, तो उन परतों में समाज का यथा रूप ही नहीं, उस रूप को निर्मित होने के कारणों का एक मानचित्र जैसा स्पष्ट मानक भी सामने आ जाता है। उनके ताजा कहानी संग्रह *गुफा का आदमी* में ये मानक बार-बार हमारी सोच के धरातल पर दस्तक देते-से जान पड़ते हैं। संजीव शिल्प से ज्यादा कथानक के चयन और उसकी प्रस्तुति के स्तर पर प्रयोग करने वाले या चौंका देने वाले कथाकार नहीं हैं। संवेदनाओं की विविधता को पकड़ने, उन्हें तोलने और सत्य को संवेदना की उचित मात्रा में मिलाकर उसे किस्से में बदलने में माहिर कथाकार हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'ज्वार' से शुरू करें, तो हिंदी कहानी के लिए लगभग अछूता परिवेश बांग्ला देश अपने एक खास यथार्थ के रूप में सामने आ जाता है। एक अल्पसंख्यक की जान बचाने और उसी परिवेश का होने के प्रमाण के लिए धर्म परिवर्तन करना पड़ता है। यह कहानी का बाहरी रूप है। इसके भीतर, वर्णन और संवादों तथा स्थितियों से, एक पूरा कालखंड उपस्थित है। देशों की सीमाएं धर्म की सीमाएं बनी पड़ी हैं। विश्वासों में राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का वर्चस्व साफ दिखाई देता है। गरीबी और अज्ञानता जो धार्मिक कट्टरता के मुख्य वाहक हैं, वहीं राजनीति भी उन्हें भुनाने में लगी दिखती है। यह ज्वार कब आया, कैसे पूरे समाज की सोच और विश्वास को लील गया इसका सही हिसाब तो दूर, किसी को अहसास तक नहीं हुआ। अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यक राजनीति जिसमें धार्मिक पवित्रता और सुचिता की जिद के साथ सत्तागत हेकड़ी भी शामिल हो जाती है, एक कहर की तरह उन्हें तोड़ने का ही काम करती है। सवाल यह है क्या इतने दबावों में अपनी मूल पहचान को दबा देने पर वे कभी सामान्य होकर जी सके?

इसी का दूसरा रूप 'योद्धा' और 'बुद्धपथ' में दिखाई देता है। जातिगत जटिलता और उसमें भी श्रेष्ठता का दंभ पूरे समाज की सोच और कार्यपद्धति को किस तरह प्रभावित करती है, यह 'योद्धा' में देखा जा सकता है। पुराने समय में जब सवर्ण ही नीति निर्धारक थे, वही नियंता थे, तो समाज का पिछड़ा तबका अपने स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकता था। एक दासता उनकी मनःस्थिति को खास दिशा से जरा भी नहीं मुड़ने देती थी। यह नियति का खेल मान लिया जाता था। कालांतर में समय थोड़ा बदला, सत्ता और अधिकारों का स्थानांतरण हुआ तो जातिगत स्थितियों में आया परिवर्तन सोच और व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं ला पाया। जातियों को बढ़ावा देने और उसी में से श्रेष्ठ को छांटने की प्रवृत्ति बदले के रूप में यथावत रही। सामाजिक समरसता और समाज संतुलन की अवधारणा को पछाड़ने के मापदंड वही रहे जिन्हें पहले आदर्श माना जाता था। 'योद्धा' में भारतीय समाज का देहात अपनी जातिगत विषमताओं और विषताओं में पूरी तरह मौजूद दिखाई देता है। 'बुद्धपथ' धर्म को उसके दार्शनिक और लोक कल्याणकारी उपदेशों से भिन्न उसके मंदिर-मठ जैसे दिखावे के प्रतीकों को स्थापित करने और उन्हें भाव व दर्शनीय बनाने की छोटी सोच पर कटाक्ष करने की कहानी है। 'बुद्ध यहां के लिए सेलीब्रेटी चीज हैं' पहले वाक्य से कहानी अपने अभीष्ट को बताना शुरू कर देती है। शीलभद्र जिस स्थान पर मठ बनाना चाहते हैं, उस जमीन पर कइयों की नजरें हैं। शीलभद्र अपनी

भलमनसाहत के कारण उपहास के पात्र हैं। पर शीलभद्र अपने विश्वासों में दृढ़ है। उसका मानना है, 'सभी समस्याओं का एक ही निदान है- बुद्धपथ।' मंदिर-मस्जिद विवाद उसे उद्वेलित करता है। तब उसकी समझ में आता है कि मानव उद्धार का एक ही रास्ता है- शांतिपथ।

संग्रह की दो कहानियां 'दस्तूर' और 'गुफा का आदमी' अपने कथानक में भिन्न और कुछ-कुछ उपन्यास का शिल्प लिए हुए हैं। भिन्न इस मायने में है कि कथा काल पुराना रूप लिए हुए है। घटनाएं आज की परिस्थितियों से हटकर हैं। शिल्प में फंतासी का आश्रय है। 'दस्तूर' उस समय की कहानी है जब राजाओं की दोनों तरह की सत्ताएं, यानी रानियों से पैदा हुए 'राय साहब' और रखैलों से पैदा हुए 'लाल साहब' अपनी पुरानी हस्ती को तो खो ही चुके थे, आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता को दिखाने के लिए जेवर-जायदाद बेचकर शान को बचाए हुए थे। व्यवहार और संस्कारों में राजघराने का होने का दंभ उनसे वही काम करवा रहा है, जो बदली परिस्थितियों में उनके लिए ही घातक हैं। दूसरी तरफ गांवों में आना उनके करिंदों का और उनमें पालतू हाथी-घोड़ों का भय पूरी तरह व्याप्त है। उनकी इस विकृत मानसिकता का शिकार सबसे अधिक उनकी पत्नियां हैं। यह जो 'दस्तूर' है, जो उनकी जीवन शैली का हिस्सा हो गया है, उसको तोड़ने की ताकत और इच्छा उनकी अगली पीढ़ी में भी नहीं दिखाई दे रही।

'गुफा का आदमी' तथाकथित सभ्य और विकसित समाज के लिए अविश्वसनीय-सी स्थितियों की कहानी है। इसमें आदिवासी समाज को भीतर तक देखने का अनुभव एक अलग दुनिया के दर्शन करने जैसा है। मूलत: यह एक प्रेम कहानी है। पर अपने ट्रीटमेंट में आदिवासी समाज की भीतरी संरचना का बारीक अध्ययन भी है। कोई भी समाज जिसमें शिक्षा का अभाव है, बाहरी समाज से जिसका संघर्ष नहीं है, अपनी परंपराओं से इस कदर जकड़ा रहता है कि उससे बाहर निकलना भी एक दूसरी असुरक्षा में पहुंचने जैसा होता है।

'राख' बड़ी कलात्मक और भावनात्मक कहानी है। ग्रामीण समाज के विश्वासों को चतुर लोग सहज ही अपने हित में कर लेते हैं, जोखना बहू निस्संतान है, गरीब है, इसलिए अपयश ही उसके हिस्से आता है। गांव का मंदिर नहले ने बनवाया है। जातिगत व्यवस्था के कारण जोखना बहू मंदिर में नहीं जा सकती थी। पर संतान की चाह उसे मंदिर तक ले जाती है। वह सबके उठने से पहले मंदिर में मनौती के लिए जाती है। एक दिन पकड़ी जाती है। उस पर आरोप है उसने मंदिर को भ्रष्ट कर दिया है। मंदिर की शुद्धी के लिए दण्ड की बात आई है। उसी जुर्माने की अदायगी के लिए उसका पति जोखन काम की तलाश में भटका। बीमार पड़ा और मर गया। जोखना बहू के लिए भी सूरज हमेशा के लिए डूब गया। अब जीवन का कटु यथार्थ उसके सामने है। जीवनयापन का कोई साधन नहीं रहा। वह पति की चिता में कूदकर आत्महत्या कर लेती है। गांवभर में हल्ला हो गया है कि जोखना बहू सती हो गई है। जोखना की उपेक्षा करने वाला समाज बल्कि समाज के नियंता तत्काल उसके सती होने को महिमामंडित करने लगते हैं। अब माता के मंदिर के साथ सती का थान भी स्थापित हो गया है। वहां कई पिंडियां स्थापित हो गई हैं। हर पिंडी पर कोई न कोई चढ़ावा वसूलने वाला बैठा है।

'आविष्कार' उदारीकरण की भेंट चढ़ी फैक्ट्री के बाहर कर दिए गए कर्मचारियों की रुदन भरी चीत्कारें हैं, 'उत्तर आधुनिकता' विकृतियों को स्वीकृति देने के बहाने। 'बीहड़' आपराधिक वृत्ति से सभ्य समाज में आने का राजनीतिकरण है।

देखा जाए तो संजीव हर कहानी के लिए नए परिवेश की तलाश में रहते हैं। उनके यहां पात्र के साथ स्थान भी महत्वपूर्ण हो जाता है। स्थान भी उनकी कहानियों को अलग मिजाज देने लगता है।

— क्षितिज शर्मा

जन संपर्क, सशक्त भारतीय अवधारणा : राजेश कुमार; सार्थक प्रकाशन, 100-ए, गौतम नगर, नई दिल्ली-110049, पृष्ठ : 100; मूल्य: 190 रुपये।

जनसंपर्क, जनसंचार और प्रचार जैसी अवधारणाएं यों तो कोई नई नहीं हैं। अपने प्रारंभिक रूप में ये सभी युगों और सभी समाजों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं लेकिन समय के साथ-साथ और टेक्नोलॉजी में परिवर्तन से इनका स्वरूप भी बदलता चला गया है। सिंधु घाटी सभ्यता के समय के जनसंपर्क और आज इंटरनेट के युग में जनसंपर्क के कार्पोरेट स्वरूप में धरती-आसमान का अंतर आ गया है। सम्राट अशोक और हर्षवर्धन से लेकर शहंशाह अकबर या औपनिवेशिक काल या स्वतंत्रता के बाद के युग में जनसंपर्क के विकास का उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में इस विषय पर मौलिक पुस्तकों की कमी और विदेशी लेखकों की अनूदित पुस्तकों से ऐसा आभास होता है कि जनसंपर्क कोई विदेशी अवधारणा है लेकिन राजेश कुमार की इस पुस्तक में यह बताने का प्रयास किया गया है कि जनसंपर्क एक भारतीय अवधारणा है।

लगभग 100 पृष्ठ की यह पुस्तक सात अध्यायों में विभाजित है जिसमें जनसंपर्क के विकास, जनसंपर्क व आपदा प्रबंधन, समय प्रबंधन, जनसंपर्क के कार्यक्षेत्र, इवेंट मैनेजमेंट, मीडिया से संबंध तथा जनसंपर्क और वैश्वीकरण जैसे अध्याय शामिल हैं।

हिंदी में जनसंपर्क पर गिनी चुनी पुस्तकें हैं जिनमें से अधिकतर जनसंपर्क के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई अकादमिक महत्व की हैं। इस दृष्टि से राजेश कुमार की यह पुस्तक लीक से कुछ हटकर है। हालांकि यह विश्वविद्यालयों के जनसंपर्क के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर नहीं लिखी गई है फिर भी जनसंपर्क के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जनसंपर्क के क्षेत्र में अपने लंबे अनुभव के आधार पर लेखक को जो कुछ आज के संदर्भ में प्रासंगिक लगा है उसकी संक्षिप्त चर्चा इस पुस्तक में की गई है। लेखक का मानना है कि "प्रबंधकीय विधा के रूप में जनसंपर्क हमारे देश में आज अपने शैशव काल में है परंतु लोक प्रचलन व परस्पर व्यवहार के एक अभिन्न अंग के रूप में इसकी जड़ें भारतीय समाज में बहुत गहरी हैं।" लेखक ने जनसंपर्क, जनसंचार और प्रचार के आपसी संबंधों और इनके बीच अंतर को भी समझाने का प्रयास किया है। जनसंपर्क से जुड़ी नवीनतम विधा इवेंट मैनेजमेंट की चर्चा एक अलग अध्याय में की है। जनसंपर्क के वैश्वीकरण से जुड़े पहलुओं की चर्चा भी एक अलग अध्याय में हुई है।

पुस्तक के प्रारंभ और अंत के कुछ पृष्ठों में प्रकाशित चित्रों और पत्र-पत्रिकाओं की कतरनों के कोलाज विज्ञापन की तरह के लगते हैं। पुस्तक में संपादन और प्रूफ संबंधी गलतियों की भरमार है और इसकी पुष्टि के लिए फ्लैप में छपी सामग्री और 'समर्पण' वाले पृष्ठ श्लोक का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे जनसंपर्क के लंबे व्यावहारिक अनुभव वाले व्यक्ति ने लिखा है और इस दृष्टि से इसका स्वागत होना चाहिए।

—निरुपम

सच का पक्षधर 'एक फकीर'

आंगन खड़ा फकीर (आलोचना) : बलराम; नीलकंठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-110030; मूल्य : 200 रुपये।

कहानीकार बलराम ने पर्याप्त गद्य-लेखन भी किया है। पेशे से सजग पत्रकार होने के कारण उन्होंने समसामयिक से लेकर साहित्यिक-सांस्कृतिक विषयों पर अक्सर टिप्पणियां लिखी हैं। समय-समय पर प्रकाश में आने वाले कथा साहित्य पर उनकी पैनी नजर निरंतर लगी रही है। इसका प्रमाण है विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके कथा साहित्य संबंधी लेख, टीका-टिप्पणियां, सर्वेक्षण, समीक्षाएं और रिपोर्टें। इन्हीं का एक चयन *आंगन खड़ा फकीर* नाम से आया है। इसमें बलराम का 'सृजन योग की खोज' में लगा हुआ आलोचक रूप उभर कर सामने आया है, जो किसी की भी परवाह नहीं करता। उसे जैसा लगता है, वैसा बिना लाग-लपेट के कह देता है। कारण बलराम मानते हैं कि 'विवेक और साहस का दामन छोड़कर उत्तम आलोचना नहीं लिखी जा सकती।' स्पष्ट ही, बलराम ने अपने इन आलोचनापरक लेखों में आलोचकीय विवेक और साहस का परिचय दिया है।

आगन खड़ा फकीर के पहले खंड में बारह आलोचनात्मक लेख संकलित हैं तो दूसरे में इतने ही वार्षिक साहित्य-सर्वेक्षण, टीका-टिप्पणियां और रिपोर्ट हैं, जिनसे गुजरते हुए बराबर यह महसूस होता है कि बलराम अपने समय के साहित्य तथा चलने वाले आंदोलनों से गहरे तक जुड़े रहे हैं। भले ही उन्होंने इनका झंडा न उठाया हो, उनकी आलोचना-दृष्टि 'संवेदनशील' और 'न्याय विवेक-बुद्धि' पर आधारित है। उन्होंने प्राय: उन रचनाओं को उठाया है, जो किसी न किसी कारण उपेक्षित रह गई हैं या जान-बूझकर उपेक्षित कर दी गई हैं। ये रचनाएं वरिष्ठ कथाकारों की हैं तो समकालीन युवा रचनाकारों की भी। उन्होंने इन रचनाओं पर पूरी निष्ठा और सद्भावना से विचार करते हुए इनकी संभावनाओं और सीमाओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

पहले खंड के आलेखों से उजागर होता है कि ये प्राय: ऐसी रचनाओं की समीक्षाएं हैं, जिनकी हिंदी जगत में चर्चा तो हुई, पर विस्तार से उन्हें समझने-समझाने का उद्यम नहीं हुआ यानी उन पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, दलगत राजनीति या अन्य कारणों से देखकर भी उन्हें अनदेखा कर दिया गया, पर बलराम की दृष्टि में ये रचनाएं महत्वपूर्ण हैं। इसीलिए बलराम अपने को इन रचनाओं की समीक्षा तक सीमित न रखकर रचनाकार के समूचे लेखन के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करते हुए उनकी अन्य रचनाओं की उपलब्धियों को साथ में रखकर आलोच्य रचना के महत्व को रेखांकित करते हैं। इन रचनाओं का कालखंड विस्तृत है यानी ये 1983 से 2004 के बीच लिखी गई हैं। इनमें *नीला चांद* (शिवप्रसाद सिंह), *इतिवृत्त* (जगदंबा प्रसाद दीक्षित), *कालकथा* (कामतानाथ), *कगार की आग* (हिमांशु जोशी), *आवां* (चित्रा मुद्गल), *शाल्मली* (नासिरा शर्मा), *गांव-बेगांव* (राजेंद्र प्रसाद पांडेय), *ऐसा सत्यव्रत ने नहीं चाहा था* (राजकुमार गौतम) से लेकर *यह जग काली कूकरी* (सूर्यकांत नागर) और *चतुरंग* (शैलेन्द्र सागर) तक की विस्तृत विवेचना की गई है।

बलराम की आलोचना-प्रक्रिया पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि वे प्राय: रचना के अंतरंग में पैठकर ही अपना पाठ तैयार कर बताते हैं कि ये रचनाएं क्यों महत्वपूर्ण हैं। वे कहते हैं : 'परंपराएं एकायामी नहीं होतीं। परंपरा बनती है तो बहुतों के सम्मिलित योगदान से'। प्रश्न उठता है कि इन रचनाओं को एक अन्य परंपरा के रूप में क्यों न देखा जाए। वैसे भी जीवन विविधताओं से भरपूर है। बलराम प्रश्न करते हैं कि विविधता और बहुलता को एक मूल्य के रूप में हम कब स्वीकार करेंगे? यह कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि साहित्यालोचन में जीवनगत विविधता, अनुभूति की गहराई आदि की चर्चा तो की जाती है, पर आलोचना के मानदंड कुछ और ही अपना लिए जाते हैं, अन्यथा क्या कारण है कि *नीला चांद* जैसी महत्वपूर्ण कृति अनेक पुरस्कार प्राप्त कर लेने पर भी चर्चित नहीं हो पाती। बलराम को लगता है कि आधुनिकता और प्रगतिशीलता की संकीर्ण राजनीति के कारण ऐसा हुआ, जबकि आधुनिकता और प्रगतिशीलता जीवन की गतिशीलता से जुड़ी अवधारणाएं है : 'आधुनिक और प्रगतिशील हुए बिना न तो आप इतिहास के आईने में वर्तमान की व्याख्या कर सकते हैं, न ही बृहत्तर मानवीय यथार्थ से खुद को जोड़ सकते हैं।' *नीला चांद* काशी के इतिहास और लोक से जुड़ा महत्वपूर्ण उपन्यास है। उसे 'अतीत की गाथा' कहकर कैसे खारिज किया जा सकता है? वह निर्जीव इतिहास न होकर इतिहास का पुनर्सृजन है, जिसे शिवप्रसाद सिंह ने गहरे पैठकर किया है। उनमें इतिहास-बोध की अनुगूंजें हैं। बलराम का मानना है कि इतिहास-बोध के बिना कुछ दूर चलकर हम पंगु हो जाएंगे मगर इतिहास से इतिहासकार के गुजरने और साहित्यकार के गुजरने में अंतर होता है। इस अंतर को समझने के लिए भी *नीला चांद* को पढ़ना जरूरी है ताकि जाना जा सके कि कोई साहित्यकार जब खुद को इतिहास के बीच से गुजारकर कुछ रचता है तो वह कितना साहित्य बनता है और कितना इतिहास? इसी प्रकार पिछली पीढ़ी के महत्वपूर्ण उपन्यासकार जगदंबा प्रसाद दीक्षित के *इतिवृत्त* को प्राय: पाठक जान ही नहीं पाए कि उपन्यासकार ने किसके *इतिवृत्त* को अपने उपन्यास में रचा है। यह कोई और नहीं, आजादी के बाद की पीढ़ी का वह आदमी है, जो अपनी जीविका के लिए गांव से शहर आया और शहर से महानगरों की ओर उन्मुख हो गया, पर अभी वह पूरी तरह से संवेदनहीन नहीं हुआ है।

वरिष्ठ कथाकार कामतानाथ के बृहत उपन्यास *कालकथा* पर उनकी समीक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह समीक्षा नहीं, कामतानाथ के समूचे कृतित्व पर विश्लेषणपरक आलेख है। बलराम ने कामतानाथ के लेखन से यह निचोड़ निकाला है कि उनके पास साफ-सुथरी वैज्ञानिक दृष्टि और समग्रता में स्थितियों का विश्वसनीय अंकन कर सकने की रचनात्मक क्षमता है। सहज भाषा में बेमिसाल पारदर्शी अभिव्यक्ति भी उनके कथा-संसार की विशेषता रही है।

इधर महिला कथाकारों ने अपनी अदम्य लेखन-क्षमता का परिचय दिया है। एक विस्फोट की तरह वे अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। चित्रा मुद्गल का उपन्यास *आवां* इसका प्रमाण है। इसे सिर्फ स्त्री-विमर्श का उपन्यास कहकर चलता नहीं किया जा सकता। बलराम मानते हैं कि इसके सरोकार इससे कहीं आगे जाते हैं। *आवां* में दलितों के जीवन और श्रमिक राजनीति के ढेर सारे उजले-काले कारनामे उभरते हैं, जिसकी जमीन मुंबई से लेकर हैदराबाद तक फैली हुई है। यह

ठीक है कि इस नायिका-प्रधान उपन्यास में स्त्री-जीवन के संघर्ष के अनेक रूप दिखाई देते हैं। इसलिए बलराम का यह मत है कि 'यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्त्री चेतना में निरंतर आ रहे बदलावों का महावृत्तांत है, जिसमें समकालीन स्त्री के सभी रूप समा गए हैं। इस रूप में इसे आज के स्त्री-विमर्श के साथ दलित विमर्श को भी अपनी जद में लेने वाली महागाथा कह सकते हैं, जिसे लिखने की प्रेरणा चित्रा मुद्गल को मुंबई में जिए-भोग अपने युवा जीवन से मिली। उसमें यह बोध जागा कि "स्त्री की क्षमता को उसकी देह से ऊपर उठकर स्वीकार न करने वाले रूढ़ एवं रुग्ण समाज को झकझोर कर जगाना है।" श्रमिक राजनीति पर लिखा हुआ यह उपन्यास गहराई में जाने पर स्त्री-अस्मिता की जागृति का उपन्यास नजर आने लगता है। लंबे समय से सृजनरत दूसरी कथाकार नासिरा शर्मा के उपन्यास *शाल्मली* पर गंभीरता से विचार करते हुए बलराम आज की स्वतंत्र-स्वावलंबी स्त्री की तस्वीर को रेखांकित करते हैं, जो क्रमशः पारंपरिक रूढ़ियों से मुक्त हो रही है। वह किसी अति में जीना नहीं चाहती।

बलराम ने अपने समकालीन अपेक्षाकृत नये संघर्षशील कथाकारों पर भी अपनी लेखनी चलाई है। समकालीनों में राजकुमार गौतम के उपन्यास *ऐसा सत्यव्रत ने नहीं चाहा था* पर बेबाक टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है कि उपन्यास का नायक सत्यव्रत खुद तो नायक बन बैठा, पर बाकियों का चरित्र, वजनदार चरित्र तक नहीं बनने दिया। नव्यतम कथाकारों की पांत में प्रमुख शैलेन्द्र सागर गांव-शहर की सामाजिक-संरचना में आते बदलाव को अपने उपन्यास *चतुरंग* का विषय बनाते हैं। आज सवर्ण मानसिकता अपने को सुरक्षित कर लेने के लिए क्या-क्या गुल नहीं खिला रही है, दूसरी तरफ गांव के छोर पर बसी चमरौटी अपनी रूढ़ियों से बाहर निकल पा रही। उनका पढ़ा-लिखा तबका बाहर जा रहा है। आधुनिक शिक्षा की बयार उनके जीवन में तरोताजापन नहीं ला पा रही। इसलिए उनका युवावर्ग दमघोंटू वातावरण में जीने के लिए विवश है। बलराम ने इन एक दर्जन से अधिक रचनाकारों का सम्यक मूल्यांकन करते हुए जहां उनकी खूबियों को दरसाया है, वहीं उनकी कमियों पर भी अपनी बेबाक राय दी है।

पुस्तक का दूसरा खंड अपेक्षाकृत छोटा है। इसमें 1983 में दिल्ली में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर 2002 तक विश्व पुस्तक मेलों की संस्कृति तथा वर्षभर की पुस्तकों के सर्वेक्षण दिए गए हैं। यहां हिंदी पुस्तक-प्रकाशन के नए आयामों और नवीन सृजनात्मक लेखन की चर्चा तो की गई है, परंतु पुस्तकों की विवरणी भर प्रस्तुत कर देना बलराम का उद्देश्य नहीं रहा है। ये मेले-ठेले, आयोजन-सम्मेलन हिंदी की जातीय संस्कृति का निर्माण किस प्रकार करते हैं, इसका संकेत बलराम की इन टिप्पणियों में किया गया है। उन्होंने हिंदी मानस में आ रहे बदलावों को भी अपने इन आलेखों में स्थान दिया है। अंत में 'समकालीन साहित्य के आईने में अश्वेत जीवन' आलेख अफ्रीकी देश में लिखे जा रहे महत्वपूर्ण साहित्य से हिंदी पाठकों का परिचय कराता है।

इन आलोचनात्मक आलेखों, समीक्षाओं, सर्वेक्षणों और रपटों से गुजरते हुए स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि बलराम अपने समय की रचनाशीलता को अपेक्षाकृत सहानुभूति से देखने का आग्रह करते हैं। कारण, ये उन लेखकों की रचनाएं हैं, जो आज के समय में अनेकानेक प्रलोभनों से बचते-बचाते संघर्षशील जनता के सुख-दुख को निष्ठापपूर्वक अपने साहित्य में उकेरते हैं, जबकि राजनीति-प्रेरित आकलन हिंदी रचनाशीलता का ह्रास करते हैं। इसी से वे बाएं-दाएं के चक्कर में नहीं पड़ते। शायद इसीलिए ये आलेख सच के विश्वसनीय पक्षधर बन गए हैं।

—**हरिमोहन शर्मा**

रचनात्मक सरोकारों की बहुआयामी पड़ताल

रचना का सच (आलोचना) : डा. नरेंद्र मोहन; संजय प्रकाशन, 4378/4 बी. 209 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; पृष्ठ : 173; मूल्य : 200 रुपये।

सृजनशीलता और चिंतन धारा को एकाकार करने की व्याकुलता भले ही रचनाकार की अनिवार्य नियति क्यों न हो तो भी इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि इसी नियति के चलते रचना के बहुस्तरीय अर्थ भी खुलने लगते हैं जो अंततोगत्वा सृजनात्मक चमक के लिए आधार बिंदु का भी काम करता है। कवि, नाटककार और आलोचक के रूप में जाने माने हस्ताक्षर नरेंद्र मोहन की पुस्तक *रचना का सच* उन्हीं विवादास्पद लेकिन महत्वपूर्ण साहित्यिक-सामाजिक-सांस्कृतिक सवालों का गंभीरता से जायजा लेती है जिनसे बचकर कहीं भी पहुंचा नहीं जा सकता। चार खंडों में विभाजित इस पुस्तक के लेख स्वाधीन होने के अर्थ का खुलासा करते हुए रचना के सच को उदघाटित करने की कोशिश करते हैं और साहित्य की विभिन्न विधाओं के पारस्परिक साहचर्य के जरिए गहन विमर्श की पूर्व-पीठिका भी तैयार करते हैं।

पुस्तक में शामिल लेख 'स्वाधीन होने का अर्थ रचना का सच' व्यक्ति और समाज के संश्लिष्ट संबंधों को व्याख्यायित करने मात्र से संतुष्ट नहीं होता बल्कि रचना और रचनाकार के तनावों-द्वंद्वों से गुजरकर मद्धम उजाले व गहराते अंधेरे की तह तक पहुंचने की कोशिश करता है। भौतिक ज्ञान-विज्ञान के उत्तरोत्तर विकास के मुकाबले संवेदनात्मक ज्ञान के उथलेपन की चीरफाड़ करता यह लेख एक हद तक पूरे माहौल में पसरी संवादहीनता को तोड़ने का काम करता है। इसी क्रम में शब्द की शक्ति को समाप्त करते षड्यंत्रों के विरुद्ध मशाली व्यक्तित्व कबीर की क्रांतिधर्मी चेतना को 'कबीर : उनका समय और आज' में इस युगपुरुष की अक्खड़ता और फक्कड़ता के जरिए यथास्थितिवादी मानसिकता को आड़े हाथों लेने का जोखिम अपने पूरे आवेग के साथ मौजूद है। प्रकारांतर से इस लेख में कुछ ऐसा संकेत भी मिलता है कि समाज की मौजूदा जड़ता को काटने के लिए कबीर की प्रखर ताप भरी वाणी की जरूरत आज पहले से कहीं ज्यादा है।

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार के चलते ललित कलाओं के बदलते स्वरूप, नाट्यकर्म, रंगकर्म और नाट्यालोचन के अंतर्संबंध, नाटक की रचना प्रक्रिया और रंग प्रक्रिया, भुवनेश्वर के साहित्यिक अवदान व उनके केंद्रीय संवेदन, नाट्यकृतियों में नारी-विमर्श के कई अछूते पहलुओं को कुछ अलग लेकिन व्यापक जरिए से खंगालते लेख 'नाट्यकर्म, रंगकर्म और नाट्यालोचन' 'रंगमंच ललित कलाएं और सूचना प्रौद्योगिकी', 'भारतीय रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में लक्ष्मी नारायण मिश्र के

नाटक', 'भुवनेश्वर : एक विवादास्पद रचनाकार' इस पुस्तक की अन्यतम उपलब्धि कहे जा सकते हैं। लंबी कविता के सरोकार और इसकी मूल्यवत्ता को केंद्र में रखकर 'बीसवीं शताब्दी की लंबी कविताएं' तथा 'इधर की कविता' लेखों में नए विमर्श उभर कर सामने आए हैं। उपभोक्ता संस्कृति के अतिविस्तार, अर्थतंत्र के बदलते रूप और सूचनाक्रांति के विस्फोट ने साम्यवाद, लोकतंत्र व सर्वसत्तावाद जैसी शासन प्रणालियों को एक बड़ी हद तक एकांगी व नाकाफी साबित कर दिया है। 'आज के कवि/ बौद्धिक का संकट' में अर्थ व तकनीक के तेज दबावों से सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक स्तर पर होने वाले आधारभूत किस्म के बदलावों का जायजा लिया गया है।

इस पुस्तक में शामिल लेख मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, समाजवाद, गांधीवाद के दर्शन एवं विचारों के चिंतन व कलाओं पर प्रभावों को तो व्याख्यायित-विश्लेषित करते ही हैं, साथ ही प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, विचार कविता, जनवादी कविता जैसी साहित्यिक अभिव्यक्तियों में उनके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रतिफलित रूपाकारों को भी अनदेखा नहीं करते। सृजन और आलोचक के अंतर्संबंध व उत्कर्ष की नब्ज टटोलते लेख 'सृजनात्मक प्रतिभा का आलोचनात्मक प्रश्न', 'आलोचक और निर्देशक साथ-साथ', 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आज की हिंदी आलोचना', 'अधूरी आलोचना जो पूरी होने से बेहतर है' व 'प्रातिनिधिकता का प्रश्न' आधुनिकता से जुड़े व्यावहारिक मुद्दों तथा सवालों को उठाते हैं और लेखकीय स्वतंत्रता की पक्षधरता के तर्क जुटाते हैं। इतना ही नहीं इन लेखों में रचना और आलोचना के बढ़ते अलगाव को कृति, कृतिकार की मानसिकता एवं रचना-प्रक्रिया के माध्यम से समझने का प्रयास इन लेखों की विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती है। जिससे आलोचना की ढर्रेदार परिपाटी में जरूरी हस्तक्षेप साहित्यिक प्रवृत्तियों, सरोकारों, कृतियों व साहित्यिक आंदोलनों को समझने का कारगर हथियार बन सका है। यही कारण भी है कि रचना विरोधी माहौल में यह पुस्तक रचनाधर्मिता के बीच अनिवार्य रूप से पनपते संशयों, तनावों, द्वंद्वों व विभ्रमों के कुहासे को हटाने का सफल उपक्रम कही जा सकती है।

—राजेन्द्र सहगल

एक महाकवि के आत्म-चित्र

जीवन स्मृति : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हिंद पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली-110003, पृष्ठ : 184; मूल्य : 75 रुपये।

जीवन स्मृति महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा लिखी गयी एक अनुभवपरक आत्मकथात्मक रचना है। सन 1912-13 में जब रविबाबू ने यह किताब लिखी, तब वे अपनी उम्र के पचास वसंत पार कर चुके थे और विश्व के प्रतिष्ठित साहित्यकारों में उनका नाम आदर के साथ लिया जाने लगा था। उन्हीं दिनों *गीतांजलि* काव्य संग्रह पर नोबल पुरस्कार भी उन्हें प्राप्त हुआ था। लेकिन इस किताब (जीवन स्मृति) में रविबाबू ने अपने बचपन से लेकर लेखक बन जाने तक की कथा को ही समेटा है।

जैसा कि सभी जानते हैं रवीन्द्रनाथ का जन्म 7 मई, 1861 को कलकत्ता के विख्यात ठाकुर परिवार में हुआ था। बचपन में उनकी पढ़ाई घर में ही शुरू हुई। बाद में कुछ समय के लिए लंदन युनिवर्सिटी कालेज में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से ही रवीन्द्रनाथ ने कविता लिखनी शुरू की। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में *कवि-काहिनी* (1879) उल्लेखनीय है।

बचपन के दिनों को याद करते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है : "हमारे बचपन में भोग-विलास के अवसर बहुत ही कम थे। कुल जमा तब के जीने के तौर-तरीके आज से बहुत ज्यादा सीधे-सादे थे। ... हम लोग नौकर के ही शासन में थे। अपने कर्त्तव्यों को आसान बनाने के लिए उन लोगों ने हमारा हिलना-डुलना तक एक तरह से बंद कर दिया था। रोक-टोक कितनी ही सख्त क्यों न हो, फिर भी अनादर या उपेक्षा जबरदस्त किस्म की आजादी है और उस आजादी से हमारे मन खुले-खुले थे।"

अपने बचपन की ओर जब रवीन्द्रबाबू मुड़कर देखते हैं तो उन्हें दुनिया और जिन्दगी रहस्यों से भरी मालूम होती है। वे लिखते हैं कि दक्षिण के बरामदे के एक कोने में सीताफल का बीज गाड़कर रोज मैं उसमें पानी दिया करता था। उस बीज से बेल भी फूट सकती है, यह सोचकर मन में बड़ा ताज्जुब और उछाह पैदा हो जाता था। सीताफल के बीज से अब भी अंकुर निकलते हैं, लेकिन उसके साथ-साथ मन के अंदर अब अचरज अंकुरित नहीं होता। यह सीताफल के बीज का कसूर नहीं, मन का ही कसूर है।

आगे के पृष्ठों पर रविबाबू ने अपने पिता के बारे में, घर के वातावरण और काव्य रचना की शुरुआत कैसे हुई आदि तमाम विषयों पर बड़े मार्मिक ढंग से लेखनी चलाई है। स्वदेश प्रेम के बारे में चर्चा करते हुए उन्हें वे दिन याद आते हैं जब उनके घर में बहुत-से विदेशी रीति-रिवाजों का चलन था, लेकिन पूरे परिवार में स्वदेश के प्रति प्रबल प्रेम का भाव भरा हुआ था। वे बताते हैं कि "दरअसल वह वक्त अपने देश के प्रति लगाव जाहिर करने का नहीं था। उस जमाने के पढ़े-लिखे लोगों ने देश की भाषा और विचार दोनों को अपने से दूर रख छोड़ा था। हमारे घर में मेरे सभी बड़े भाई हमेशा से मातृभाषा पर बात करते आए हैं। पिताजी को यदि उनके कोई संबंधी अंग्रेजी में खत लिखते तो उसे वे तुरंत वापस भेज देते थे।"

अपनी प्रारम्भिक रचनाओं को याद करते हुए रवीन्द्रनाथ जी *सांध्य संगीत* की चर्चा विशेष रूप से करते हैं। वे लिखते हैं : "काव्यों के ख्याल से *सांध्य-संगीत* की कीमत ज्यादा भले ही न हो, उसकी कविताएं काफी कच्ची हैं, उसके छंद, उसकी भाषा और उसके भाव साकार होकर खिल नहीं पाए हैं, फिर भी उसकी जो खुशी है वह यह है कि मैंने अचानक एक दिन अपनी मर्जी से जो तबीयत में आया वही लिखा है। इसलिए उस रचना की कीमत भले ही न हो, लेकिन मेरी 'तबीयत' की कीमत जरूर है।"

विलायत में बैरिस्टर की पढ़ाई करने के लिए रवीन्द्रनाथ ने तैयारी शुरू की ही थी तभी पिताजी ने उन्हें देश बुला लिया। एक-दो बार और विलायत जाने की कोशिश हुई लेकिन वे किन्हीं कारणों से जा न सके। इस पर उन्होंने लिखा है कि मेरा बैरिस्टर हो जाना, किस्मत को कबूल नहीं था। और बिलायत जाने से हाथ धो बैठने के बाद उन्होंने सोचा- 'बार-लाइब्रेरी का बोझ न बढ़ाने से कानून के देवता मुझे कृपा की दृष्टि से ही देखेंगे।'

इसके बाद तो रविबाबू पूरी तरह से अपने

काव्य और साहित्य-संसार में रम गए। 'प्रभात संगीत' (1883), 'छबि ओ गान' (1884), 'मानसी' (1890) में उनकी प्रारम्भिक कवि-दृष्टि का क्रम विकास स्पष्ट है तो 'सोनारतरी' (1894) काव्य ग्रंथ में विश्व जीवन की आनंद चेतना का पहला स्वर फूटता है।

बाद में 'गीतांजलि' (1910), 'पलातका' (1918), 'प्रवाहिनी' (1925), 'शिशुभोलानाथ' (1932), 'पत्रपुट' (1936) आदि अनेक काव्य संग्रह और गद्य रचनाओं में 'चोखेर बाली' (1903), 'नौका डूबी' (1906), 'गोरा' (1909) आदि उपन्यास; अनेक नाटक, निबंध और बच्चों के लिए उत्कृष्ट बाल साहित्य रचने वाले रवीन्द्रबाबू की यह 'जीवन स्मृति' सचमुच एक दुलर्भ कृति है, जिसमें उन्होंने अपनी जिन्दगी की रोचक और प्रेरक झांकियां प्रस्तुति की हैं।

जीवन स्मृति का सुरुचिपूर्ण हिंदी अनुवाद धन्यकुमार जैन ने किया है और हिंद पॉकेट बुक्स ने बहुत ही सुंदर ढंग से इसे प्रकाशित किया है।

—अनुराधा

'स्वीकार' और 'निषेध' का शाश्वत द्वंद्व

कछुए (कहानी-संग्रह) ; इंतजार हुसैन; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-110002; मूल्य : 150 रुपये।

पाकिस्तान के शीर्षस्थ कथाकार इंतजार हुसैन के बहुचर्चित कहानी-संग्रह *कछुए* में कुल 17 कहानियां संकलित हैं। कहानी में कथ्य, भाषा और शिल्प को लेकर किए अपने प्रयोगों के लिए वे चर्चाओं और विवादों के घेरे में रहे हैं। किस्सागोई शैली में लिखी इन कहानियों (जातक कथाओं) को कथाकार बाकर मेंहदी उर्दू के नए अफसाने के लिए खतरा बताते हैं। इस संग्रह की 'कुछए', 'पत्ते', 'वापस' ऐसी ही कहानियां हैं जिनके बारे में खुद कथाकार का कहना है- 'मैं जातक कहानी लिखता हूं, ये नई हैं या पुरानी, पता नहीं। इतना पता है कि सन् 36 की हक़ीक़तनिग्गरी वाली कहानी से इसका कोई नाता नहीं हो सकता कि जातक कहानी हक़ीक़त के उस महदूद तसव्वुर की नफ़ी है जिस पर हक़ीक़तनिगारी की इमारत खड़ी है और उस इंसान दोस्ती की, जो उस अफ़साने की ताज समझी जाती है। जातक कहानियां पढ़ने के बाद सन् 36 की इंसान दोस्ती मुझे फ़िरक़ापरस्ती नज़र आती है। जातकों में आदमी कोई अलग फ़िरक़ा नहीं है। सब जीव-जन्तु एक बिरादरी हैं।' औपन्यासिक विजन से लिखी गई इन तीनों कहानियों के कथ्य में एकसूत्रता है और भाषा में विस्मित करनेवाली लयात्मकता। इन कहानियों में 'भौतिकता' और आध्यात्मिकता की दुविधा सामने है। हर पात्र के अंतर्मन में 'स्वीकार' और 'निषेध' का शाश्वत द्वंद्व मौजूद है।

'कुछए' के केंद्र में तीन बौद्धभिक्षु हैं- विद्यासागर, सुंदर समुद्र और गोपाल। गुनी-ज्ञानी भिक्षु विद्यासागर जातक कथाओं के माध्यम से सुंदर समुद्र व गोपाल को उपदेश देता है कि इंद्रियों के जाल में मत फंसो। स्वाद लेकर भोजन न करो। सदा यही ध्यान करके खाओ कि मिट्टी में मिट्टी मिल रही है। संसार दुख का स्थान है, राजपाट मोहजाल है, स्त्री माया है।

मगर भिक्षुओं के सत्यपथ से फिरने, पेड़ों की छांव छोड़ छतों तले ऊंची खाटों पर आराम करने से दुखी होने वाला सुंदर समुद्र सांसारिक जीवन में लौट जाता है। गोपाल भी सांसारिक मोहमाया से बच नहीं पाता और विद्यासागर भी सांसारिक सुखों की तृष्णा त्याग नहीं पाता।

इसी छंद की अगली कड़ी है- 'पत्ते' और 'वापस'। बौद्धभिक्षु संजय लाख जतन करता है घने जंगलों में भटका, तप किया, मगर बसंती साड़ी में लिपटी, मेंहदी रचे उजले कोमल पैरों वाली स्त्री की स्मृति से छुटकारा न मिला।

ये कहानियां बेहद विस्मय और अद्‌भुत नाटकीयता के साथ पेश आती हैं। अंततः यह 'निज' से 'समाज' तक की यात्रा की कथाएं हैं। मगर इस संग्रह में 'कदामत पसंद लड़की', 'नींद', 'असीर', 'शोर' जैसी कहानियां भी हैं जो अपने समय-समाज के तात्कलिक संदर्भों से सीधे-सीधे बावस्ता हैं। मसलन संग्रह की पहली कहानी 'कदामतपसंद' (पुरातनपंथी) लड़की को देखा जा सकता है। जहां परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व मुखर होकर सामने आता है।

साफ-सफ़्फ़ाक दो टूक लहजे में ये कहानियां, पुरातनपंथी और तथाकथित आधुनिकता के दोराहे पर खड़े पाकिस्तानी जनजीवन के अंतर्विरोधी, स्त्रियों के प्रति पुरुष मानसिकता के दोहरेपन, सामाजिक-धार्मिक पूर्वाग्रहों को परत-दर-परत उधेड़ती हैं। यूं तो इंतजार साहब की सभी कहानियों के कथ्य और शिल्प में एक खास तरह का खिलंदड़ापन मौजूद है, मगर 'बादल', 'सुबह', 'बेसबब', 'फरामोश' आदि कहानियों में यह तत्व इतना ज्यादा है कि इन्हें बड़ी मुश्किल से कहानी मानने का दिल होता है।

-- अभिषेक कश्यप

'बिहार के रचनाकर्मियों की साहित्य-यात्रा'
डा. सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर; प्रकाशक : मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032; मूल्य: 300 रुपये।

'फिरदौसी की कहानियां' : उषा आयंगर; प्रकाशक : कौन बुक्स, 18-बी, साउथ अनारकली, दिल्ली-110051; मूल्य : 175 रुपये।

एक साथ चार दर्जन से भी ज्यादा साहित्यिकारों का इतिहास लिखना आसान काम नहीं है। साहित्यकर्म अलग बात है लेकिन रचनाकारों के इतिहास को समेटना चुनौती भरा काम है। ऐसा ही काम बिहार के जाने-माने लेखक डा. सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर ने 'बिहार के रचनाकर्मियों की साहित्य-यात्रा' में किया है। पुस्तक में बिहार के जिन 54 साहित्यकारों का संक्षिप्त समीक्षात्मक आकलन किया गया है उनमें प्रमुख हैं- आनंदशंकर माधवन, डा. श्रीनिवास, उदयराज सिंह, राधाकृष्ण प्रसाद, गोवर्द्धन प्रसाद 'सदय', डा. कुमार विमल, मधुकर गंगाधर, परेश सिन्हा आदि। साहित्यकारों का समीक्षात्मक आकलन हालांकि उनके समग्र साहित्य विवेक-यात्रा को उपस्थित नहीं कर पाता है, फिर भी बिहार के रचनाकारों का परिचयात्मक स्वरूप सामने लाता है।

श्री जमुआर ने जिन जीवित लेखकों को शामिल किया है, उनका तार्किक आधार नहीं बताया है। ऐसे में लेखों का यह संग्रह केवल अपनी सुविधा से लिखी गई पुस्तक बनकर रह गई है। वजह जो भी हो, लेखक ने बिहार के कई चर्चित लेखकों को दरकिनार भी कर दिया है। मसलन जानकीबल्लभ शास्त्री, अरुण कमल, आचार्य जगदीश पांडेय, बाबू लाल मधुकर, रामधारी सिंह दिवाकर, मधुकर सिंह, मिथिलेश्वर, आलोकधन्वा सहित कई नाम हैं, जो पुस्तक में स्थान पाने से वंचित रह गए। कहा जा सकता है कि लेखक ने भी साहित्यकारों की विचारधारा के मद्देनजर खेमे में बंटे रहने का फायदा उठाया और अपनी सुविधा को आधार बना दिया।

लेखक ने वर्ष 1914 से 1953 में जन्मे साहित्यकारों को पुस्तक में जगह दी है। इसमें ऐसे भी लेखक हैं जिनकी जन्मभूमि हालांकि बिहार नहीं रही है लेकिन रचनाकर्म बिहार की भूमि रही है। पुस्तक श्री जमुआर ने मानव-संस्कृति के नव्य काव्य सर्जक, वर्ष 1914 में जन्मे साहित्यकार आनंद शंकर माधवन की रचना संसार की समीक्षा से शुरू की है। केरल में जन्मे माधवन आजादी की लड़ाई के क्रम में भागलपुर जेल भेजे गये थे। 1945 में उन्होंने बांका जिला में मंदार विद्यापीठ की स्थापना की। अहिंदी भाषी माधवन ने हिंदी की सेवा निरंतर की है। लेखक ने वैसे रचनाकारों को पुस्तक में शामिल किया है, जो पेश से अलग होते हुए भी हिंदी की सेवा में लगे रहे। मसलन डा. श्रीनिवास, जो एक पेशेवर डाक्टर हैं और विभिन्न विधा में हिंदी-अंग्रेजी में कई पुस्तक लिख चुके हैं। रंगमंच से जुड़े कई नाटककारों को श्री जमुआर ने पुस्तक में जगह दी है। चर्चित नाटककारों में डा. चतुर्भज, मदनमोहन गुप्त 'मदन', बाबू राम सिंह लमगोड़ा, डा. सिद्धनाथ कुमार के नाट्यकर्म की समीक्षात्मक चर्चा की गई है।

'बिहार के रचनाकर्मियों की साहित्य-यात्रा' में बिहार के चर्चित कवियों को खासा स्थान दिया गया है। केवल हिंदी ही नहीं बल्कि लोक भाषाई कवि भी इसमें हैं। डा. परमानंद पांडेय, हिंदी में तो चर्चित हैं ही, वे निरंतर अंगिका साहित्य को खास अहमियत देते हुए इसके विकास के लिए सक्रिय हैं। वहीं, डा. डोमन साहु 'समीर' हिंदी के साथ संथाली भाषा से जुड़े हैं। हिंदी और भोजपुरी के समर्पित कवि पांडेय कपिल, तरुणाई और सौन्दर्य के कवि के रूप में चर्चित कवि गुलाब खंडेलवाल आदि शामिल हैं तो दूसरी ओर हिंदी के कई गीतकारों का भी लेखक ने समीक्षात्मक विवरण दिया है। जैसे, विमल राजस्थानी, वासुदेव नारायण आलोक, सियाराम प्रहरी, सत्यनारायण, राजमणि राय 'मणि', मृत्युंजय मिश्र 'करुणेश' जैसे गीतकारों की गीत रचना पर समीक्षा तो है ही, साथ ही उनके भावों की भी विस्तार से चर्चा की गई है।

'बिहार की साहित्य यात्रा' में लेखिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को भी रेखांकित किया गया है। खास तौर से प्रकाशवती नारायण, रमणिका गुप्ता और डा. मिथिलेश कुमारी मिश्र का जिक्र है। प्रकाशवती नारायण ने जहां वेदना और पीड़ा से जुड़े विषय को कविता में समेटा, वहीं रमणिका गुप्ता ने लेखन में दलित और उपेक्षित वर्ग को अपना आधार बनाया है। संस्कृत और हिंदी में समान पकड़ रखने वाली उत्तर प्रदेश में जन्मी और बिहार में बसी मिथलेश कुमारी मिश्र की साहित्य-यात्रा की चर्चा विस्तार से है। कथाकारों और आलोचकों में राधाकृष्ण प्रसाद, उदयराज सिंह, रॉबिन शॉ पुष्प, डा. कुमार विमल सहित जहां कई नाम हैं, वहीं पर बिहार में जिंदादिल विकलांग रचनाकार डा.कुमार इंदुभूषण नेहरू की चर्चा कर श्री जमुआर ने अच्छा काम किया है।

इसमें दो राय नहीं कि बिहार हिंदी साहित्य में उत्तर प्रदेश के बाद दूसरा स्थान रखता है। यहां के साहित्यकारों ने अपनी रचनाकर्म कृतियों को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनायी है। देश के अन्य भाग से आकर बिहार की भूमि में रच-बसकर रचनाशीलता को दिशा देने में कई नाम हैं जिनकी चर्चा पुस्तक में की गई है खासकर श्री माधवन की। 'बिहार के रचनाकर्मियों की साहित्य-यात्रा' को अधूरा कहा जा सकता है। क्योंकि बिहार के जीवित कई नामी-गिरामी साहित्यकार जिनकी पहचान राष्ट्रीय स्तर पर है, इस पुस्तक में स्थान नहीं पा सके। यों तो पुस्तक संग्रहणीय है। यकीनी तौर पर कहा जा सकता है कि अगर उन्हें शामिल किया जाता तो पुस्तक का स्वरूप ही अलग होता। हालांकि, हर विधा के साहित्यकारों के रचनाकर्म की समीक्षा श्री जमुआर ने की है।

लेखक ने समाजवादी चेतना के कवि परेश सिन्हा को 'जनवादी' कवि' बता दिया है। तो वहीं वरिष्ठ गीतकार राजमणि राय को नई पीढ़ी के उभरते कवि के रूप में पेश कर दिया है। जबकि चार दशक से भी ज्यादा समय से रचनाकर्म में वे सक्रिय हैं, साथ ही छपाई की भूल भी है मसलन, लेखक ने प्राक्कथन में लिखा है 55 बिहार के जीवित साहित्यकारों का समीक्षात्मक प्रस्तुति, पुस्तक में है। लेकिन, पुस्तक में 54 साहित्यकारों को जगह दी गई है।

फारसी के महाकवि-साहित्यकार फिरदौसी का स्थान विश्व के विख्यात महाकवियों में है। फिरदौसी की रचनाएं कई मामलों में सबसे अलग हैं। खासतौर से उनकी रचना *शाहनामा* की चर्चा संसार के श्रेष्ठ महाकाव्यों में की जाती है। करीब पैंतीस वर्षों के सार्थक प्रयास के बाद *शाहनामा* को शब्दों में पिरोकर उन्होंने साहित्य जगत को अनमोल तोहफा दिया। फिरदौसी ने अपनी यह रचना फारस यानी आज का ईरान के मिथकीय कथालोक से शुरू करते हुए बाद के ऐतिहासिक काल तक को जीवंत शैली में प्रस्तुत किया है। *शाहनामा* को ईरान के जातीय जीवन की महायात्रा भी कह सकते हैं।

चर्चित लेखिका उषा आयंगर ने *शाहनामा* का अनुवाद हिंदी में कर पाठकों को अद्‌भुत दस्तावेज से रू-ब-रू होने का मौका दिया जो 'फिरदौसी की कहानियां' शीर्षक से पुस्तक के रूप में सामने आयी है। उषा आयंगर ने *शाहनामा* की द्विपदियों दोहों में लिखी कहानियों का रुचिकर, सहज और सर्जनात्मक अनुवाद कर बेमिसाल कार्य किया है। उषा आयंगर की 'फिरदौसी की कहानियां' फिरदौसी 935-1020 के महाकाव्य *शाहनामा* से चुनी हुई हैं। अबुल कासिम मंसूर यानी विख्यात फिरदौसी का जन्म प्राचीन शहर तूस के एक सीमावर्ती गांव में हुआ था। फिरदौसी को लेकर कई तरह की किंवदंती भी है। उषा आयंगर ने लिखा है कि फिरदौसी ने सुल्तान महमूद गजनी को अपनी शायरी से इस कदर प्रभावित किया कि सुल्तान ने अहलादित होकर कहा कि 'तुमने मेरे दरबार को फिरदौसी यानी जन्नत बना दिया...। और फिर उसी दिन से मंसूर फिरदौसी नाम से चर्चित हुए।

महाकाव्यों में *शाहनामा* श्रेष्ठतम माना जाता है। इसकी मिथकीय कहानियों के मुख्य पात्र शाह, बादशाह, सुल्तान, शाहजादे, सेनापति आदि हैं। पुस्तक में कुल 18 कहानियां हैं। 'फिरदौसी की कहानियां' के पात्र पूरी दुनिया में जाने जाते हैं। यही वजह है कि विश्व की करीब सभी भाषाओं के नाटकों, काव्यों और फिल्मों आदि में पात्रों का जिक्र मिल जाता है। 'फिरदौसी की कहानियां' की शुरुआत उषा आयंगर ने ईरान के शाह से प्रारंभ की है। ईरान के बादशाह शाह कैमूर्स और उसके

शासन काल की चर्चा है। शाह कैमूर्स के शासकीय अमन-चैन को लेकर शैतान अहरिमन शाह की ईर्ष्या और शांति व्यवस्था को भंग करने की चाहत के कारण ईरान को युद्ध में झोंक दिये जाने के बाद युद्ध का जो सिलसिला चला वह लंबे दौर तक जारी रहा। ईरान को बचाने के लिए कई बहादुर आगे आये और ईरान पर शैतान के कब्जे के मंसूबे को विफल कर दिया। पुस्तक 'फिरदौसी की कहानियां' में अलग-अलग विषयवस्तु पर कहानियां नहीं हैं बल्कि ईरान को दुश्मनों से बचाने वाले योद्धाओं की कहानी को उनके पात्र के नाम से दिया गया है। मसलन, फरीदून, सौम, जाल, रुस्तम, सायावश, फिराद, बैजन, इस्फनदियार आदि। जब-जब ईरान पर दुखों का पहाड़ टूटा योद्धाओं ने साथ दिया। इनमें खासकर जाल और रुस्तम की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। कहानियों को पढ़ने से साफ लगता है कि ईरान जहां बहादुरों की धरती रही वहीं शैतानों का आतंकी माहौल उसे बार-बार परेशान करता रहा। कई बार शैतान ईरान पर हावी होते दिखे। लेकिन खुदा की इनायत से ईरान का बाल बांका नहीं हो सका। कहानियां बताती हैं कि कुछ भी हो सच की ही विजय होती है।

उषा आयंगर ने *शाहनामा* की चुनी कहानियों का अच्छा अनुवाद किया। पूरी ईरान की तस्वीर उभर कर सामने आ जाती है। कहीं-कहीं पर अनुवाद भ्रम पैदा करता है जैसे 'जाल और रुदाबह' की कहानी में रुदाबह को मिनुचीर की बेटी बताया गया है जबकि वह काबुल के राजा मिहराव की बेटी थी। कुल मिलाकर 'फिरदौसी की कहानियां' शुरू से अंत तक बांधे रखती हैं। और यही अनुवाद की सबसे बड़ी सफलता है। इसके जरिए हिंदी के पाठकों को ईरान से अवगत होने का मौका मिलेगा।

—संजय कुमार

विभिन्न विषयों की कुछ दिलचस्प कृतियां

कैनवस : विकि आर्य; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; मूल्य : 250 रुपये। **पांवों का सनीचर** : अखिलेश मिश्र; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; मूल्य : 175 रुपये। **लपटों में न्यूयार्क** : डोमिनीक लानिएर एवं लैरी कांलिन्स; प्रकाशक : फुल सर्कल पब्लिशिंग, नई दिल्ली; मूल्य : 195 रुपये। **पाकिस्तान में युद्ध कैद के वे दिन** : अरुण बाजपेयी; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; मूल्य : 195 रुपये। **रेडियो और टेलीविजन समाचार कैसे लिखें** : राम सागर शुक्ल; सनातन प्रकाशन, लखनऊ; मूल्य : 75 रुपये।

कैनवस

प्रकृति व जीवन, एक-दूसरे के साथ, कभी मंथर तो कभी विद्युत गति से इस संसार को गतिवान रखते हैं और मानव इनके बीच का संदेशवाहक है जो इस दोनों से कुछ न कुछ प्राप्त कर उसे हमारे आपके सामने 'कैनवस' पर उकेरता, स्थापित, प्रतिस्थापित करता जीवन व प्रकृति को गुंजायमान, चलायमान व मूर्तिमान करता रहा है। समीक्ष्य कवित्राओं का संग्रह इसी शाश्वत, निर्द्वन्द्व, निर्मल कार्य को रेखांकित करता है।

पुस्तक में कविताओ का त्रिविध आयाम- हिंदी, अंग्रेजी में अनुवाद, रोमन लिप्यंतर व कविता चित्र, वर्गों का अतिक्रमण कर, हिंदी गैर हिंदी भाषी व अंग्रेजी पाठकों को एक साथ एक मंच पर लाता है। कविताओं में शीर्षकानुसार कविता चित्र, प्राकृतिक बिंबों का समावेश, सहज, सीधी भाषा पाठकों को अपनी ओर खींचने में सफल है। विकि आर्य ने अपनी कविताओं में शहरी जन-समूह व प्रकृति, बदलते मूल्यों पर तीखी, बेबाक टिप्पणियां, प्राकतिक सौंदर्य के प्रति मानव की उपेक्षा, जगह-जगह बिखरा या कहें कि व्याप्त सौंदर्य से पाठकों की पहचान कराने का बेहद नैसर्गिक प्रयास किया है। कवयित्री ने नारी विमर्श के रंग में, नारी की मां के रूप में, कोमल ममतामयी, रचनात्मक/ सृजनात्मक छवि को मजबूती से उकेरा है। यथा- 'आंगन में बैठी मां, घर डाल रही हैं मां बुन रही है...यह एक दो तरफा स्वेटर है... मां ने फूंजी देकर बुना है ये घर, जीवन की गर्माहट, वैसी ही रही, वैसी ही रही।

काव्य संग्रह में अर्वाचीन, प्राचीन व वर्तमान मूल्यों को समाहित कर कविता रूप में ढालकर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है।

कहते हैं समुद्र मंथन से...
एक अमृत था जिसमें एक विष था...
शिव ने अपने कंठ में...
क्या मैं ही हूं तुम्हारा उत्तराधिकारी
...हर आत्म मंथन से विष ही मिला करता है।

अस्तु, यह काव्य संग्रह अपने विविध भाषा विन्यास सहजता, सरसता व सरलता से पाठकों को आकर्षित करेगा। यद्यपि शिल्प पर कवयित्री द्वारा अभी और मेहनत की जानी शेष है, पर यह काव्य संग्रह पाठकों को भाएगा।

लपटों में न्यूयार्क

आतंकवाद, आज के संदर्भ में एक चुनौती ही नहीं वरन मानवता के माथे पर बदनुमा दाग है। संसार का कोई भी देश इससे अछूता नहीं है और इससे हर कीमत पर निजात पाना चाहता है। इसका शिकार अमरीका सरीखा शक्तिशाली राष्ट्र भी है जहां 11 सितंबर के नाम से जुड़ी त्रासदी सदैव अमरीका तथा विश्व को आतंकवाद समाप्त करने की ओर कृतसंकल्प करती है।

समीक्ष्य प्रस्तुत उपन्यासनुमा थ्रिलर का कथा विन्यास कौतूहल, जिज्ञासा, सनसनीखेज प्लॉट, सत्य व काल्पनिकता का मिला-जुला घालमेल है। लेखक ने इस्लामी देशों यथा- इराक, पाकिस्तान, लीबिया तथा इजराइल, फिलीस्तीन में चल रही राजनीतिक उथल-पुथल और उनके अधिनायकों, नेताओं तथा सद्दाम हुसैन, शेरोन, परवेज मुशर्रफ की व्यक्तिगत प्राथमिकताओं, अड़ियलपन के रवैयों के साथ-साथ आतंकवाद जगत के कुख्यात नामों- ओसामा बिन लादेन इत्यादि की सांठगांठ व कारगुजारियों को तर्कपूर्ण व मनोरंजक ढंग से परंतु आतंकवाद की भयावहता तथा उसमें परमाणु बम व उसकी संभावित विभीषिका को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण उपन्यास में घटनाओं के कुशल ताने-बाने से रोमांच बना रहता है।

पुस्तक में लेखक ने कल्पना व वास्तविकता को मिलाकर अमरीकी समाज, नौरशाही,

राजनीतिक गलियारों व राजनीतिज्ञों को पाठकों के सामने बेबाक तरीके से भी रखा है तथा साथ ही साथ इस्लामी देशों व संबंधित राष्ट्रों के अंतर्द्वंद्वों को सफलतापूर्वक उकेरा है, जिससे लेखक द्वय की प्रोफेशनल तत्परता का आभास स्वत: ही पाठकों को हो जाता है।

पांवों का सनीचर

पांवों के सनीचर में अंग्रेजों से भारत को स्वतंत्र कराने के प्रयासों, संघर्षों का ब्योरा बेहद नैसर्गिक परंतु हृदय को झकझोरने वाली शैली में दिया गया है जो आज के युवाओं को उस काल के किशोरों व युवाओं के उद्देश्यों व प्राथमिकताओं का विहंगम दृश्य प्रस्तुत करता है। उपन्यास का नायक है किशोर नेवाज उर्फ 'लल्लू' निघस पहलवान, यक्ष-प्रश्नों को मूर्तिमान करता जो आज भी हमारे गणतंत्र या लोकतंत्र को चुनौती देते हैं।

उपन्यास में नारी पात्रों यथा पंडिताइन, ललुआ की बुआ, शुभ्रा, शेफाली सभी को लेखक ने उनके सामाजिक परिवेशों के अनुसार ढालकर, तराशकर स्थापित पुनर्स्थापित करके समाज की सोच, समस्याओं को आईने की तरह साफ-सपाट, बेबाक, बेलौस ढंग से पाठकों के सामने रखा है।

एक दृष्टि से इसे स्त्री विमर्श उपन्यास भी कहा जा सकता है। क्योंकि नारी के सभी रूपों यथा, किशोरी, युवती, प्रौढ़ा, शिक्षित-अशिक्षित, शांत, तेज-तर्रार पात्रों के माध्यम से बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध और दूसरे महायुद्ध से पहले के काल को दर्शाया है। ग्राम्य जीवन की परंपराओं रूढ़ियों के साथ-साथ सांप्रदायिक सौहार्द का चित्रण पाठकों को एक अलग जादुई दुनिया का अहसास कराता है। वस्तुत: ग्राम्य भारत ही अर्वाचीन, प्राचीन, मध्य उत्तरोत्तर व आज के संदर्भ में असली भारत रहा है और किशोर व युवा वयस्क उसका भविष्य को दर्शाती दो आंखों के समान हैं। उनकी आशाओं आकांक्षाओं, कामनाओं, विरोधाभाषी विद्रोहों के तेवर ही आने वाले समय में साहित्य व समाज का समूचा मानचित्र हमारे सामने उकेरते हैं और यही बात लेखक ने अपने नायक व स्त्री पात्रों द्वारा कही है यथा- "तो क्या तुम विवाह के खिलाफ हो। पुरुष के प्रेम का क्या अर्थ है। स्त्री के लिए प्रेम है समर्पण। विवाहिता स्त्री अपने पैरों पर खड़ी होकर भी निहायत निकम्मे झगड़ालू पति के मुकाबले हीन रह जाती है।" गरज दोनों की है यह एक तरफा गाड़ी नहीं चलेगी...। यद्यपि लेखक ने अपने आत्म कथ्य 'बाज सुराग न गांडर तांती' में इस उपन्यास को आत्म-कथ्य नहीं माना है परंतु वस्तुत: उपन्यास पढ़ने के बाद पाठक इनकी इस विनम्रता को स्वीकार नहीं कर पाएंगे।

उपन्यास के बारे में लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल के विचार पाठकों को उपन्यास के उद्देश्य व सरसता का आभास कराते हैं। वंदना मिश्र के विचार भी इसी बात को पुख्ता करते हैं कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उपन्यास पाठकों को भाएगा।

पाकिस्तान में युद्ध कैद के वे दिन

भारत-पाकिस्तान नदी के दो किनारों के सापेक्ष हैं, जो आमने-सामने होकर भी अच्छे पड़ोसी नहीं बन सके हैं। युद्ध वस्तुत: हमारे समाज के भीतर पल रहे संस्कारों व संवेगों का प्रस्फुटन हैं, जो हमारी सभ्यता-संस्कृति को भी स्पष्ट रूप से दर्शाता है। समीक्ष्य पुस्तक में सेना से निवृत्त हुए ब्रिगेडियर अरुण बाजपेयी ने आपबीती को आत्मकथ्य के रूप में सिलसिलेवार ज्यों का त्यों, लिखकर न केवल युद्धबंदियों की दयनीय स्थिति को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है वरन्! आज के युवाओं को भारतीय फौज व फौजियों की दिनचर्या, कार्य-प्रणाली, मनोदशा, मजबूती, जिजीविषा, देशभक्ति जैसे दुर्लभ गुणों से रू-ब-रू कराने का सहज व सफल प्रयास किया है।

डायरीनुमा उपन्यास सन 1963-65 के परिदृश्य के वृत्तांत से शुरू होता है जिसमें युवाओं की मन:स्थिति, भारतीय फौज में भर्ती होने की ललक, फौज का आधुनिकीकरण, देशभक्ति का जज्बा, अदम्य साहस व कुछ कर गुजरने की घटनाओं, दृष्टांतों के माध्यम से उपन्यास आगे बढ़ता है। कहीं-कहीं भारतीय फौजियों की युद्ध अनुभव वैभिन्नता यथा पहाड़ों और जंगलों में युद्ध लड़ने, मेडिकल कोर चिकित्सकों द्वारा युद्ध संचालन इत्यादि का ब्योरा स्पष्ट रूप से दिया गया है। सन 1965 की युद्ध स्थितियों का वर्णन तथा बाद में युद्ध कैदी बन जाने की त्रासदी तथा भारतीय सैन्य शक्ति से जुड़ी जानकारियां न देने पर लगातार अमानुषिक यातनाओं व अत्याचारों का अंतहीन सिलसिला, ऐसे स्थितियों में भी अपना व अपने साथियों का मनोबल बनाए व बढ़ाए रखना जैसी घटनाओं का

लेखकों से

- रचना भेजने के लिए कोई शर्त नहीं है। सभी रचनाओं का हम स्वागत करते हैं।
- रचना एक तरफ टाइप की हुई या स्पष्ट लिखी होनी चाहिए। रचना के अंत में अपना नाम व पूरा पता अवश्य लिखें।
- यदि आप अस्वीकृत रचना वापस चाहते हैं तो कृपया अपना पता लिखा, डाक टिकट लगा लिफाफा लगाना न भूलें।

हमारा नया पता :

संपादक

आजकल

प्रकाशन विभाग

कमरा नं. 120, सूचना भवन

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

संजीदा व सटीक वर्णन आज भी हमारे जनमानस को वर्तमान व दिवंगत भारतीय सेना के रणबाकुरों पर गर्व करने का सुअवसर देता है।

लेखक ने इसमें केवल युद्ध व यातनाओं का ब्योरा ही नहीं दिया वरन् पाकिस्तान के सैनिकों व असैनिकों के गुणों का भी हवाला दिया है। साथ ही साथ भारतीय फौज की कार्रवाई के तौर-तरीकों पर भी बेबाक टिप्पणियां की हैं। सन 1971 के युद्धबंदियों के साथ अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत व्यवहार, सुविधाओं का मुहैया कराना इत्यादि हमारे जन मानस में भारतीय सेना की साफ सुथरी, वीरोचित व सकारात्मक छवि को उकेरने का प्रयास पूर्णतया सफल रहा है। उपन्यास का अंत भी इतिवृत्तात्मक है, जिसमें आज के नौजवानों से भारत-माता की सेवा के लिए फौज में भर्ती होने का विनम्र निवेदन है। यह उपन्यास संग्रहणीय दस्तावेजों की श्रेणी में आता है।

रेडियो और टेलीविजन समाचार कैसे लिखें

रेडियो और दूरदर्शन आज भारतीय जनमानस में सूचना क्रांति के अग्रदूतों का स्थान रखते हैं क्योंकि आज भी जब सुदूर क्षेत्रों में बैठा आम आदमी जब अपने आपको वर्तमान वैश्विक भारतीय अर्थव्यवस्था से जोड़ता है तब यही दो माध्यम उसके साध्य-साधन बनते हैं। अत: यहीं पर रेडियो व दूरदर्शन की महत्वत्ता रेखांकित होती है तथा यह बात भी कि प्रसारित समाचारों के संप्रेषण की ग्राह्यता व गुणवत्ता को सतत कैसे बढ़ाया व बनाए रखा जाए।

सूचना क्रांति के दौर में समाचारों की समीचीनता, विश्वसनीयता, स्वीकार्यता का एक अपना अप्रतिम स्थान है, यह पुस्तक इन्हीं यक्ष प्रश्नों का उत्तर व समाधन प्रस्तुत करती है।

रेडियो व टेलीविजन पर प्रसारित प्रचारित समाचारों, सूचनाओं को कैसे लिखा जाए? किसी स्थान विशेष की प्रचलित संस्कृति से मेल खाती भाषा व प्रतिमानों से तालमेल बिठाकर कैसे संवाद स्थापित किया जाए?

यह पुस्तक इसी विषय को प्रस्तुत करती है। लेखक ने शब्दों के चयन, वाक्यों की रचना, मुहावरों के प्रयोग के साथ-साथ अनुवाद करने व उसके प्रभावों पर भी बेहद सटीक टिप्पणियां की हैं। रेडियो और टेलीविजन में समाचार की भाषा उसके श्रोताओं-दर्शकों की सामाजिक, शैक्षिक एवं अन्य समीचीन विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखकर निश्चित की जानी चाहिए।

प्रसारित भाषा में उर्दू , फारसी के शब्दों का प्रयोग तथा हिंदी में 'स', 'श' और 'ष' अक्षरों के सही उच्चारण व श्रोताओं-दर्शकों द्वारा सही अर्थों में उन्हें ग्रहण करने जैसी अन्य समस्याओं की चर्चा व समाधान इस पुस्तक में दिए गए हैं।

सफल समाचारों का लेखन भी एक कला है जिसे धीरे-धीरे सतत अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है। लेखक ने इसी दुर्दम्य लक्ष्य की प्राप्ति के सूत्र, 'सफल समाचार लेखन के गुण' नामक अध्याय में दिए हैं। प्रसारण शब्दावली से संबंधित शब्द व अवधारणाएं व्यावसायिकता की छाप छोड़ते हैं। लेखक ने प्रेस संबंधी कानून के नाम से अध्याय लिखा है। जिसमें प्रचलित, संबंधित, एवं समीचीन अधिनियमों तत्वों इत्यादि का ब्योरा बहुत संक्षिप्त परंतु सटीक रूप से दिया है।

मुख्यत: समाचारों का प्रारूप समाचारा-पत्रों के आधार पर ही होता है जबकि रेडियो, दूरदर्शन पर समाचार लिखना एक अलग विधा है। इसी व्यावहारिक कठिनाई को समझते हुए लेखक ने हिंदी व अंग्रेजी के उदाहरणों व उद्धरणों का समावेश बहुत ही संतुलित ढंग से किया है।

यह पुस्तक, वर्तमान कलेवर व सामग्री के साथ रेडियो, टी.वी. के शैक्षिक/ व्यावसायिक पाठ्यक्रमों समाचारवाचकों, उद्घोषकों व अन्य कर्मियों (सदृश), विद्यार्थियों, अध्यापकों व सामान्य जन के लिए बेहद उपयोगी साबित होगी।

—**सूर्यकांत शर्मा**

सहयोगी रचनाकार

रामदरश मिश्र : आर–38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली

हरदयाल : एच–50, पश्चिमी ज्योति नगर, दिल्ली–110094

माजदा असद : सी–105, ईस्ट एंड अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फेज–1, दिल्ली–110096

यश मालवीय : ए–111, मेंहदौरी कालोनी, इलाहाबाद (उ.प्र.)

कृष्णदत्त पालीवाल : ए–102/3, एसएफएस फ्लैट, साकेत, नई दिल्ली

मजीद अहमद : एच–108, शिवाजी पार्क, पंजाबी बाग, नई दिल्ली–110026

अनीता गोपेश : 6/1 बैंक रोड, इलाहाबाद–211002 (उ.प्र.)

राजेश कुमार पांडेय : 17–सी, अशोक नगर, महादेवी वर्मा आवास, इलाहाबाद–211001

राजेन्द्र गौतम : बी–226, राजनगर, पालम कॉलोनी, नई दिल्ली–110045

जगत सिंह बिष्ट : कल्याण भवन, चम्पानौला, लोअर माल रोड, निकट जल निगम कालोनी, अल्मोड़ा–263601

मृदुला सिन्हा : पी.टी. 62/20, कालकाजी, नई दिल्ली–110019

भारतेन्दु मिश्र : एल–137 सी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–110095

सहयोगी रचनाकार

श्याम सुशील : ए–13, दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स,वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली–110096

राजेन्द्र उपाध्याय : 21 बी, लॉ अपार्टमेंट्स, कड़कड़डूमा, दिल्ली–110092

रघुनाथ उपाध्याय 'शलभ' : वाणी–बसेरा, हल्दी (हलद्वीप) ग्राम पो. हल्दी, बलिया (उ.प्र.)

ज्योति चौधरी : 3 1 ईस्ट गुरु अंगद नगर, दिल्ली–110092

बल्लभ डोभाल : डब्ल्यू–46, सेक्टर–12, नोएडा–201301

श्याम बिहारी श्यामल : द्वारा श्री रामजनम राय, सी 27 156 जगतगंज, वाराणसी (उ.प्र.)

शेरजंग गर्ग : एच–43, (भूतल) साउथ एक्स–1, नई दिल्ली–110049

प्रकाश मनु : 545, सेक्टर–29, फरीदाबाद (हरियाणा)

सुषमा प्रियदर्शिनी : एल 1 15 हौजखास एन्क्लेव, नई दिल्ली–110016

सुरेन्द्र वर्मा : 10 एचआईजी, 1–सर्कुलर रोड, इलाहाबाद–211001 (उ.प्र.)

ब्रजभूषण शर्मा : 1660 सोहनगंज, सब्जी मंडी, दिल्ली–110007

अमरजीत सिंह : एच–17 68, सेक्टर 7, रोहिणी, दिल्ली–110085

दर्शन सिंह : सी–13, ग्रेटर कैलाश एन्क्लेव, पार्ट–1, नई दिल्ली–110048

देवेंद्र चौबे : वार्डेन फ्लैट–03, पेरियार हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067

गंगा प्रसाद विमल : 112, साउथ पार्क अपार्टमेंट्स, नई दिल्ली–110019

हरे प्रकाश उपाध्याय : 2 36, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली–110002

संजय कुमार : सहायक समाचार संपादक, आकाशवाणी, पटना (बिहार)

तुषार उप्रेती : 58 3बी सेक्टर–2, कालीबाड़ी मार्ग, नई दिल्ली–110001

के. मुहम्मद : रीडर, हिंदी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय (केरल)

सुरेन्द्र कुमार उपाध्याय : आवास पी.आर. 18 विश्वविद्यालय परिसर, असम विश्वविद्यालय, सिलचर–788011 (असम)

सत्यनारायण : डी. ब्लॉक, कदमकुआं, पटना–800003 (बिहार)

शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी : 18–नीचू बंगला (हिन्दी भवन परिसर), विश्व भारती शान्तिनिकेतन, पश्चिम बंगाल–731235

सुभाष सेतिया : सी–302, हिंद अपार्टमेंट्स, प्लाट नं. 12, सेक्टर 5, द्वारका, नई दिल्ली–110075

राजेन्द्र सहगल : 40 सिद्धार्थ अपार्टमेंट्स, नजदीक मियांवाली नगर, रोहतक रोड, दिल्ली–110087

चन्दन यादव : एच 16 19 ई.डब्ल्यू.एस., ऋषिनगर, उज्जैन–456010 (म.प्र.)

निर्मला पुतुल : दुधानी कुरुवा, दुमका–814101 (झारखंड)

अभिषेक श्रीवास्तव : ओ–83, प्रथम तल, सेक्टर–12, नोएडा

अनुराधा : ए–13, दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स,वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली–110096

देवव्रत जोशी : 28, वेद व्यास कालोनी, रतलाम–457001, मध्यप्रदेश

हरिमोहन शर्मा : 184, कादम्बरी अपार्टमेंट्स, सेक्टर–9, रोहिणी, दिल्ली–110085

रमेश प्रजापति : डी–8, डीडीए कालोनी, न्यू जाफराबाद, दिल्ली–110032

रमेश नीलकमल : अक्षर विहार, अवंतिका मार्ग, जमालपुर–811214 (बिहार)

निरुपम : 1383, सेक्टर–12, आर.के.पुरम, नई दिल्ली

रमेश यादव : 20 ए, डीडीए जनता फ्लैट, बसंत एन्क्लेव, नई दिल्ली–110057

क्षितिज शर्मा : 100 2ए गांवड़ी एक्सटेंशन, दिल्ली–110053

अभिषेक कश्यप : द्वारा शरत कुमार, बी 5 22, सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली–110029

भागीदारी
नागरिक–सरकार साझेदारी

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली-सपने करे साकार

मेरी दिल्ली
मैं ही संवारूं

भारत तुझे सलाम !



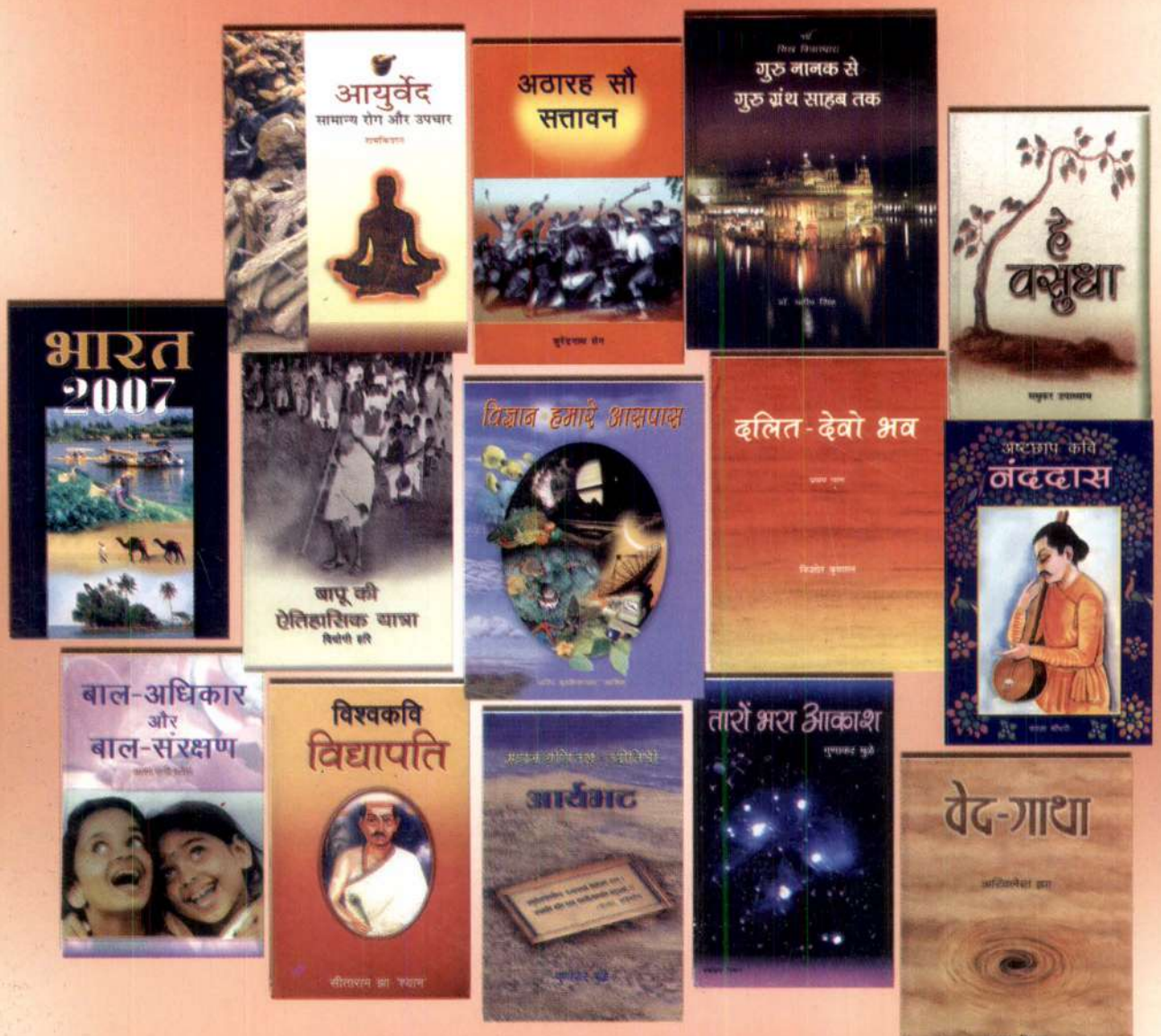
DIP/1847/06-07

U (DN)-49/2006-08

Postal Regn. No. DL(S)-05/3222/2006-08 दिल्ली डाक आर एन 701/57
Licenced U(DN)-49/2006-08 to post without pre-payment at RMS Delhi Delhi Postal RN 701/57

वार्षिक मूल्य : 70 रुपये

हमारे नये प्रकाशन



पुस्तक मंगवाने के लिये संपर्क करें

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
सूचना भवन, सी.जी.ओ.काम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003
फोन:2436 7260

प्रकाशक व मुद्रक वीना जैन, निदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए दिल्ली प्रेस, ई-3, झण्डेवाला इस्टेट, नई दिल्ली-110055 से मुद्रित